

55

ਸੰਗ - ਲੁਧਿਆਣਾ - ਪਾਕਿਸਤਾਨ

# मेरी - सृजन - यात्रा

लेखक  
श्रीकृष्ण सरण

प्रकाशक  
आग्नेय - भारती  
१८. दशहरा मैदान

प्रकाशक

कान्तिदान-भारती

१-८, दशहरा मैदान

उज्जैन मध्य प्रदेश

संवादिचार मेखकाधीन

प्रथम संस्करण

१९८० ई०

मुद्रक : ~~वीरेश्वर~~

~~मन्जीर~~

मुद्रक

मेरी स्तुति यात्रा



संज्ञा-

‘मेरी ~~संज्ञा~~ ~~संज्ञा~~ - यात्रा’ मेरे साहित्यिक-अभियान का लक्ष्य-लक्ष्य है, मेरी जीवनी नहीं। इस प्रकरण में मैंने केवल उन्हीं उल्लेखों को और प्रहंशों को लिखा है, जिनका लिखना मेरे लक्ष्य से रहा है। अपने जीवन की विविधताओं का समावेश इस दृष्टि से मैंने शामिल नहीं किया है, क्योंकि मेरा उद्देश्य अपनी जीवन यात्रा को जीवित नहीं था। उदाहरण के लिए मैं उल्लेख करूँ कि मैं बहुत ही तेजी से बहुत अल्प-संख्या में आलोचनाओं, पाठकों-कारकों बहुत अच्छा निशानेबाज रहा, किन्तु इन श्रेणियों में मेरी उपलब्धियों में ही, पर साहित्यिक क्षेत्र के दानकर्ता को शत्रु के कारण मैं उनका नहीं लिख सका। मैं अपने ‘आप’ को बहुत बड़ा साहित्यकार भी नहीं मानता और अपनी साहित्य-यात्रा में विषय में भी लिखने का मेरा कोई विचार नहीं था, यद्यपि तो एक साहस-वश लिखने के लिए मुझे वाध्य होना पड़ा है।

मैंने अपने जीवन का यही <sup>उद्देश्य</sup> ~~उद्देश्य~~ है कि मैं केवल उल्लेखों पर लिखूँ जिनसे देश को लिए अपना सर्वसाधारण ध्यान कर सका और जो ही साहित्यिक उपलब्धि रहे। मेरे जीवन का हर क्षण उन्हीं के चिन्तन में बीता है, इसलिए अपने विषय में लिखना ~~और लिखना~~ मुझे अवसर ही नहीं मिला। मुझे इस बात का संकोच है कि अपने लिए जो उपलब्धियाँ मैंने निष्कर्षित की हैं, वह मैंने प्राप्त कर ली हैं और उन प्राप्त होने के पहलूयों ही एक व्यवसाय मेरे जीवन में उपलब्ध हुआ है, जितने नए लेखकों की दिशा में मेरी लेखनी का आगे बढ़ने से एक दिया है।

मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि मैंने लिखना शुरू तो दो-तीन सालों में ही शुरू किया है १९२५-२६ के बहुत ही प्रारम्भिक है लिखित हुआ और लिखी-की भी भर दिखाने नहीं था कि मैं उन आलोचकों को लेने शुरू कर चुका हूँ जो मेरे ही मैं उन पहलुओं के विषय में लिखूँगा।

शरीरों को शक्तिशाली पर लिखी-लिखी बातों को

मुझे मरना ही प्रस्तावित किया पड़ता रहा है और जमीन पर उठने  
 मुझे मरना ही प्रस्तावित पड़ता था। 23 नवम्बर 1947 को मुझे  
 दो तीव्र हीमिग्लोबिन दो बन्डल जो कि मैं देखा जिनमें (मरणावस्था)  
 दो सोनकाच्य रंग गया हुआ था। वहीं मुझे दिल का दौरा  
 पड़ गया। वहाँ अच्छी की आरखी प्रविष्टि न होने के कारण  
 मुझे उज्जैन पहुँचाना आवश्यक हो गया। उज्जैन आते-वाते  
 वहाँ तो जिल गड़, पौ आगे बहुत भीड़ होने के कारण मुझे  
 बैठने को लिए स्थान नहीं मिले। मैंने सीने में दर्द की  
 बिजलियाँ महसूस करनी शुरू कीं और हाथ जोड़ने में वह मैं  
 ढाई घण्टे तक बड़े-बड़े मुझे सोनकाच्य से उज्जैन तक  
 की यात्रा करनी पड़ी। हर स्थान पर चढ़ते और उतरते  
 होकर भी तीव्र निम्न दो दोनों बन्डल मुझे ही  
 उठाने पड़े। जब मैं अस्पताल पहुँचा तो मैं (मरणावस्था)  
 लिए आवश्यक वस्तु (हस्ताक्षर) वात संकोच में आदि अंग  
 में बिस्तर पर शय्या प्राप्त होकर अत्यंत प्रसन्न मेरी-  
~~सुख~~ सुख-आनंद मिल रहा है। यदि यह विवशता न होती, तो  
 शायद मैं यह कभी लिखता ही नहीं।  
मेरी चार भूमिकाएँ

मुझे लगता है कि जीवन के लिए जितना संभव हुआ  
 करना पड़ा है, उतना संभाव्य किसी भी लोबक को नहीं करना  
 पड़ा होगा। यह (मरणावस्था) शायद बहुत पड़ा है,  
 क्योंकि मैंने शरीर और आनन्दकारियों पर लिखते का  
 विषय लिखा। यदि मैंने सुरक्षा प्राप्त करने वाले  
 विषयों पर लिखा होता तो मुझे यह संभव नहीं करना  
 पड़ता। जीवन भर चारों दिशाओं की मुझे तरंग पड़ा  
 है और जहाँ से तो मैंने कभी हार मानी नहीं है। अब  
 मैं अन्तर्गत करूँगा अंग चार भूमिकाओं का, जितना लिखा है  
 मुझे अन्तर्गत करनी पड़ता है —

(1) मेरी पहली भूमिका रही है तबलों की संकल्पना की।

ऐतिहासिक महानुभावों पर जीवन के कारण जीवन में  
प्राथमिकता माने के लिए मुझे अपने देश के कोने-कोने में  
और विदेशों में भी भ्रमण करना पड़ा है। जैसे लोग शोषण-  
कार्य के लिए अपने ही देश में भ्रमण करते हैं, उन्हें विद्य-विद्वानों  
-ले अनुदान प्राप्त होते हैं, पर मैंने तो भारतीय छात्रों के लिए  
-ले शोषण करने के लिए दुनिया के दस देशों को घूमा है, और  
मुझे एक पैरों का भी अनुदान नहीं मिला है। आप इसे  
सिंहालीपन कहेंगे या दीवानगी। आप उसे कुछ भी कहें, लेकिन  
सह सात है कि अपने-पारिवारिकों के विरुद्ध मैं तब  
-के संकलन के लिए मैंने इतना कुछ किया है।

(2) मेरी दूसरी भूमिका, मेराज की रही है - मौलिक जीवन-  
की। मेरा वह वही सामान रखेंगे, उसे जीवन है। किसी-  
पत्रिका के लिए एक जीवन जीवन में पानी का आना है।  
कितने निर्दय-गुण्य पढ़ते पढ़ते हैं, कितना निरंतर काम  
पड़ा है और विचारों को आकार देने के लिए कितना खपना  
पड़ा है। और कि कल्पना की जाए कि जो छात्रों को  
साठ मौलिक-वृत्तियों को अपना काम पड़ा है, और कितना  
खपना पड़ा होगा।

आज के युग में मैं देश को पाँच महाकाव्य दे चुका  
हूँ। गद्य के युग में मेरी दो कहियाँ उल्लेखनीय हैं, (1)  
कालाजयी-सुभाष, और (2) क्रान्ति-अन्धकार। 25 दूसरी कल्पना  
को तो मैंने तो 4 भारतीय अफ्रीकारियों का एनसाइक्लोपीडिया  
कर कर बुका है। हिन्दी के दिग्गज विद्वान, उद्दीप्त को  
सम्मान राज्यपाल महोदय श्री विश्वमणिनाथ पाण्डेय ने  
इसे 'वास्तविक-महाग्रंथ' कह कर सम्मानित किया है। मैं  
खुशी आपकी बताऊँ कि शास्त्रियों के राज्य-संस्करण  
और जीवन में सत्ताहीन वर्ग का राज्य आया है। यह है  
मेरी दूसरी भूमिका - जीवन की।



महाराष्ट्र प्रान्त में ही है प्रकाशन की। इस मुद्रित को उचित है।  
 प्रकाशकों को प्रकाशन के लिए आवश्यक धन राशि पुराना प्रकाशन भागी  
 जों के वसूल करके निर्माण करने की और पुस्तक की प्रत में देकर  
 पूरा संशोधन कार्य करना समझिए। जो पुस्तक में न केवल ही  
 मिले। महाराष्ट्र को तो हमेशा ही आग बरसते हैं, इस कारण महाराष्ट्र को  
 जिसका प्रकाशन भी हुआ है। आपने धन के मामले में भी -

१. बाप प्रिंटिंग प्रेस, जवाहर रोड, उज्जैन, मध्य प्रदेश,
२. कोठारी प्रिंटर्स, धर्मपुरा, उज्जैन, मध्य प्रदेश,
३. नागरी प्रेस, १-८ अमोघी बाग, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, और
४. प्रियंवदा प्रेस, ३५/५५, गौवला, आगरा, उत्तर प्रदेश

- मैं प्रति प्रकाशकों को आपका कल्पित समझता हूँ, जो हमेशा  
 मेरी बातें उल्टी पर करते रहे और कभी सही का तकाजा नहीं करते।  
 आपकी पुस्तकों की महफिज के संदर्भ में मैं इन धनप्राप्तों को लक्ष्य रखता हूँ  
 जो मुझे नजर आते हैं, लेकिन आप आवश्यकतानुसार सही पाठ कभी  
 एक सप्ताह की छुट्टी भी नहीं रहते हैं। यदि सप्ताह छुट्टी रहते हैं, तो कभी  
 भी और आपका सही छुट्टी में अपने मजदूरों को दे सकूंगा।

(६) श्री-वर्तमान और आगामी मुद्रित रहे हैं प्रकाश-विक्रेता भी। इस कार्य  
 में भी मैंने कीर्तिसूचक स्थापित किए हैं। क्या आप विश्वास करेंगे कि  
 इतनी सारी मुद्रितकों का निर्वहण करने के साथ-साथ मैं अपनी कुल  
 प्रकाशित पाठ पुस्तकों में से पॉन्स प्राप्त प्रतियों लाना-पुकारूँ। जी हाँ,  
 यह प्रिंटर्स और शोधक लोग स्वीकार करेंगे, जिनमें मेरी पुस्तकों को विक्रय  
 होता है। ये पुस्तकें फिर ताज़े विक्री भी, वह भी आपकी नताई -

- मैं अपने धन में निकलकर किसी दूरस्थ स्थान पर पहुँच कर  
 उस जगह में लगभग दो महीने रहता हूँ और फिर वहाँ से प्रत्येक  
 विद्यालय में पहुँचता, वहाँ तक बिना एक पैसा पारिश्रमिक लिए राखी  
 कसौती करता हूँ और कभी अपनी पुस्तकें लगभग मूल्य में या कमो-कम  
 लागत मूल्य में वहाँ से ~~किसी~~ <sup>किसी</sup> दिये जाते हैं। महाराष्ट्र यह  
 होता था कि उपस्थित अध्यापकों और विद्यार्थियों में कीर्तियों में  
 चिन्ता भी होता था, वह भी पास आ जाता था। यहाँ तक कि  
 मेरी पुस्तकें खरीदने को लिए प्रचार्य और अध्यापक-गण अपनी जेबों  
 के सारे पैसे दे दिया करते थे। इस सहयोग के लिए मैं प्रचार्य गण  
 और अध्यापक गण को हमेशा आभारी रहूँगा। इस पुस्तक एक दिन में  
 मैं तीन या चार विद्यालयों में कविता-पाठ करता हूँ और अपनी पुस्तकें  
 निकालता हूँ। महाराष्ट्र का जीवन करने का काम नहीं

अधिकांश ही नहीं मिली। मेरा भोजन दिन में एक बार ही सादर मिलता होता था। कभी-कभी मेरी गरीबी का बोझ भी मेरे भोजन में बढ़ जाता है। तो मैं हाँसकर अपनी भोजन की तैयारी करते होते। कि 'मैं' लुंगी पहने कर की कुर्सी पर कुर्सी डाल कर निवास की फुटपाथ पर बैठे भोजन करते, जहाँ किसी बच्चे के लिए भोजन-पदार्थ होती थी। उन लोगों के साथ भोजन करते हुए मैं उनसे विभिन्न बातें कह मो सुना करता था। इसी समय मैं हमें आई के दिनों में भी मैंने अपनी एक बार के भोजन के लिए कभी कोई खर्च है आये के साथ नहीं किया। जो पैसा बचता, उसे मैं शहीदों या सैनिकों के लिए सुरक्षित रखता था।

— प्रोक्त विजय ने हंटर में मुझे हमारी मोहती पड़ी है। एक अनुभव मिल रहा है —

गद्यपद्य के मने प्रगट नगर है मैं हर गुण जिनके के मुखालय आधिकार पड़ेंगा। इस रास्ते में बहने वाला हो जाने के कारण मैं शत को बरत बजे आधिकार पड़ेंगा। वह है ८५ या एक भी सिनेमा नहीं था। कुछ दिनों पहले ही वहाँ एक सात्री का कालो हो चुका था और शहरो के दफा बजे के बाद सिनेमा नहीं चलते थे। मेरे पास प्रोक्तों के चार बटल थे और प्रोक्त बटल में मालीसि दिने के बचत, अर्थात् भूष मिश्रकर एक ही तिथि दिने के बचत से प्राप्त था। न तो कोई सिनेमा मिला और न हल-हल। मैंने यह जितना। दोनों हाथों में दो बटल हाँक कर मैं उन्हें उतनी दूर रख आता, जहाँ मैं सिनेमा पीछे छोड़ देता हूँ बटल दिखाई देते रहते। जो लौट कर पीछे छोड़ देता बटल को उठाता और उन्हें आगे अपनी दूर रख आता। इस प्रकार एक पछले तक हमारी काले के बाद मैं ठहरने के स्थान पर पहुँच जाता। आज मैं के मेरा सामान कभी भी नोकर ने उधर नहीं पहुँचाया। वहाँ कि कोई जवान आदमी भी मेरा एक बटल नहीं उठा पाता था, जबकि मैं दो बटल हाथों में लटकाकर पीछा-पड़ जाता मेरा जिला-नियत था और मैंने ६ वर्ष की आयु तक।

— मैंने अपनी-काले प्रोक्तों कायको बता दी। अब यह आदमी जहाँ है कि आप मुझे शेर-कर्ता, लेखक, प्रकाशक, प्रकाश-रीडर, प्रोक्त-नियत, मुली या हमारा जो भी सम्मान चाहें। यह सब मैंने उल्लेखित शहीदों के लिए किया है।

प्रभु प्रवचन-लेखन लेखन में -

१. मैं दीर्घियों लिखने के चक्कर में नहीं पड़ा हूँ और न ही शान्ति।  
एक तो बीस वर्ष की आंखों की बीमारी का असर। (तिब्बियों लिखने  
में भूल ही जाती थी, इसी कारण मैंने कम से कम तिब्बियों  
का उल्लेख किया है।)

२. कोई भी नाम इस पटना कालिदास नहीं है। जहाँ आवश्यक  
समय पर गया है, वहाँ नाम व्योम दिया गया है।

अपने परिवार के विषय में भी कुछ लिखना आवश्यक समझूँगा। मेरी  
पत्नी की बच्चापन मुझे हमेशा सहयोग मिला है। अभाव-ग्रस्त जीवन  
व्यतीत करने में उन्होंने मुझसे कभी कोई शिकायत नहीं की।  
एक वर्ष के करीब महीने में ही दो महीने तो अपने परिवार को  
छोड़ कर बाहर ही रहता रहा हूँ। मैं यह लिखता हूँ कि -  
मैंने अपने परिवार को बाहर ही रखा है, छुड़ा नहीं।

मैं प्रारम्भ में ही लिख चुका हूँ कि प्रभु प्रवचन में  
दिखती बीमारी में शय्या-ग्रस्त होकर लिख रहा हूँ। इस बीमारी में  
दवाइयों की नींद लगने वाली की जाती है। यदि तबलों की  
लेखन लिखनी भूलें आप को मिले तो आप उन्हें परिवार-जन्य  
विवशता ही समझिए।

मेरे इस लेखन से यदि किसीने दिशा-निर्देश मिले तो यह मैं  
अपना सौभाग्य ही समझूँगा।

प्रियुषा सराव



## १. प्रथम-संस्मरण

- १ काव्य-सुख
  - २ अ-स्वागत वसन्त
  - ३ पत्थर एक : धूलि अनेक
  - ४ काव्य का निखार
  - ५ काव्य लेखन में चामका
  - ६ क्यों डाली तुमने चिनगासी ?
  - ७ ईद सुवारके
  - ८ मेरे काव्य कावि
  - ९ करजा हर दुखानि है
  - १० एक साहित्यिक जगद्दे चार-चार संस्मरण
  - ११ काव्य-लेखन का पुरस्कार
  - १२ कावि में 'करने' काया फुकार
- ## २. द्वितीय-संस्मरण

- १३ प्रकाशन-पथ
- १४ पौन्यकृपा के गाँधी-चार-चार अनेक
- १५ काव्य-तीर्थाटन
- १६ मार्ग-दर्शन

## ३. तृतीय-संस्मरण

- १७ महाकावि की भूमिका
- १८ महाकाव्य-लेखन का संकल्प
- १९ गोली मार दूँगा
- २० शहीदी मेला
- २१ जोखिम भरा पाकिस्तान-प्रवेश
- २२ मित्र और दुश्मन परेशानी
- २३ शहीद-माता के सामने मैं
- २४ महाकाव्य का लेखन
- २५ एक महान् आन्तरिकी के सामने मैं

- २६ महाकाव्य का संचालन
- २७ परिणत का संचालन
- २८ चित्रण के सभी कीर्तियों का दृष्ट
- २९ पगलाया हुआ वातावरण
- ३० दंत जी से भेंट; पहला सचित्र फटका धार
- ३१ दंत जी के बलबले
- ३२ महाकाव्य भाष्य के पदचिह्नों पर
- ३३ रहस्य कवि ने रास्ता दिखाया
- ३४ कविता का जादू
- ३५ मैं अगर सहीदों का चरण
- ३६ खून की ज्वाला
- ३७ जीवन का सुपरिणाम या सुपरिणाम ?
- ३८ चन्द्रशेखर कायाद भी मैंका मैंमवक्तव्य
- ३९ डाकू का कौ हुलास-प्रेम
- ४० सुख में पाके ताकती पापूत (म) का गमा
- ४१ ग्रामीणों की जीवन-रुचि
- ४२ मैं बैठा अभी कुँफागू हूँ
- ४३ दुनिया में बस, तुम्हीं गये हो
- ४४ ना रहेगा बाँट, न बजेगी बाँटुरी
- ४५ कुछ बाह्य प्रेम-गीतों की भी-
- ४६ तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन
- ४७ तुम्हारी अनन्य-मता-सी देह
- ४८ मेरा मूल स्वर्ग की विद्रोही है
- ४९ कलम की चुनौती
- ५० जीवन विवेकांजलि का

ਮੈਰੀ ਸੁਜਨ-ਸਾਜਾ

Handwritten signature or mark at the bottom of the page.



प्रपञ्च-संचलन : काव्य-सुरा



## माध्य-समूह

वसन्तोत्सव का आयोजन था। मण्डल मध्यमा हुआ था। और हुए  
अन्न-कुंजों को आगे ही आती हुई मंद वचन ने लोगों को मन में  
सुना। की किसी उत्पन्न कर दी थी। एक विशाल प्रांगण में बैठे  
हुए जन-समूह को किसी के आगमन की प्रतीक्षा थी। वह जन-समूह  
एक ही हुका का गुना नगर के हाई स्कूल प्रांगण में। उत्पन्न में  
भोज लेने वालों में ध्यान, बुद्धिजन और गामरिफ (समिलित)  
थे। उत्पन्न के मनोनीत अद्यक्ष की प्रतीक्षा की जा रही थी।  
एक दिन पूर्व ही गुरुवर्ग न-वर्गों को निर्देशित कर दिया  
था —

“ नाम वांछित-संघर्ष है। हर विद्यार्थी अपने घर के न में कोई  
वांछित वांछित वांछित वांछित। जिस लोगों को वांछित-वस्तु पर  
स्व-संकेत मिलता है, वही वांछित वांछित वांछित वांछित। ”

उस निर्देश का फलान हुआ था। कुछ छात्रों ने वांछित रंग के  
कुर्ते पहने हुए थे, तो कुछ ने कोट या जैकेट की ओरों में वांछित  
रंग के समान धातु हुए थे। कुछ छात्र कोट के कोकर में  
आम-मंजरीयां संभाल करके आए थे। जिस छात्रों ने कुर्ते कोरपाक में  
कोई ही वांछित रंग में रंगकर पहने थे, वे स्वामी जी को तब ही पुकार  
जा रहे थे। सिद्धांत विद्यार्थियों के बीच में केवल चार लड़कियां थीं  
जो वांछित रंग की छड़ियों में बड़ी मछली लग रही थीं।

उत्पन्न के मनोनीत अद्यक्ष को आगमन से हथि और अज्ञान  
को न हथि दौड़ गई। अद्यक्षों गुना नगर के प्रसिद्ध एडोकोट री-  
मायूनाल मार्ग। उनके आगे ही लोगों की बाँटों मिल गई। लोगों  
की बाँटों मिलने का एक कारण था। उस समय री मायूनाल मार्ग  
मदार्थित भारत ने तत्कालीन स्थूल व्यक्तियों। उनके कई संसारों  
ने कश्मिरी का रूप-वादा कर निराह। उत्पन्न का वर्तन प्रारम्भ  
करने के पूर्व री मार्ग को कुछ संस्मरणों का आगमन ले लिया जाय।

एक बार री-मायूनाल मार्ग मवालिवा को प्रसिद्ध मंगला देहां  
गए। जेने की जिता सड़क ही न गुजरते, लोगों की अन्न अपार लड़  
उनके लोको ही लेती थी। लोगों का वाक्यन था कि उन्होंने अपने

जीवन में सर्वोक्ति (सूत्र) मानते को दोष है। इन्होंने सूत्र लेने पर भी श्री मार्गिक बहुत तेज-दाग-दागते हैं और सामान्य-मानों को उनके सत्य-दागने को लिए दोड़-गाल का ही हस्ता लेना पड़ता था। जेले की सारी दुकानों में खोजने पर भी श्री मार्गिक को अपने नाम को न तो बोलें ही मिले और न जानेमान। उनमें लिए ये मसूरें विरोध ऑर्डर पर ही सैजियरी कंपाउण्ड बजाती थीं।

मैं तो श्री गायुमान मार्गिक सामान्य रूप से पायजामा ही पहनते थे, पर कभी-कभी वे पतलून पहनने का शौक भी पूरा करते थे। उनकी तौंद पर पतलून बिना बेल्ट के तो टिक ही नहीं सकता था और कटिनाई यह थी कि हिन्दुस्तान की कौन-सी बाजार में उनके नाम का बेल्ट उपलब्ध नहीं होता था। उनमें यह विमर्श होकर ही कुनकौन्ट को गर्जित नोकाटे ने। उन्हें भेंट में एक बेल्ट देते हुए गर्जित साहब ने कहा -

“वकील साहब, आपमें लिए एक बेल्ट मैंने (फ्ला ऑर्डर देकर) बनवाया है। मुझे उम्मीद है कि यह बेल्ट आपको प्यार होगा।”

वकील साहब ने उस बेल्ट को अपनी कमर पर लपेट कर दोष। वह बाहर में उनके नाम को लिए हुआ। वकील साहब ने गर्जित साहब को बहुत आभार माना।

वकील साहब ने निदा लेकर गर्जित नोकाटे ने अपने मित्रों को बताया कि जो बेल्ट वे वकील साहब को देकर आए थे, वह ही मिलिट्री को भी एक छोड़े का तंग था।

किसी ने श्री गायुमान मार्गिक का मोटापा दूर करने के लिए उन्हें एक औषधी की और निर्देश दिया कि एक महीने तक वे अपने आहार में कारक दूध और फलों का ही होवगए। अपना मोटापा दूर करने के लिए वकील साहब ने औषधी होवन को हाथ ही न्य निर्देशित आहार लेने की भी साधना की। एक महीने पश्चात् कुछ उन्होंने अपना वजन जेगा तो दस होने के बाद पर उनका वजन बहुत कम हो गया था। उनका वजन उस समय पंच-विंशति था।

हम लोग अपने धोड़े हुए पहंग पर पुनः आते हैं। मुना हाईको के मनेगीत अरुमाणा श्री गायुमान मार्गिक को पहचानने पर लोगों में

हर्ष-भरे हुए आँखों की लहरें सँभल गईं। उनका आचल-क्षीय आवाज  
विना हलचल की दो कुर्सीयों को सटा कर लम्बाया गया था और  
उस पर वह बसने एक दरी बिछा दी गई थी। एक बार भूल  
से उन्हें हलचल वाली एक कुर्सी पर लिटा दिया गया था तो वह  
कुर्सी उनके शरीर में जाँक कर रह गई थी। कुर्सी को हलचल होड़  
कर ही उन्हें कुर्सी-मुक्त किया जा सका था।

हमारे निवासलय में भाई-बहन की एक जोड़ी थी। बहन का नाम था  
शुभ कल्याण कोलेकर और भाई का नाम श्री धीरज कोलेकर।  
दोनों का कण्ठ बहुत ही सुरीला था और जो उन्होंने विद्योत्तु संगीत का  
प्रशिक्षण भी प्राप्त किया था। सरस्वती-गन्दना बहन-भाई की ही  
जोड़ी ने ही गाई थी।

कार्यक्रम के प्रारम्भ में कुछ गीत और भजन गाए गए और  
उत्सवप्रिया नाट्य-समूह प्रारम्भ हुआ। कविता पढ़ने वाले छात्रों को  
गान पढ़ने की प्रेरणा मिल गई। कविता पढ़ने वालों में मैंने  
अपना गान भी लिटा दिया था। इस अवसर पर पढ़ने की लिए  
मैंने 'गीतन की पहली कविता 'अ-स्वागतवाचंते' शीर्षक में  
लिखी थी। उस समय में गवर्नर राज्य का गुन्ना गान के हार्दिक  
की कवयित्री का नाम था। जब कविता-पाठ की लिए मेरा नाम पुकारा  
गया तो मुझे प्याराहट की अनुभूति हुई, लेकिन उस स्थिति पर मैंने  
शीघ्र ही काजू पालिया। हाँ, लोगों को मेरे विषय एक प्रसिद्धि बड़ी  
विचित्र लग रही थी और वह यह कि न तो मैंने वास्तव में रचना  
कोई परिचय प्रारण किया था और न कॉलेज पर आम्-मंजरी लगाई  
थी और जब मैंने अपनी कविता का शीर्षक 'अ-स्वागतवाचंते'  
प्रस्तुत किया तो एक को बहाना का वातावरण उत्पन्न हो गया और  
लोगों की प्रतिक्रिया नज़रों में चले जा गई। मैंने कविता  
अच्छी तरह कण्ठस्थ कर ली थी। गाना तो मुझे आता नहीं था,  
बहुत हाव-भाव के साथ मैंने वह कविता पढ़ी।

कविता थी:—

## अ-स्वागत वासंत

(१)

स्वागत पुनः हम वैसे वासंत करें  
देश पराधीन, हम राज मर वीर हैं,  
बान्दिनी है मातृभूमि, बन्दी हम लोग सब  
साम्राज-निहीन, सब भैंती हम दीन हैं ।  
कैती बिडम्बना है, आका फिरंगी यहाँ  
खोखल हमारा करने में हुए लीन हैं,  
अपना ही प्यार है परान्व हों हुकाआज  
दीन हम मान्य आगु १३-१३-१३ हैं ।

(२)

आए हो तो आइये, पर घुलाना हराम है  
भूज कर भी आज नृपसज न दियाओ तुम,  
भूज, काली, किरान्त जं सौदामनी-नरु हों  
काँदित है, वृत्तों पर शोले दहवाओ तुम ।  
-नरु नहीं' मुसलित-समोरन की आज हमें  
अपन सही चारु, कान्ति-उपार् आओ तुम  
-मस्मात्, कसो दासता है इस जीवन को  
स्वागत करेंगे, इस भैंती यदि आओ तुम ।

मेरे काव्य-पाठ के बीच बाह-वत की हर्ष-ध्वनिओं से उठ ही रही  
थी, काव्य-पाठ समाप्त होने पर तालियों की तुमुल गड़गड़ाहट प्रारम्भ  
हो गई और वह बहुत देर तक चलती रही । विद्वानों के प्रश्नों का जवाब  
ही नहीं देकर खजानों की लालच को लेकर वहीं रुक गया । वे अपने आसन  
से उठे और अपने अपने हृदय से भगा लिया । जितना भाव है मैंने  
उनके-पराज धुए । मेरे गुरुजनों में है श्री आनन्दप्रसाद त्रिपाठी,  
श्री रञ्जनलाल प्रसाद और श्री गोकुलकिशोर अरनागर तथा  
श्री आशीष प्रसाद किया । इन छटना से मेरे काव्य-जीवन का  
प्रारम्भ होगया ।

अपने काव्य-पाठ के सम्बन्ध में मैं तो बातों का स्पष्टीकरण  
करना चाहूँगा । एक तो यह कि काव्य-लेखन का लिए मैंने पन्तमित

दरदों के समाग पर पन्नाक्षरी धरन्दन लो चुन। इसी बात यह कि  
मेने क्रान्ति की आँखों का आह्वान क्यों किया।

पहले सिंगी का सखीकरण यह है कि अपने वचन से ही मैं  
पन्नाक्षरी धरन्दन के सखीकरण करता हूँ। मैं वर्तमान समय में  
ने गुलाबिल के अशोकनगर समाग का निवासी हूँ। हमारे मोहल्ले  
में श्री रामनाथजी साहू नाम के एक सज्जनको कविता-सर्वेक्ष बहुत  
प्रेम है। वे मोहल्ले के बच्चों को एकत्र कर उनकी मदद करने की  
परीक्षा किया करते थे। किसी कविता को वे चले-चले-चले-चले  
लोलाते थे और फिर हम लोगों से पूछते थे कि इस कविता का  
साद सुनाओ। बिना अन्तरे हुए पूरा कविता सुना देने वालों में  
मैं हमेशा ही प्रथम रहा करता था और उन्हीं इन्सान पाया करता  
था। कभी-कभी यदि भूलने की स्थिति आती तो मैं अपनी तरफ  
से कोई शब्द जोड़ दिया करता था, जो अन्तरे हीर भाजा की दाहि में  
बिलकुल सही बैठता था। श्री साहू कभी-कभी पहले सुनाए गए  
कविता भी पूरा लेते थे। इस प्रकार कविता पाठ तक पहुँचते-पहुँचते  
मुझे लगाता था कि कविता साद हो चुके थे। उनमें से बहुत से तो  
आगे तक आते हैं।

क्रान्ति की आँखों के प्रकाश में मैं यह कहना चाहूँगा कि एकवार  
एक क्रान्तिकारी के दर्शन करने के लिए मेरी कुरी तरह पिराई हुई थी।  
इस घटना को मैं एक शर्माता हूँगा : —

### पठार एक नूतने उल्लास

उत्तराखण्ड में प्राथमिक विद्यालय में पढ़ता था। अपने आसपास के  
वातावरण से मैंने भारतीय क्रान्तिकारियों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया।  
पुस्तकें भी थी। सरदार भगतसिंह केन्द्रीय-असेम्बली में बस के बाइक  
कक्ष में अपनी गिरफ्तारी के चुके थे। उनके हाथी क्रान्तिकारी श्री  
शिवराम राजगुरु को महासचिव के गिरफ्तार करके लाहौर पहुँचाया  
जा रहा था। इसका मैं अनुभव था कि जिस मार्ग से क्रान्तिकारियों  
को ले जाया जाता था, वही मैं पढ़ने वाले ज्ञानी स्टेजों पर दर्शकों  
को आपस में एकत्र हो जाती और क्रान्ति का प्रबोध करने में

बहुत कठिनाई हो रही थी। इन कठिनाईयों से निपटने का आगम गैरत  
उपाय निकाला कि क्रान्तिकारियों को रेलवे के प्रसिद्ध मार्गों से ना-  
ले जाकर, छोटे-छोटे और अहमदाबाद मार्गों से गंतव्य तक  
पहुँचाया जाता था। क्रान्तिकारी राजगुरु महाशय में गिरफ्तार  
हुए थे और उन्हें दिल्ली होकर लाहौर पहुँचाया था। उन्हें लाहौर-  
पटवर्तन-जेल में सम्मिलित किया जाता था। उन्हें संभवतः  
मुसलमान मार्ग से लेन्दन रेलवे के नीचा जंक्शन तक लाया गया  
और वहाँ से सिधे दिल्ली व ले जाकर नीचा-कोटा मार्ग से दिल्ली  
पहुँचाने की योजनाओं योजना प्रारम्भ हो गई थी। इस नीचा-कोटा  
मार्ग पर मेरा जन्म-स्थान अशोकनगर स्थित है। इस मार्ग के लिये-स्टेशन  
का नाम हमेशा और गहरा नाम पड़कर था। सन् १९५० में स्वायत्तता-  
प्राप्ति के पश्चात् तब और रेलवे-स्टेशन, दोनों का ही नाम अशोकनगर  
हो गया।

उ। समय की बात है एक तारवायु अशोकनगर के रहने वाले थे।  
किसी प्रकार उन्होंने अशोकनगर के तारवायु को तार-संदेश दे दिया  
कि दोपहर को ट्रेन है ब्रिटिश-प्रभुता के विरुद्ध क्रान्तिकारी को  
गिरफ्तार करने कोटा पहुँचा रहे हैं। सन्तानों के लिये देर नहीं  
भागी। जिस समय ट्रेन प्लेटफार्म पर आकर रुकी, प्लेटफार्म  
‘दृष्टिनिर्जित’ से एकतापूर्ण गरा हुआ था। गाड़ी रुकते ही लोगों  
ने ‘भारत-माता की जय’ के नारे लगाया प्रारम्भ कर दिया। ट्रेन  
के आन्दर कोई क्रान्तिकारी नहीं आया - बस सिड्नी के बाहर  
निकाला और स्वयं को ‘भारत-माता की जय’ का नारा लगाकर  
जाना का सामा दिया। उ। समय सिड्नी पर कोई भी नहीं रुका  
करती थी। सिड्नी के आन्दर कोई ब्रिटिश-प्रभुता के जवानों  
ने क्रान्तिकारी को सिड्नी के बाहर ले हटा दिया और कुछ गोरों  
सैनिक प्लेटफार्म पर दूध पड़े और अर्धतः रेलवे के प्लेटफार्म से  
ले लीना, जिससे अन्य लोग वहाँ न पहुँच सकें। कुछ अन्धों-  
तारु शायद है कि गोरों सिड्नी के बाहर और शर्ट पहने हुए थे। उनके  
मोर्चे सिड्नी के बाहर पहुँचते थे और उनके पुराने जूते हुए थे।  
उनके पैरों में भारी-भारी जूते थे।



सभी लोगों को इस स्थिति को प्रति आक्रोश था कि गौरे सैनिक  
जिन्हें संक्रान्तियों को नहीं देखने दे रहे। धन-धर्म में एकदम  
धन का नाम प्रेमप्रसाद गार्ड था। उनका विचार हुआ —  
“अभी” से कोई लड़कियाँ (पहली दृष्टि) मिल पाय तो किसी गौरे  
को खुले कुदर में जोर से मार कर भाग जाऊँ।” वे दृष्टि को  
में फुट गए। जान-मंडली को किसी एकाग्र नौ विचार रख कि  
जि जल तक दृष्टि में नहीं है, तब तक क्यों न किसी गौरे को  
पत्थर मार कर भाग जाय। चुनौती में स्वीकार। एकाग्रता  
से एक पत्थर उठा कर दौड़े। एक गौरे सैनिक की गोपनी को  
विशाना बना दिया। पत्थर की मार से गौरे सैनिक तिलमिल  
उठा। सैनिकों की ओर से ‘पवार-पवार’ की आवाजें उठने लगीं।  
आक्रान्तियों को घेरे कर गौरे सैनिक स्वयं नहीं भाग सकते थे। आखिर  
एकान को मोड़ कर लोगों ने घेरा डाल कर कुदर को पकड़ लिया  
गौरे मेरा दुर्भाग्य देखिए कि उन लोगों ने कुदर पकड़ कर गौरे  
सैनिकों को ही एकाग्र कर दिया। अब तो आप कायना कर  
सकते हैं कि कुदर पर क्या कीती होगी। कुदर पर वेगैरे  
गार पड़ी। कुदर पर धूलों की वर्षा हुई और गौरे सैनिकों में भारी-  
भराम धूलों को लेकर लगाई गई। यह मेरा सौभाग्य था कि गाड़ी में  
मालों की छोटी देवी और मेरे प्राण बच गए।

उस समय तक हम लोगों को यह मान्य नहीं था कि वह  
आक्रान्तियों को न था। बाप में एक भगवति, सुकदेव और राजगुरु  
को जोड़ी पर लटकाया गया और उनके चित्र ‘समान-पत्र’ में दृष्टि  
को चित्र देव कर हमने पहचाना कि वह आक्रान्तियों लिवरग  
राजगुरु था। इस घटना ने मेरे मन में अंगुली की छत्र विद्वेष  
और आक्रान्तियों को प्रति अनुशान-भावना उत्पन्न कर दी। यदि  
उस समय में बड़ा होता तो निश्चित रूप से आक्रान्तियों-दल में  
जा मिलता। जब मैं बड़ा हुआ, उस समय कि आक्रान्तियों-आन्दोलन  
लगभग समाप्त हो चुका था। अभी मेरे मन में आक्रान्तियों को  
बात है। आक्रान्त ही मेरे चिन्तन को विषय बन गया। जब

मैंने लिखना प्रारम्भ किया तां मेरे जीवन में क्रान्ति में-  
प्रभुत्व स्थान प्राप्त किया।

मेरी पिछड़ी की पहना आई-गई हो गई। पर वह समूचे नगर में  
क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर गई। नगर में क्रान्तिवाहियों को चर्चे होने लगे  
और क्रान्तिवाहियों का विषय में बड़-बड़ कर अफवाहें फैलाई जाने  
लगीं। एक अफवाह इस प्रकार की :—

“ गांधीजी को विश्वास नहीं हो रहा कि मुझे भरक्रान्तिवाही  
लोग लिखात आँखों की साम्राज्य को उखाड़ देंगे। क्रान्तिवाही लोग उन्हें  
लिखात देना माना चाहते थे। एक बार गांधीजी जब कामकाज में गए तो  
कुछ क्रान्तिवाही लोग गांधीजी को एक स्थान पर ले गए। उनको आँखों  
पर पट्टी बाँध कर उन्हें ज़िरी तहखाने में ले जाया गया और वहाँ  
उनको आँखों की पट्टी खोल दी गई। गांधीजी ने देखा कि कई  
नगरों में बम से बम भर रहे हैं। उन्हें बताया गया कि भारत को  
कई प्रभुत्व नगरों में डाली प्रकार हमारे बमों के कारण है। उस समय  
ही गांधीजी को विश्वास हो गया कि क्रान्तिवाही लोग भारत को  
निराश्रित कर सकते हैं। ”

इस अफवाह ने गांधीजी को उन्मोह तो भन गांठें हैं पर रास्ताई  
इतनी अवश्य है कि छोटे-मोटे पैमाने पर ही सखी, भारत को कई  
नगरों में क्रान्तिवाहियों द्वारा बम-सिपाही के कारण है प्रारम्भ किए  
जा चुके हैं।

उस समय में गन्धर्व आदि विद्वानों को आँख बम बनाने की  
बात सोचने लगा था। राजन वर्ग में बंबड़ी रा खूनी-फुटवान की  
स्पष्टियों को समाप्त पर बमों की लड़ाई की स्पष्टी हो लगी। मेरे एक  
सहपाठी श्री गजेंद्र सिंह चौहान। एक दल को नेतृत्व ले करते थे  
और दूसरे दल में। इस लोग अपने-अपने ढंग से बमों को निरूपित  
करते थे। इन बमों में इस लोग पटाखों का सलाभा, बारूद, कीर्न  
और गंधर्व के दुकड़े भरकर उन्हें तेली की मँद के अन्दर को बना  
लेते थे और गाँव के बाहर पहुँचकर उनको अजमाया करते थे।  
एक दल दूसरे दल को ऊपर उन बमों को सँभाल करवाता। बम  
का सँभाल लेते समय इस लोग साफत से बचने को लिए सखी

पर जोड़-पाश करते हैं। जमी-जमी कोई जायज भी हो जाता करता  
था। बड़े भागों को एक हमारे हाथ रखना तो श्रेष्ठ था। जमी  
तो हमारे पिछड़े करने, यह एक ही जगह कर दी गई। जो वे प्रतिस्पर्धी  
भिन्न श्री गजेन्द्राहिं-मैदान इस समय तक (जिन्ना एवं सत्र न्यायाधीश  
को पद से अवकाश ग्रहण कर चुके हैं।

महान प्राज्ञिष्णी रज्जुगुरु को अर्पण कर दिया था - मुझे ।  
उन्हीं के दल के नेता और महान प्राज्ञिष्णी - चन्द्रशेखर पञ्चाय भी  
तीन दिन तक आशोकनगर में ही एक हनुमान-मन्दिर में छहर-छर  
चले गए थे । वे साधु-वेदा में आए थे और नगर के बाहर पच्चाड़ीलोक  
के हनुमान-मन्दिर में तीन दिन रुकें थे । इस तथ्य की जानकारी  
हम लोगों को उन्हीं के प्राज्ञिष्णी साजी डॉ० भगवानदास माहेश्वर  
ने दी थी, जिन्हें हम लोगों ने 'स्वाध्याय मारुत' अभिनन्दनार्थ  
आमंत्रित किया था । एक तेजावी साधु को स्वयं में आशोक की  
मूर्ति नगर में जैल-भूमी भी और सैकड़ों लोगों ने उनके दर्शन  
किए थे । अपने मोहमे वे लोगों के साथ उनके दर्शन होने भी  
किए थे । उस समय ही जहाँ ६ का धारा था ।

बहुत छोटा-सा सौगन्ध आतिथी-आन्दोलन में भरे गृहगार  
अशोकगार ने भी दिया है। पंजाब से आए हुए एक सज्जनश्री मानिकराज  
उस समय 'अशोकगार' में रह कर सड़क-निर्मल्यकार्य में हुक्मी  
को काम करते थे। उन्हें जंगल में रहना पड़ता था और इतिहास  
के कंधों पर हमेशा एक साइफल लंग रहते थे। कभी-कभी नदी  
कान्हाली कमर में कारतूसों की माला और रिवाल्वर घोंसल भी  
पहनते थे। आतिथी भगत सिंह के परिवार से उनका परिचय था।  
वे भगत सिंह के कमरों कारतूसों का प्रदाय किया करते थे। इतिहासकार  
पता चलने पर उन्हें कष्ट भी भोगने पड़े थे।

जात जो प्रारम्भ यहाँ से हुआ था कि 'साहित्यिक गतिविधियों' की प्रेरणा कुल्लूजन गृहण करने लगे। उस समय वहाँ साहित्यकारों की अत्यन्त घाटा दशा थी और किसी न किसी रूप में समाज के अस्तित्व में आने के लिए प्रयत्न करने लगे थे। अन्तर्देशीय हमारे पास सुभाषिणी

गिरिजाकुमार मानपुर अशोकनगर में ही रहने वाले हैं। उस समय न  
 मौलियों में विद्याभ्यन कर रहे थे। जब कानून के अधोक्तनगर जाते थे,  
 तो कानून-गोष्ठी अधोक्तन नी जाती थी। हमारे नगर में श्री सम्पूर्णव्यापक  
 गुरु जी द्वारा साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र रहा करता था।  
 उस समय कानून एनिवर्सिटी वंशोत्तर श्रीवास्तव थे। इस प्रकार न  
 अधोक्तन में न बहुत समय बीतता था। एक बार तो श्री वंशोत्तर जी  
 ने राजन-सदर में साहित्य-सम्मेलन का अधोक्तन किया था।  
 मेरे काव्य-गुरु जी श्री मानुषकाशक्ति-मोहन उन दिनों  
 अधोक्तन में साहित्य-विद्यालय में ही अधोक्तन थे। बाद  
 में मेरे गुरुजी ने उनका एकान्तर जिम्मेदार मुख्यालय गुजरात  
 में हाईस्कूल में हो गया। मेरे नगर के अन्य साहित्यकारों में  
 श्री रामप्रसाद शर्मा, श्री जगदीशकिशोर लम्हारे, श्री रघुवीरसिंह  
 'सप्त', श्री प्रेमनारायण श्रीवास्तव, श्री लोकारे, श्री मानवन्ध  
 जी का नाम विशेष अधोक्तन है। श्री मानवन्ध जी न साहित्य  
 में जाते थे। जब न कविता पढ़ते थे तो कविता की अपेक्षा उनके  
 रस-भाव में साहित्य की छवि अधोक्तन होता था। जिस कारण पर  
 न कविता लिखते थे, न जन्म कुंठली की मंत्री आनी पौंगली  
 बना कर जाते थे और कविता पढ़ते-पढ़ते कारण का एक सिर  
 अधोक्तन तो घुने जाता था। कविता रामायण होने न पहले उन्हें  
 विद्यालय बहुत मुश्किल होता था। उन पर हरिश्चंद्र का अधोक्तन  
 नहीं होता था।

### काव्य का निरव

एक बार ऐसा हुआ कि श्री गिरिजाकुमार मानपुर बीमार पड़े और  
 न अधोक्तन पर अधोक्तन पहुँचे। उन्हें लाइलाइ हो गया था।  
 लाइलाइ तो अपना समय लेकर ही हो गया, पर कमजोरी का कारण  
 उन्हें कई दिनों तक नगर में रहना पड़ा। उनका कोई साहित्य-मिलन  
 प्रकाशित होने वाला था और उनकी साधुबिर्भूतियाँ करने की उन्हें  
 पड़ना था। श्री मानुषकाशक्ति को मालूम हो गया था कि मैं भी  
 कविता लिखने लगा हूँ। इस लगे एक ही मोह में रहते थे।  
 उन्होंने न काव्य-संवादन की उपाय करी लेना करने का वाक्य मुझे

-दे दिया। वे मुझे निर्देश देते-पते और मैं तदनुसार कविताएँ उतारता  
जाता था। यह कार्य करने में मुझे अच्छी कविताओं की कमी  
परफे हासिल होगई। श्री आनन्द ने काव्य-लोचन सम्बन्धी कई  
गोते मुझे बताई। मेरे जीवन पर इनका बहुत अध्ययन प्राप्त पड़ा  
और मेरे काव्य-लोचन में निवार आगया। इसके लिए मैं अत्यन्त  
शुभ आभारी हूँ। आजकाल के आत्मश्रवणी और दूरदर्शन के  
साधक-दर्श के पद में अत्यन्त ग्रहण करने दिखी रह रहे हैं।  
काव्य-लोचन में आभास

गुप्त हाईस्कूल के वार्षिकोत्सव के अवसर पर एक हस्तनीय  
कावे-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। उस दिनों राष्ट्रीय रचनाएँ  
लिखना मुझे सम्मान जाता था और जिन्हीं सम्मानित अवसर  
पर सुप्रसिद्ध कविता के लोग वाचन-विशेषी प्रतिविम्बों को दोह  
नेते वहाँ अवश्य ही उपस्थित रहते थे। उक्त कावे-सम्मेलन में तो  
जिन्हीं के पुनिष्ठ अन्वेषण महोदय भी उपस्थित थे और उन्होंने जोबित  
फर दिया था कि वाचन-विशेषी कविता पढ़ने वाले को बहुत अधिक  
डाल कर ले जायेंगे। उक्तकी दृष्टि-वाचनी का कावे-सम्मेलन के  
साक्षीन पर बड़ा बुरा असर पड़ा। कवियों ने 'हैं' कुछ लोग तो -  
कभी कभी कविता गाए और कुछ कवि ने-पार पंक्तियों में सुनाकर  
श्रुत जानने का कहना लगा कर बैठ गए। पुनिष्ठ-आत्मश्रवण महोदय  
की-संवेदनशीलता श्रुत कावे-सम्मेलन के मध्य में मेंडरा रहा था  
और कवि लोग 'गालियों' की कलाश कर रहे थे। मेरे प्रदेय  
गुप्त श्री आनन्दशास्त्रि-संस्थान कावे-सम्मेलन का संचालन कर रहे  
थे। उन्होंने प्रश्नवाचक सचने 'हैं' मेरी ओर देवा और मैंने भी  
अपनी स्वीकृति-सूचना सचने 'हैं' उन्हें आश्वासन कर दिया कि कविता  
श्रुताने में पूरी तरह है हैमर हूँ। मैंने एक बहुत ही विप्रोधी कविता  
लिखी थी और जिन्हीं परिणाम की निम्नता दिए दिना में उसे सुनाने  
के लिए आतुर था।

संचालक अक्षेदय ने अत्यन्त श्रुतिमान तेमर करके और मेरी  
कविता की उल्लेख की प्रशंसा करने काव्य पाठ के लिए मेरा नाम पुकार  
दिया। मैं उस और यह वक्तव्य देकर कि कविता कविता होती है -  
और उसे कोई तन्त्रज्ञ स्वीकार नहीं होता, मैंने एक ओजस्वी  
कविता का पाठ प्रारम्भ कर दिया। वह कविता यहाँ उद्धृष्ट कर रहा हूँ:-

क्यों डाली तुमने चिनगारी ?

मेरी इस धोती कुटिया में, क्यों डाली तुमने चिनगारी !  
तों कहता कपड़े चूम-चूम, आई आर मेरी भी नारी ।

अब मैंने धोड़ दिया रोना  
आँखों में पानी भर जाना,  
जहाजिर होकर अन्याय और  
आत्मचारा को सह जाना ।

विद्या भाग्य पर नहीं भुगने  
विधि का मैं देता दोष नहीं,  
मैं प्रेम रहा हूँ, नया मेरे  
भुगदण्डों में भुग आश नहीं ?

तमों चूम होकर ही हूँ तुम्ही आजात और पीड़ा तारी !  
मेरी इस धोती कुटिया में, क्यों डाली तुमने चिनगारी ?

यह मड़केजी, ज्वाला होगी  
जल रहा तुम्हापर होगा,  
जल जाने में ही भाग्य और  
बन कर जाना दुष्कर होगा ।

इस प्रती आँखों में लपेट  
गिरानेगी, महात्मा होगा  
मैं गरीब-पातक्य नष्ट  
तब मेरा अहं सच होगा ।

कह दूँगा, भावन न मैं रहूँ तुम, भुगको दानवता प्यारी !  
मेरी इस धोती कुटिया में, क्यों डाली तुमने चिनगारी ?

मेरी इस धनपूर्ण होगी

अब जोहित से सिंचित प्रेम पर  
क्यों कहो स मैं हूँ, मुझे  
मेना प्रपत्तों में द्यमर ।

मेरे अंतर में प्रतिशोषी  
आवाँ में आहार लहराते,  
मैं विद्रोही बन गया आज  
जग की होकर जाते-जाते ।

मुझ में गौरव का लकड़ हुआ, भाग्य जो अभी खिलवतली !  
मेरी इस धोती कुटिया में, क्यों डाली तुमने चिनगारी ?

अब तक मैंने ज़रूर ही भोली थी  
 - रण की लोदी पर-मदा रहा,  
 तोपों ने मुँह खोले, गोले  
 बरसते हैं निश्चल खड़ा रहा।  
 आपने खोले हैं ना पागो कोर  
 मैंने तो दुर्ग बना डाला  
 चिनगो राखो तुम छुड़ी छुट  
 फिर भी सौं दे मेरी खाली !  
 - मेरी निरा असर भँवर बना, तुम मानवता के आदि कारी ।  
 मेरी इस छोटी छुटिया में क्यों डाली तुमने चिनगारी ?  
 अब तुम्हें देखने ही होंगे  
 निज आँखों से अपने खँडहर,  
 मैं आज प्राप्ति की वीर पर  
 गाता हूँ ओ विद्रोही स्वर ।  
 तुम्हें लौ लच्छन में अब तक  
 बाँध जा सकते दीवाने,  
 हे नौन राक़ काता उनको  
 ओ निकल पड़े सीमा ताने  
 उगरे निहका भय फिर उनको हो एक ही है क्या आचारी ?  
 मेरी इस छोटी छुटिया में क्यों डाली तुमने चिनगारी ?  
 तुम उड़ी उड़ी भाग्य के पाँवों पर  
 विलुप्त आँख का हृदय-चौर,  
 मैं हिसाबी शक्तिमूर्ति बना  
 दौड़ूँगा पीछे हो आचार ।  
 तुम कहो दिपांग, देना हूँ  
 मैंने जग का लोना-लोना,  
 ओह बन्ध पाकोग निरुद्ध  
 वह तो होगा ही, जग होगा ।  
 देखूँगा, फिर निहका बल पर वह नाओगे सत्ता-चारी ।  
 मेरी इस छोटी छुटिया में क्यों डाली तुमने चिनगारी ?

तुमने तो सदा सम्मता पर  
मानवता पर अभिमान किया,  
पर आज न कोई क्यों तुमको  
जब मेरा प्यार वीरान किया।

मेरे इतना नन्दन-आनन में  
कौनों को तरु लोने वालो  
मुझको जानने की पीड़ा दे  
लोला सुख है तोने वालो।

यह कहें तुम्हारी गई आज मानवता की हेलोसरी।  
मेरी इस दोरी कूटिया में, नयों डाली तुमने चिनगारी?

तो, जो देखे डाक सावधान  
मुझ में कितनी है भरी आग,  
झाड़ें तुमको जानना होगा  
जीवन की गगता, मोह जाग।  
इस अर्ध-कृश-तन में दोर  
हैं कितना यौवन भरा हुआ,  
इसमें कितनी माती, इसमें  
कितना प्रागज्जन भरा हुआ।

आब मैं न मौन इससे पर, है काफ़ी होने की तैयारी।  
मेरी इस दोरी कूटिया में, नयों डाली तुमने चिनगारी?

मुझे यह कविता सुनाने में आगमन काया लपटे को समझना।  
इसका कायल यह था कि निजान-स्वात पर-तामियों की गड़गड़ाहट होती थी  
और भोग कृष्ण पंक्तियों को दुहराने का अनुभव करते थे। कविता  
की समझ में भी बहुत दे तक तामियाँ बजती रहीं। मेरे पत्र-पत्र भी-  
कई कवियों को अपनी कविताएँ सुमाती थीं। नातायल कृष्ण इस प्रकार  
का बन गया था कि लोग अनुभव कर रहे थे कि कवि-सम्मेलन यही  
समाप्त कर दिया जाय। किंतु, यह तो नहीं किया गया, पर इतना अवश्य  
किया गया कि मेरे चान तामियों ने जब स्वयं ही कविता-पाठ करने  
में इनकार कर दिया, तो प्रोता-समूह ने कवि-सम्मेलन को समाप्त  
की आज्ञा प्रकट की। दोहन ही कविता-का जो अनुपेक्षा किया।



श्री सिंह ने जन-अग्रणी स्वीकार किया और बड़े दयावश से साथ  
 एक अलगज्ज आंखों की कविता सुनाई। उनकी रचना यदाही  
 जोड़ीगी, पर वह राष्ट्रीय भावनाओं से भरपूर थी। वह रचना  
 बहुत पसंदी। लोगों की तारीफें मंली हुई। उसी रचना की तिनवार  
 सुना गया। दुर्भाग्य से मैं उस कविता को यहाँ उद्घाटन नहीं  
 कर सकता, क्योंकि उससे पश्चात वह कविता नहीं उपलब्ध नहीं  
 हुई। उसकी कानिमा का धनितियाँ जो मुझे याद रहे गई हैं, इन  
 प्रकार हैं -

"कसमसाती हों भुजाएँ, तो प्रलय की आँखों में,  
 फड़फड़ाते हों, तो दूध की तरवारों में।"

कवि-समैलन समाप्त हो चुका था। राष्ट्रीय-चौक का एक  
 विचित्र-मालूम पैदा हो गया था। पुलिस अधीक्षक महोदय  
 पहले ही-चौक की दे-मुख से कि यदि किसी ने आपत्तिजनक  
 कविता पढ़ी तो वे उसे गिरफ्तार करके ले जाएंगे। लोग प्रतीक्षा  
 कर रहे थे कि वे किसी की गिरफ्तारी के लिए उठेंगे। यह  
 स्पष्ट ही था कि वे मुझको या श्री आनुप्रकाश सिंह-चौहान को  
 गिरफ्तार करेंगे। यहाँ उन पुलिस-अधीक्षक से होदय का नाम  
 निवृत्त भी अनुचित प्रतीत नहीं होता। उनका नाम था श्री  
 दशरथासिंह। 1968 हुआलदन, रौलीना-चौरा आँ-चौर पर  
 चुकीली मुँहों उनके आलोचन को प्रभावशाली बना देता थी।  
 मैं उन्हें अदृष्ट। पहले वे श्री आनुप्रकाश सिंह को पकड़ चुके थे।  
 उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें सब मिलाया। इससे मैं मुझे  
 भी उल्लेख नहीं हुआ था और मेरी रचना की प्रशंसा करते हुए  
 मेरी पीठ थपथपाई। मेरे हुए प्रकाशनालय का श्री आर० व्ही० पंतोजी  
 ने भी मेरी पीठ थपथपाई। श्री पंतोजी श्री लज्जन्ती बाहब के स्थान  
 पर आए थे। मेरी कविता सुनकर तब इन प्रभावित हुए थे कि समय-समय  
 पर तो मुझे अपने पर भी दुष्प्राप्त कर रहे हैं। एक बार उन्होंने मेरा एक  
 बड़ी अपाधा प्रस्ताव कर दिया था। 50 पदों का उन्होंने कुछ  
 अंग्रेजी-पद करवा दिया।

मुझे आश्चर्य नहीं रही थी कि कहीं पुलिस 'अन्वेषक' (१३) -  
 दफ्तरी सिंह मुझे तंग न करें। मेरी बात धारण निर्भूल सिद्ध हुई। समय  
 माने पर उन्होंने मेरी सहायता ली थी। इसका प्रमाण मुझे तब मिला,  
 जब विद्यालय चौड़-मुल्कन को पकड़कर मैंने सन १९५२ में -  
 'भारत-वर्षा-आन्दोलन' में पुलिस भाग लिया और मैं गिरफ्तार  
 किया गया। मेरे साथ मेरे एक सहपाठी मित्र श्री विद्यापीठ गौड़  
 भी गिरफ्तार हुए थे। हम दोनों को गुन्ना की फातहगढ़ जेल में  
 रखा गया था। फातहगढ़ गुन्ना जिले का कानूनपानी कस्र जाता है।  
 यहाँ पानी की बहुत कठिनाई रहती है। हमने दोनो भाई सिपाही लोग  
 चारपाई पर बैठ कर गहराई में को चारपाई के नीचे बड़ी-बड़ी भावियां  
 रख दी जाती थीं। यहाँ के जो पानी आभियाँ में एकत्र हो जाता  
 था, उसी से वे लोग पानी पीते पीते थे। हमें जेल में कोई आपुष्टि नहीं  
 नहीं हुई। उन्हीं पुलिस-अन्वेषक श्री दशरथाष्टि साहब ने  
 जेल-आधिकारियों को समझा दिया था कि इन लोगों को कोई  
 कष्ट न हो।

ईद मुबारक हो

जेल में उतार दूँते हुए प्रांग को धूर्त कर रखा, जिसका उन्को  
 पहल कर मुक्त हूँ। उत समय में हरिश्चन्द्र का दिवाली का भी अपने  
 विद्यालय तथा नगर में एक आचल करके रूप में प्रसिद्धि हो चुका  
 था। मेरे गए प्रकाशदत्त का श्री पन्तोजी को मुझ से बहुत प्रसन्न थे।  
 एक बार में उन्हीं को प्रति बड़ा अपमान कर दिया। मेरे एक सहपाठी  
 श्री आनन्दमणि मित्र ने भी हरमण १३ीं गान। मैंने भी-द्वारा प्रसिद्धि लक्ष्य  
 में प्रकाश प्राप्त कर चुके थे। ईद के अवसर पर उन्होंने मुझे प्रेरणा  
 दी कि हम लोग मुस्लिम देश-धारण करने हेतु साहब साहब को  
 ईद मुबारक देने-वाले। यदि धर्म का प्रवर्धन उन्हीं ने कर लिया।  
 जब इस लोग मुस्लिम देश-धारण करने निकले तो हमारे  
 आजादी लक्ष्य लोग भी हमें नहीं पहचान सके। रात को  
 समय था। एक टूटती आली पर खेमाग डाल कर हम लोग  
 अपने प्रकाशदत्त का श्री-मन्त्र पन्तोजी को पर आ पहुँचे। उनका  
 दरवाजा बन्द था। मैंने सीढ़ी काताज बना कर फुटपाथ -  
 "ईदमास्तर साहब।"

हमारी आवाज सुनते ही दरवाजा खुलने लगा और हमें हेडमास्टर साहब  
पकड़ गए। उनके चेकबुक की देख किए बिना ही उन्होंने कहा -

"आरे सरल की हस्तलिपि! कितनी भोला इतना समय पैसे  
आए ही क्यों यह क्या स्वागत बना रहा है?"

हम लोगों में भी बहुत ही आश्चर्य हुआ कि एक चेकबुक से कुछ  
हिस्से में ही अपने हमारा पहचान कैसे और हमें जाम से  
पुकारा। हम लोग अपने एक मातृका भुकाए हुए पड़े हो गए।  
ले हमें अच्छा लगा और बहुत ही मिलाया। हम लोगों ने  
यह बताया कि हम लोग किताबें दे रहे हैं उनसे दादा पढ़ेंगे।  
हमें उस समय और लाजिलेना पड़ा जब ईदगी में टैक्सा  
पर हमारे पास वाली आली निकली। हेडमास्टर साहब ने हम  
लोगों को बहुत लाजिलेना किया। उनका सम्मान था -

"क्या तुम लोग इतने बड़े जमाने पितृक दादा जो पकड़ते थे?"  
उनके पैर छूकर हम लोगों ने आगे दामा-याचना की। उन्होंने  
हमें दामा कर दिया और अपनी प्रियों को आवाज दी -

"आरे कृष्णा! ओ प्रभा! देलो तो, तुम्हारे भाई लोग आए  
हैं, इनकी कुछ खाते-पीते करो।"

कृष्णा की प्रभा उनकी प्रियों की। तो भी हमारे लक्ष्य दिव्यलय  
में पढ़ती थीं। ले किनाड़े की ओर में पड़े होकर हेडमास्टर साहब  
दादा हमारे की गई एगतिर को नज़र में रही थीं। अपने जेताजी  
की आवाज सुन कर वे कमरे में पकड़ हो गईं और में पकड़ दवा कर  
जो भर कर बैठने से परचात अच्छा-बली गई और बड़ी-बड़ी  
तश्तारों में बैठने का सामान लाने लगे। हम लोगों ने बड़े संतोष  
को साथ कुछ लाया-दिया और एकदम हेडमास्टर साहब ने पुनः दामा-  
याचना करके उनसे विदा मांगी। कृष्णा की प्रभा दोनों ही हम लोगों  
को पहुँचाने फाटत तक गईं। जैसे उनसे विदा लेते हुए प्रार्थना  
की -

"हे देवि! आपसे यही प्रार्थना है कि आप हमें शांति  
का आशीर्वाद विद्यालय में मिली है भी न करना।"

शरारत भरी हँसी लेंचते हुए बहुत प्रभा ने कहा -

"हो कभी-कभी हमें कदियाँ सुनाते रहना।"

कृष्णा ने भी इतना नज़र की दुष्टि की। हम उन्हें दामायाद

देते हैं जो जितने दिन हम लोग विराजमान रहे, उन्हींके उपकारों  
का उल्लेख किया तो भी नहीं किया।

गुला हरिद्वार को गंगा के साहित्यिक वातावरण के सम्बन्ध-  
में भी कुछ लिखें। गुला हरिद्वार में उस समय बहुत अच्छे-  
अच्छे कवि-समूह थे - एक है एक बड़े का। उन्हींमें से एक का नाम  
"गंगा वंदन" से भी कोई नाम नहीं पड़ेगा। साहित्यिक वातावरण  
में बहुत अच्छा था। हमारे साहित्यिक संचारों में श्री मनुष्य-  
पति, श्री रजनमान प्रसाद और श्री गोकुलचन्द्र मदन मोहन  
गोस्वामी के उल्लेख में पहले ही कर चुका हूँ। धन-पत्रों में श्री-  
गोपालचन्द्र - श्री- २ यशमनारायण विजयवर्गीय, श्री-  
शंकरलाल त्रिपाठी (अब लखनऊ) श्री वृजनन्दन त्रिपाठी, श्री भैरवप्रसाद  
दत्त और श्री बालप्रसाद त्रिपाठी (अब लखनऊ) उन्हींमें से  
गिने जाते हैं। एक अच्छा-खाया भी हम लोगों में था। दुर्लभ नाम था -  
शानदार हुसैन "विमिल"। श्री वृजुल विजयवर्गीय तो अब कच्छ में अन्धकार में  
हैं। गुला नगर के साहित्यिक क्षेत्र में श्री अखिल भारतीय पत्र के  
काहलीकर श्री गायधर प्रसाद चित्तौड़ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।  
जैसे ही साहित्यिक क्षेत्र में श्री लालचरान त्रिपाठी का नाम भी आता है।  
मुन्शी श्री गायधरप्रसाद मारन के नाम का उल्लेख तो हो ही चुका है। इनके  
अतिरिक्त कुछ अहम नाम भी थे जो बहुत अच्छे गुणों के होते  
थे और तरुणों के लिये सुनाते थे। जब कभी कवि-सम्मेलन या  
मुन्शीय या गोष्ठी-सम्मेलन होता तो पदों के भेदभाव किए बिना  
सब लोग बराबरी के लिये बैठ कर एक-दूसरे को प्रोत्साहित करते  
कविता-पत्र करते थे। चाहे कोई बड़े नाम हो या हमसब, कवि-सम्मेलन  
के समय तो वह चर्चा या भाईपन ही होता था और "उत्तम कवि"  
के जीवन में भी। वे ही भाईपन ही अब दोषों को ही नहीं  
मिलता।

गुला नगर अपने "मैया-मंडल" के लिए भी मशहूर था।  
साहित्यिकों और संगीतज्ञों का यह राज - मैया-मंडल? के नाम  
से जाना जाता था। उसमें एक-दूसरे को मैया कहकर

पुकारते थे। कुछ दिनों पहले अपने चरमोत्तम क्षण ही बिछुड़े हुए एक  
मैसा १३ीं दीक्षित कुत्ते भिड़ गंगू में मिल गए। देखते ही  
हम लोगों ने एक झटके में पहचान लिया। भावने से रों रों  
ले मेरे गले से मग्न कर रहे पड़े।

मेरे आदर्श नाथ

काव्य में खोज में मैंने १३ीं शतक की 'दिनकर' को अपने  
आदर्श को रूप में माना है। एक का एक पुस्तक-विक्रेता हमारे धावावा  
में आया था। मैंने उसके पास ही दिनकर को भी अपनी पुस्तकें बरती  
थीं। मुझे उसने एक शिक्कापत्र भी था। मैं सोचता था कि  
दिनकर जैसा दंगल कदी भी ब्रिटिश-साम्राज्य को सोचने में आजगार  
कर आगे की को मादमा में वही मिलता है, जैसे 'मेरे गंगू'।  
मेरे दिशान। तुम पढ़ें और ही रहे इसी प्रीति का धारा सदेक।  
मि। हरिकृष्ण प्रेमी, तो मुझ में ही निवास है। मुझे उनकी राष्ट्रीय  
कविताएँ बहुत पसंद थीं, लेकिन वे भी कुछ ही थीं। मिल पाते थे।  
अपनी 'संदेहों की पीड़ा' कविता में एक संदरी को मादमा बना कर  
ही उन्होंने शासन की आलोचना की थी। यही कारण था कि मैंने  
संस्करण किया था कि मैं अपने ब्रिटिश शासकों से - मुझे ही को  
लिखी भाषा में बातचीत, आलोचना को मादमा में नहीं। जो कविता  
मेरे शासकों को छुट्टी से, वही डाकी हमने निगारों को पढ़-भुक्त  
है, उनको साथ आप को मेरे विद्रोही अंतर्गत परिष्कृत प्राप्त  
होगा होगा। यह सभी को शत है कि उन दिनों ब्रिटिश-शासन-कोटि  
रचनाओं को लेखन का अर्थ था शासन की भ्रष्टता का उद्घाटन। मैंने  
इस दृष्टि को कभी चिन्ता नहीं की। मैं यह समझ ही चुका हूँ कि अपने  
वचन में जोर देने को प्रेरित और गालदार बूटों की लोको में  
मैं मरणांतर्गत स्थिति तक पहुँच गया था। अली विचारों का आभास  
कि दा-उत्पादक वर्गों को कदाचित्त में पड़ा है। उन दातना को वद्वित  
कर गया तो यदि अस्वास्थ्य में जीवन की कसरती देह का बदीर्घ  
गहले कर सवाती। इसी निराशा का कारण ही मैं हमेशा शब्दों के दानी  
कविताएँ लिखता रहा हूँ। कविता को अभिप्राय जीवन के दिनों की

एक और भड़काने वाली लम्बी रस्सा ने कुछ पद यहाँ उद्धृत कर  
रखा है। इस कोला का प्रवाह है। -

करना हर कुर्बानी है

आज देश की आजादी हित, करना हर कुर्बानी है ।  
आज शत्रु के शोणित है ही हमको रक्षा कुर्बानी है ।  
जिसे माद ही जलवाला बाण  
गोलियों की गोदवार,  
काफ़ी रही है जिसके अंतर  
में, बच्चों-भायों की मार -  
भूल नहीं पाया है जो, फल  
बराबरी के अगस्त के दिन,  
जब हाथों न तो के दीवाने  
भूने जाते थे गिन-गिन -  
आज लड़ें कि वे जिनमें जीवन है, जेबा-जमाने है ।  
आज देश की आजादी हित, करना हर कुर्बानी है ।  
भड़क उठी है जिसके अंतर  
में, प्रतिशोध-अगल मारी,  
जिसे नहीं "अन्धकार" न तो हो  
शासन यह अन्धकार -  
गिन शोणित है हस्तिका  
के बारे, न कुछ देलें-माले ;  
मातृभूमि की रज मस्तक पर  
रोक कर, आज कोमल रत्न -  
यह कुर्बानी तरवार शीघ्र माँ । हमको आज मिटानी है ।  
आज देश की आजादी हित, करना हर कुर्बानी है ।  
आज देश के कोते-कोते  
पार-पार है निवाले जवानों,  
आज देश का ग्राम-ग्राम और  
नगर-नगर है महवाजा -

महलों, कुटियों, मैदानों में  
तभी जगह है विनमरी,  
तभी जगह विद्रोह अथर्व  
तभी जगह है तैमरी ।

आज फ़ार्मि की फ़ार्मि, होवा शान्त न हमें बितानी हैं ।  
आज देश की आजादी हित, करना हर मुर्खों के हैं ।

भेदभाव की आज भूल कर  
रंवा और धनवान उठें,  
मिए हल्ला-हल्ला कर में  
आगे आगे, कोता उठें -  
हिन्दू आगे, मुसलिम आगे  
आज सिवा हरदा उठें,  
होकर एक, एक स्वर में यह -  
मिल कर तभी पुकार उठें -

सत्तावन की भूल नही फिर हमें कभी कुरानी हैं ।  
आज देश की आजादी हित, करना हर मुर्खों के हैं ।

मान्दिर-मास्जिद मुहल्लों में  
राही एक अन्धकार उठें -  
आज देश की पुण्य-भूमि में  
पातित विदेशी राज उठें -  
फोड़ित और पद-चानित आगे  
प्रतिशोधी शान्ति उठें,  
अन्धकार का भूत न रहने ही -  
क्यों तो शान्त उठें -

आज को भुक्तों की, सब की कीमत आज-भुक्तानी हैं ।  
आज देश की आजादी हित, करना हर मुर्खों के हैं ।

आज शहरों का जीवन-जन का जीवन-जन  
 आजाद पत्रा-पत्रा है,  
 अन्धश्रुति शास्त्रनकी हथकड़ी  
 आज छिड़ानी पड़ती है।  
 नगर-नगर में डगर-डगर में  
 गुँजा रही तराना है,  
 आजादी के लिए हमें जुझ  
 करना, जो हम जानते हैं।  
 आज ईश्वर का बदला बदलने देने की गली है।  
 आज देश की आजादी हित करना हर कुर्बानी है।

### एक साहित्यिक नगर के प्यारे-प्यारे संस्मरण

हार्डिबुल नगर के अन्तर्गत तो मैंने गुलाबनगर  
 में किताबों नज़दीकी इन दिनों बहुत एक जिले  
 में एक ही हार्डिबुल, गुलाबनगर का गुलाबनगर में  
 हार्डिबुल होते हुए भी नए परीक्षा के केन्द्र नहीं था।  
 सन् १९४१ में हार्डिबुल परीक्षा देने वाले राजाजी  
 के कोरा नगर जाना पड़ा था। परीक्षा के दिनों में ही  
 बीमा पड़ने के कारण मैं पूरी परीक्षा नहीं दे सका।  
 अगले वर्ष सन् १९४२ में एकाधशरीरान्त में हम  
 में परीक्षा देने के लिए मैंने उज्जैन नगर को चुना।  
 वत में प्रथम उज्जैन आगमन १९४२ में। उत समय तक  
 उज्जैन के वरिष्ठ कवि श्री मंगलन्त शरण जोशी  
 ने मेरा अच्छा परिचय हो चुका था।  
 मेरा परीक्षा केन्द्र माधव महाविद्यालय था।  
 उत समय उत परीक्षा केन्द्र को ऊँच का १३ अर्थ ली



पन्तौजी में, जो, मुगल बादशाहों में से थे दिवालय  
 में पुस्तकालय, इत्यादि थे।  
 परीक्षा देते समय जो कि निरर्गल्य करना को  
 उद्योग यहाँ कर रहते हैं। जिस परीक्षा-कक्षा में  
 मैं स्तवलिप्त था, वहाँ निरीक्षण-कार्य पूरी भोजन  
~~द्वारा~~ शरण-कर जहाँ कर रहे थे। प्रश्न-पत्र  
 पाकर मैं तंजी से उत्तर लिखने में लग्य था।  
 श्री जौहरी ने जो वी-य-ली-य में आत्मीयता वश  
 मेरे पास करते और मुझे बातों में कुलमा लेता  
 -लेते। मैंने उनसे कहा भी कि वहाँ हम लोग  
 बाद में कर लेंगे, यहाँ तो आप मुझे प्रश्नों में  
 उत्तर लिखने दें। उनका जवाब था -  
 "जहाँ व्यापारी आपकी कस में नहीं आये सोयसता  
 गवता है, वह जितना मोलिया देगा, बहुत अच्छे  
 कंठ प्राप्त कर लेगा"। उनका यह जवाब (हो)  
 निकला। तब मुझे ही मैं बहुत अच्छे कंठों से परीक्षा  
 में उत्तीर्ण हुआ।

भाई भगवन्तशरण जौहरी परीक्षा के बाद के समय  
 में मुझे अध्ययन गली करने देते थे। मैं जैन-  
 शास्त्रों में रुचि हुआ था। वे वहाँ से मुझे उच्च  
 गणित, साहित्यिक विद्या से मिलाने में लाते। उन  
 दिनों उच्च जैन ब्रह्मविद्या साहित्यकारों का गढ़  
 बना हुआ था। वह समय वहाँ श्री भगवन्तशरण  
 जौहरी, श्री श्याम परमार, श्री नरेश मोहता,  
 श्री कलाशिव चंदल, भाई लालित और  
 मेरे प्रह्लाद पाण्डेय शास्त्री का अच्छा प्रभाव  
 था। एक दिन का वह सुप्रसिद्धि विद्वान् देवरी पर

निमित्त गुजराती-समाज-मंचन में मेरे सम्मान में  
एक काव्य-गोष्ठी का भी आयोजन किया गया।  
मेरी एक रचना बहुत लोक की गई "बलाबल  
मित्र काज सकार" अपने परिचितों के दिनों में  
भी कभी कभी काव्य-गोष्ठियों में सम्मानित होकर  
पड़ा।

मुझे १९६२ में ही - अजमेर में आयोजित आर्य-  
भारतीय-कुषी-सम्मेलन में स्वागत करने का प्रस्ताव  
भी भेजा गया। शरण जोहरी हैं जो भी जाते हैं।  
हम उन्हें जानावा का महावीरप्रसाद द्विवेदी कहें  
तो कति शायकी नहीं होती। अपने ही कमिष्  
सहित्यकारों को वे हमेशा ही प्रोत्साहित करते रहे  
हैं। वे साक्षात् के इस दिनों में भी वे आ  
भूमिका को निर्वह कर रहे हैं। वे अपने समग्र  
के वस्तु अच्छे करने, दूसरी और कलागी-कार रहे  
हैं। अपनी विशेष शैली के कारण उनकी पंक्तियाँ  
आपने काज कहती हैं कि ये भगवन्तशरण जोहरी  
की पंक्तियाँ हैं।

सन् १९६२ में अजमेर के प्रथम दशत की अवसर पर  
ही सब को कुछ ऐसा लगा था कि उन्हें के लिए यह स्थान  
बहुत ही उपयुक्त है। जाना-बालावर जैसी यह अभिलाषा  
पूर्व भी होगी।

अपने 'महाराणी महलगावर्द्ध' (वर्द्ध-काव्य में एक  
विभाग पर मानव-भूमी की विशेषताओं का विवरण  
करते हुए मैंने लिखा था -

ਭਗਵੰਤ ਦੇ ਨਾਮ  
ਭਗਵੰਤ, ਭਗਵੰਤ ਅਤੇ  
ਭਗਵੰਤ ਦੇ ਨਾਮ  
ਗੁਰੂ। ਭਗਵੰਤ ਦੇ  
ਭਗਵੰਤ ਦੇ ਨਾਮ, ਭਗਵੰਤ  
ਭਗਵੰਤ ਦੇ ਨਾਮ  
ਭਗਵੰਤ ਦੇ ਨਾਮ  
ਭਗਵੰਤ ਦੇ ਨਾਮ  
ਭਗਵੰਤ ਦੇ ਨਾਮ

भूमि साम्रवादी, यह आपने  
गेंडव में भंभाई है,  
हीन वहा है, इनमें पग-पग  
रोटी, उम-उम नीर है।

हर दिन धुन दिन, सरा सलोनी  
सदा यहाँ की गत है,  
पूँछट की ही हूँ, गानवा  
की भीजी बरसात है।

आव गगत में धूमि यहाँ की  
गही रादा लक्ष्मी है,  
तन से ही कानी है, पर यह  
गन से नहीं मन्ति है।

इसके अन्त की उल्लास तो की  
-कौतुक पूजा अपास के  
इसके आनेवासी प्रतीक सब  
गदगाते मन्त्रमाला के।

### काव्य जीवन का पुराकार

मेरी यह गवने लक्ष्य बरता रहा हूँ कि यदि अज्ञातगग  
मेरी अज्ञातवासी हूँ तो मुझ में सदा न-निकली है। गगन में रहकर ही मैं  
अल्प ने जेन पूरे करे वही। उन्होंने प्रकृत प्राप्त की। मेरी आजीवेका न  
प्रारम्भ भी वही है। हुआ। यह कि तरह हुआ, इसका विवरण प्रकृत है—

मुझा रहकर ही मैंने (जु १९६६ ई० में इन्टरमीडिएट परीक्षा  
विषयवाची दशक के रूप में उत्तीर्ण कर ली। उस समय मुझा में जो  
हंगामी भाव बरगम। लड़किलन के प्रचलन का तात्पर्य। वे गणित विषय  
के विशेषज्ञ थे, लेकिन साहित्य से भी उन्हें रुचि थी। भोजपुरी  
पुनर्निर्माण आयनी पर उन्होंने विद्यालय में एक कवि-सम्मेलन को  
"गद्योपन निष्ठा। भूतपूर्व दशक होने के नाते मुझे भी अज्ञातनिर्माण  
गया।

कवि सम्मेलन के प्रारम्भ में दशक-कवि सों में अपनी-अपनी  
मंचनाएँ पढ़ीं। उमके परकृत नगर के कवि सों ने कवि सम्मेलन को  
गति प्रदान की। अपने अन्त में भी जागे पुकार गये।

आइए मैं ही मेरी कविताओं में शायरीय (वर ही प्रकाश रहा कविता) ।  
-मैंने जो कविता तुम्हारे पास दते सम्झोते कविता हुए एक ऐसी कविता पड़ी  
जिसे मैं अपने समय और हमारे समय का तुलनात्मक विवेक प्रस्तुत  
किया गया था । कविता बहुत सरल गई और 'आपका ही पुरस्कार'  
भी मुझे मिला । आपका उद्देश्य ही था, मैं कहूँगा, पहले मैं आप  
कविता का कविता, मैं ।

## कवि ! मैं करने आया पुनः

कवि ! मैं करने आया पुनः ।  
पुनः अपनी पुनः सततता को लेकर आया हूँ यन्त्र-कार ।  
कवि, मैं करने आया पुनः ।

तुम कवि हैं, तुमने पाया था कवि-हृदय का ऐसा महान  
जिसे पर-मौल्यवत् ही समझा, जगती का सर्व विद्यमान-ज्ञान ।  
तुम विद्यमान अस्मान रहते हैं, भव है जीवित ही मैं,  
तुम किसे दीर्घमान, आपनन्यमान, तुम काव्य मगन की भासमान ।  
तुम ऊँचा होकर जग ही मैं, वे जगती का अमरत्व नाम,  
तुम मोक्ष भक्तो मारती हैं, तुम भक्तो-विरोध में दृढचरित्र  
क्यों मरि म ही तुम पर हमको  
तुम कवि हैं तुम न काव्यकार,  
कवि, मैं करने आया पुनः ।

तुम ही हैं ही तुम जो, जग तुम आया हूँ यन्त्र-कार,  
जगत्कार का कर्मविशेष-गता, वैसे वही हूँ यन्त्र-कार ।  
जगत्कार और कर्मविशेष, जग ही ही कर्मविशेष, गताले  
जगत्कार ही कर्मविशेष जगत्कार ही कर्मविशेष, गताले  
तुम ही, तुम ही न ही आकर हिन्दी में प्राण बचाए हैं,  
चौपाई दो ही नहीं, अरे ! तुमने तो मंत्र धुनाए हैं ।  
तुम कर्मविशेष-अभिनन्दनीय  
-हिन्दी कर्मविशेष का कर्मविशेष ।  
कवि, मैं करने आया पुनः ।

मैंने एक बार जीवनी लिखी थी, मुझे सुनो, मैंने लिखा है,  
 गाँव, यहाँ आज तक गुँजा रहा है, शब्द तुम्हारे भण्डार में।  
 "लिनन घुमाते जब कब कविता" यह लिखने से भी नहीं रुके,  
 तुम सच तो जानो पुँज मल, मुझे दौड़ते आगे नहीं भुके।  
 तुमने सब पत्र लिखी पत्रिका, तुम हुए आग देकर जीवन,  
 लिखते तुम करते आए हैं मान-माता को धन्यवादन।  
 तुमने मेरे साथ में प्रवृत्तमान  
 को राम नाम की प्रणम-कार।  
 गाँव, मैं करने आया फुलर।

जब दोन सके पुन पापों का, शत्रुता-रों का खर-पाना,  
 आभोगनी आगुलें को हारा हरिके मतों को फुल पाना।  
 जब दोन सके पुन धर्म-दाने, भू पर समता का ततेन,  
 पुन पुन गहो तुम किन्ति भी, समता का करुण धर्मन।  
 तुमको अमोह भा, अयोध्या-आदश दिव्य को दिखाना,  
 तुमको वारन को विनाश, भा राम-रूप ही प्रगटान।  
 तुमने हरि से, हरि-मन्त्रों से  
 भा दोनों ही से किया धार।  
 गाँव, मैं करने आया फुलर।

प्रेमान्ध विषय जिसमें जकड़ा, जितालो वह साक्षात्गोपी धाँड़,  
 तुम पवन अर में ही गए जिकल, वह वंश में वह जंगल में।  
 तुमने अपनी प्रिय पत्नी को दंडा, उससे कर-गए कोट,  
 तुम हुए विश्व के नव नीय एकादश जीवन में एक मोट।  
 तुम रहे भव के अरु पर हुए, तिर-धरि-धरि सेन आ लोट।  
 तुम गए पुराणों वंदों को राम अपनी मानस में नि-लोड।  
 तुम रहे थे, जो नहीं कभी  
 पाश में आते हैं वाग-वार।  
 गाँव, मैं करने आया फुलर।

तुम कविसे, हम भी तो कवि हैं, हम भी तो कविता करते हैं,  
 हम हो-नीते मरी, मरती-सीने का कस भरते हैं ।  
 हमको आता है यद्य आत्मा, है दिनाम का भी राम हमें,  
 तुम को चाहे कुछ रह न हो, कवि होने का अभिमान हमें ।  
 हम अच्छी कवि हैं, नहीं कभी कविता लिखने से डरते हैं,  
 कविता को केवल कानन में हम भी लिख-पढ़ लिखते हैं ।  
 कवि के फिर भी हम में, तुम में  
 हम दोब रहे अंतर अपार ।  
 कवि, मैं करने आया पुकार ।

तुम ईश्वर को अवतार राम का करते हो हमारे नाम,  
 हम मानते होकर भी मानने के होते हैं गुण-गान आत्मान ।  
 गुण-गान मनुष्य का करने से, हम कभी कभी डरते हैं,  
 हम कविता पर करके छुटार ही छुट्टी कसा जाते हैं ।  
 हम तो है जब भी कभी पर, कस देते हम आकाश विराम,  
 वह कौन लिखे है कि पर हम, कुछ करने से ही स्वभावमान ।  
 हमने उज्ज्वल रश्मि मिलता है  
 हम कहलाते हैं जलता ।  
 कवि, मैं करने आया पुकार ।

तुमने लिखा सनाः सुखाय, हम सबको सब रोनाते हैं,  
 तुमने दुःख पर शरणार, हम दौड़-दौड़ कर जाते हैं ।  
 तुमने कालयाप किया जग का, है महामंत्र प्रिय राम नाम ।  
 तुम कलियों के कुल-भूषण से, तुम गो-प्राप्ति से, हम गुणाम ।  
 तुम साधु-प्राप्ति संतोषी से, हम भूत-भूल चिन्ताते हैं,  
 पर-पर-त कन्दर के समान, हम अपनापेट विनाते हैं ।  
 तुम व्यापक से, आ किये भाग  
 तुमने तेभव पर लात मार ।  
 कवि, मैं करने आया पुकार ।

हैं यही देखा, जिसमें मानव सैरी सेही चिन्तित हैं,  
जिसमें जन्मे जाऊँगे भूलें अफसोस हुआए जाते हैं।  
भावना के दुकाही पर ही हम वे चोकरे अपना जीवन,  
वेना करते अपनी सोई, वेना करते अपना जीवन।  
हम जाना-पता-मुझे, पर अम तो जगें का भार कहाते हैं,  
जाने जितनी दोषदियों की, हम आज नहीं दक साते हैं।  
राह भीवना कोई जीवन, ~~अपनी में ही सदा~~  
इस जीवन में वना राहा सार?  
क्या मैं करने आया पुकार।

कोना जाते, दोनों चने रहका हैं गए दयाले-मनका हैं ?  
हम जिन्को जोवन भर रहते, धिप गए काजने रामका हैं ?  
जैवम राज की पुन कर पुकार, जो पैदम दोई काए में  
जितनी में तो के कहेवा, जिन्के में प्राण वनाए में।  
ने दीन-बन्धु, ने दयाने हैं यु, ने कुसौतम का लक्षण का हैं ?  
हम जिन्के दोषने तरा रहे, देकनल-नमन अभिराम का हैं ?  
मुग कर, अगमनीवार रहे में  
वे आज कसौई की पुकार ?  
क्या, मैं करने आया पुकार।

हम बुलें आज सारी, पर पुन में किन्ति नहीं हमका हुए,  
तुमने आजों किन्ति किया विश्व, तुम आजका और प्रकाश हुए।  
तुम कवियों का साराट वने, तुम कवि कुल-मुषण कहाए,  
ने यहाँ आज तक गुंजारहे, ने गीत सारे तुमने गए।  
आ कोर पारे सारी में का ही, जव-जीवन के आगह हुए,  
तुमको पा हुआ ही-हुआ ही, तुम तुम ही है तुमगीदग हुए।  
प्रियात आज तुमने हम को  
करते हैं तो तो नमस्कार।  
क्या, मैं करने आया पुकार।

क्यों हमने लग में हमने का रा गेरी यह सच्चा सारा ही गई।  
आज तोर तो लोगों का विश्वास है कि जगितने आती शुरुक और नम  
हैं, लेकिन यह कविता ने यह सिद्ध कर दिया कि यह बात



होना ही साम नहीं होती। मैं यह लिए मुझमें कि उस समय  
मुझे सहस्रबुल के प्रस्ताव समाप्त कर दो हजारे नाम लागू हो वे  
-गणित के व्यापक हो। इस वसति ने उनसे जग को खुल मुक्त।  
आगले दिन 'अहो'ने मिलने के लिए मुझे अपने कार्यालय में बुलाया।  
उससे मेरी जो बात हुई, वह थी -

“इस समय आपका कार्य-कार रहेगा?”

“जी, इस समय मैं इन्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करने की परीक्षा की तैयारी कर रहा हूँ।”

“बी०ए० पास कर लेने के पश्चात् आप क्या करेंगे?”

“बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् मैं जोड़ी में बी०ए० की तालिम करूँगा।”

“आगे कोई सामान्य आपका अभी मिल जाय, तो क्या आप उसे स्वीकार करेंगे?”

“जो उसे स्वीकार कर लूँगा, पर तब ही मेरा यह जो प्रयास होगा कि मैं बी०ए० की परीक्षा में अवश्य सम्मिलित होऊँ।”

“देखिए, हमारे विद्यालय में अ-ध्यापक का एक पद रिक्त है। यदि आप स्वीकार करें तो उस पद पर मैं आज ही आपकी नियुक्ति कर सकता हूँ और आपका बी०ए० की परीक्षा में सम्मिलित होने की सुविधा जो प्रदान कर सकता हूँ। निर्णय आप के हाथ में है।”

“नन्ही और पुष्ट पुष्ट? मुझे आपका यह प्रस्ताव स्वीकार है। इस उदात्तता के लिए मैं आपको बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ।”

श्री नागर तब ही मुझे एक प्रार्थना पत्र लिखवाकर भविष्य और उस समय मुझे कि क्या मैं पढ़ने भेज दिया। दो हफ्ते के अन्दर ही मेरी नियुक्ति भी हुई आ गई। उन दिनों प्रस्ताव समाप्त के प्रस्ताव शिक्षा-संस्थान के द्वारा स्वीकार हो किए जाते थे और प्रभावशाली प्रस्ताव समाप्त के प्रस्ताव ही अभी कसौटियाँ किए ही नहीं जाते थे। उन दिनों आजकाल जैसा हाल नहीं था कि-व्यवस्था के पदवी प्रती के लिए गान्धी सहोदय हस्ताक्षर करें। एक व्यक्ति ने मेरी कसौटियाँ के प्रश्न को हल कर दिया। पुष्पहीन ही मुझको पता गया।



एक दिन मेरे एक मित्र श्री गीताराम ~~विश्वनाथ~~ विद्यानाथ ताटके गुजराते-  
बाजार में मुझे मिले तो मेरे गले में हाथ डाल कर कस्य एकता में वे  
मुझे लंगर और बिना किसी भूमिका के एक-दो-कात वाली बातें उठाते  
मुझे कहतीं। वे बोले -

“मेरे यहां एक जानकारी रहस्य हुआ है। आज रात आठ बजे कुछ  
मेरे यहां आ जाओ। मैं कुछी मुताकात उस जानकारी से करा दूंगा।”

यह बात सुनकर मेरा अजीब लगा हो गया। श्री ताटके की बात  
को मैं भरोसा करना ही था कि उनके यहां कोई जानकारी रहस्य है। गुजरा  
में श्री ताटके एक तपासी दारुकारिता के रूप में लोकप्रिय थे जिन्होंने  
देशों के राजाओं को अखिलमन में गले-गले डूबका लगा दिया था  
और कई बार जेल भी भोगा है। उनकी बातें सुनकर मेरा  
अजीब लग रहा था। होशवासनों के मैं वापस नहीं आ सका था -  
कि जो भी जानकारी से मेरी भेंट होगी और मैं आमतौर-सामान आते-  
बाते कर सकूंगा। अपनी अजीब स्थिति होने का दूसरा कारण  
यह था कि एक गौणनीय रहस्य प्रकट करने के लिए श्री ताटके ने मुझे  
विद्यानाथ-भजन समझाया। ~~उसके~~ बातों का और आधे-कालिमासी  
में चला कर वे स्वयं ही फिर यह कह गए -

“आज रात बिक आठ बजे आप अपने-से मेरे घर आ जाओ और एक बात  
का उल्लेख नितो अलग ही न करना।”

अगले रात के आठ बजे मुझको पता चला। सूर्योदय के दिन हो-होते  
हुए भी वह दिन बहुत लम्बा लगा और आठ बजे-बजे ही मेरे चोरे  
ने भी जाया दे दिया। जब मैं श्री ताटके के कमरे में उपस्थित  
हुआ तो एक मुद्रक से बाहें करने में वे संलग्न थे। गौरवों के आ-  
गुप्त का चेहरा बहुत उमावशाली था और चेहरे पर सुनहरी-प्रेम  
का चरमा मला लगा रहा था। मुझे धुँचा हुआ दोनका दे दी गई  
उठ बिड़े हुए। मेरी ओर देखते हुए बाह का प्रारम्भ श्री ताटके  
ने किया -

“मैं आपका पूर्ण परिचय इन्हें दे चुका हूँ। मैं हूँ भूमिगत-  
जानिकारी श्री वा. वि. कोतकर।”

“कौतुक नाम ही मेरे लिए पर्याप्त है। इनके विषय मैं जो कुछ  
मेरा अध्ययन है, उनके अनुसार ये भी लिए प्रत्यक्ष हैं।”

सोफा श्री कोतकर के मेरे द्वारा की गई अपनी प्रशंसा को सुनकर  
भी और उन्होंने बातचीत को सिद्धांतों की हारी भाषा में मोड़ दिया।  
उनकी और श्री ताटके की बातचीत में मुझे यह जानकारी मिली

जैसे श्री कौस्तुभ जी की रचनाओं के लिए ब्रिटिश-सुसभ्यता ने वाइर जाये  
कर राखे था और वे सुसभ्य रह कर ब्रिटिश-निर्वाही-साक्षीजन  
को संतुलन में पालेय रूप में कर रहे थे।

प्रथम परिचय हो श्री कौस्तुभ के सत्य मेरी जानकारी उपलब्ध  
होगी और वे मेरे यहाँ आने-जाने वाले और हम लोग आपकी समस्त  
सत्य सत्य विचारों को। उनका एक ही आग्रह रहता - आप लोगों  
कावेताएँ सुनाइए। मेरे पास उनकी पद्यों की कविताओं की कमी नहीं  
थी। उन्हें मेरी लगभग सभी कविताएँ पुत्र प्रती। उनके विषय  
में हम लोगों ने जोरित कर रखा था कि आग्रह संस्कृत के  
विद्वान हैं और गुजरात में ते एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना  
करना चाहते हैं। सभी-सभी हम लोग विद्यालय के लिए किराए के  
भवन की लोज का पटका भी करते रहते हैं। कुछ दिन हम लोगों  
के सत्य रहने श्री कौस्तुभ की जी-जान गये।

साप्ताहिक भारत में डॉ. कौस्तुभ ने हर मंजूर मंडल में उच्च स्थान  
और पं. गुरुनारायण विद्यालया प्राप्त किया। कई बार मुझे किसी बुझने-के  
लिए उनसे आग्रहपूर्ण पत्र प्राप्त हुए, लेकिन मैं उनके अनुरोध को  
ताल गया। मुझे भाग लेना था कि मेरी सेवाओं को वे पुरस्कार  
देना चाहते हैं।

अभी तक मेरी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं,  
लेकिन कोई सुकल्प प्रकाशित नहीं हुआ था। मैं मेरे व्यक्त-संस्करण  
प्रकाशन की भी एक स्मिती बन गई।

30 जनवरी 1952 को भारत की आजादी के सतीस महत्वा  
गांधी जीनेयों के स्मरण संगण।। पारे देश में शोक की लहर फैल  
गई। महात्मा गांधी के महत्व के साहित्य में अमरत्व प्रदान  
करने के उद्देश्य से मेरे मन में यह विचार उपलब्ध हुआ कि उनकी स्मृति  
में हिन्दी की उल्लेख कविताओं को एक स्मृति ग्रन्थ का संपादन  
किया जाय। नगर के साहित्य सेवियों ने यह कार्य के लिए तीन  
सोशियों की एक समिति गठित कर दी। प्रकाशित किए जाने वाले  
ग्रन्थ को सम्मिलित वापु-स्मृति-ग्रन्थ, निर्धारित किया गया और  
शेक प्रचार-संपादन का दायित्व मुझे दिया गया। ग्रन्थ के  
प्रबन्ध-संपादन में श्री नारायण श्यामराव चिताम्बर और श्री रामप्रकाश  
गेलहोत्रा (अब सगीब) मुझे सौजन्य और ठानुमकी सखियों के रूप में  
मिले। काम अचूक-चलनिकाला। मेरे क्षेत्र श्री श्यामरावराव  
विजयवर्गीय ने अपने भवन को एक व्यक्त ग्रन्थ के कार्यालय के

लिए हों दिये। मरहवारों को हमी प्रभुता और लोगता कविता की  
रचनाएं हमें प्राप्त हो गईं। जब बापू-स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित हुआ  
तो उसकी सर्वत्र प्रशंसा हुई। गांधीजी से सम्बन्धित कोई अन्य  
ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ, लेकिन हम लोगों ने ग्रन्थ को विशेष  
रूप से समझा गया। उसकी प्रभुता विशेषता यह थी कि उसके  
पहले मात्र मैं उक्त कविताओं को संग्रहित किया गया था जो  
गांधीजी के निधन से पूर्व उनकी प्रशंसा में लिखी गई थी।  
ग्रन्थ के दूसरे भाग में गांधीजी के निधन के पत्र-वाह सुकांताजी  
के प्रिय से लिखी गई कविताएं संकलित थीं।

पाँच रुपए के गांधी-चार कानों में

संपादन के क्षेत्र में अनुभवहीन होते हुए भी हमने बापू-स्मृति-  
ग्रन्थ के रूप में एक सख्त ग्रन्थ देश को दिया था, लेकिन  
व्यवसायिक क्षेत्र में हम लोग उसका यथोचित प्रचार-प्रसार नहीं कर  
सके। परिणाम यह हुआ कि आर्थिक दृष्टि से हम लोग पाठ में  
उत्तर गए। हम लोग जो अपने पास से लगा सकते थे, वह  
सब कुछ लगा दिया और कुछ बात हमने अपने मित्रों और  
श्रुमानिगतों से उधार भी लिया। व्यवसायिक अनुभवहीनता के  
कारण हम लोगों की अपनी पुंजी भी डूब गई और मित्रों का पैसा  
भी हम लोग नहीं लौटा सके। इतना हमने अवश्य किया कि  
जितने मित्रों से जितना पैसा उधार लिया था, उतने मूल्य की  
पुस्तकें उन्हें दे दीं। पाँच सौ रुपए हमने श्री गोपाल हल्य एडवोकेट  
से लिए थे। उन्हें भी हमने रुपए लौटाने के लिए पर पुस्तकें दी दीं।  
पता नहीं, वे पुस्तकें लेने सके या नहीं। एक अन्य श्रुमानिगत से भी  
पाँच सौ रुपए लिए थे। उनका कितना बड़ा रोचक वक्तव्य था -

“बापू-स्मृति ग्रन्थ के प्रबन्ध संपादक श्री रामप्रकाश मल्ल होना के  
बड़े भाई आगेदार हैं। वे स्वभाव से बड़े उदार और गफ्तसौभाषी हैं। उन  
समय के गुना जितने के - मन्देरी स्थान पर जानेदार थे। एक दिन वे गुना  
आए थे हम लोग उनके पास पहुँच गए और उनसे निवेदन किया -

“भाई साहब, हम लोग पूज्य महात्मा गांधी पर एक स्मृति-ग्रन्थ  
प्रकाशित कर रहे हैं। पैसों की कमी पड़ गई है। यदि आप हमें  
पाँच सौ रुपए उधार दें तो बड़ी छुपा होगी।”

वे मुस्कराए, जब मैं हस्य डाला और तो-पै रुपए के पाँच नोट  
निवेदन कर बोले -

“ये रुपए मैं किस दे दूँ?”

उनका यह प्रश्न सुनकर मैंने संक्षिप्तता से जवाब दिया -

“संक्षिप्तता से जवाब नहीं मिलेगा।”

मेरा यह कथन सुनकर आनेवाला हाहल फिर मुस्कराए और बोले -

“जो सफल मैं होने नहीं दूंगा। यह मेरा ध्येय नहीं है। यह सफल हो जाएगा नहीं, कह दोगा कि जेब-बर्च में काम आएगा।”

आनेवाला हाहल जो यह कथन सुनकर मैंने उनके हाथ में

“मैं हाहल, आप मुझे भी अपना ध्येय भाई समझ लीजिए।”

—मेरे कथन में निहित आशय को समझकर उन्होंने एक ठहाका लगाया और बोले -

“मैं समझ गया, आप यह पैसा मैं भी खर्च करने लिए मेरे पास देना चाहते हैं। लेकिन आप यह बहुत झुल जाइए कि मैं आने वाला हूँ।”

उन्होंने इन कथनों का उत्तर दिया हमारे दरिद्रता की नानाभंया (वाराणसी आश्रम चिताभर) में। वे बोले -

“हाँ-हाँ, हम लोग यह पैसा अपने आनेवाले भैया से ले रहे हैं।”

ठहाके भरे, पैसे लिए, दाया-पिया और हम लोग चला दिए।

हम से है किसी को भी फुलने के चयन नहीं आता था। हम लोग अपने आनेवाले भैया के पैसों का संचालन ही नहीं लाया है। एक दिन चन्देरी जाकर उनके पास ‘बापू स्मृति ग्रन्थ’ की एक ही प्रतियाँ यह कह कर धोड़ आए कि इनके बचकर आप अपना पैसा निकाल लीजिए। उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की।

कुछ दिनों पश्चात् चन्देरी से आनेवाला हाहल का एक मान्तर हो गया। चलाते समय उन्होंने ग्रन्थ की एक ही प्रतियों का वलकल वरवर्धन को रूप में अपने अर्दली के हवाले कर दिया। उसे कुछ नकद पुरस्कार भी उन्होंने दिया। उस अर्दली के सामने यह समाचार भी कि उन प्रतियों को वह फिर प्रकाश देंगे। उन्हें एक प्रतियों में काम लिया। अपने नगर में लगने वाले साप्ताहिक बाजार में उन्हें ग्रन्थ की प्रतियों का ठहर एक चादर फैला कर लगा दिए और जोड़ने से आवाज भगाने लगा -

“मैंने सफल के गोंदी-हिफ्त-चाहू आने में।”

बेचने के दोग ने लोगों को आकर्षित किया। लोगों की प्रतिक्रिया पतन्य आई और शायद एक घंटे तक हाहल हो गया। अपनी गाँव में प्रचलित रूप से बाहल वह अर्दली पाह-वला गया। निरन्तर ही यह आनेवाला हाहल को बहुत दिनों तक दुकाई देहा रहा होगा।

जासमाही में जा काम उन अदिली ने लिया, नही काम आगे चलकर  
परिस्थितियों से मजबूर होकर मुझे जानबूझ कर कारनामा पड़ा।  
यह प्रसंग मैं आगे ने पूछा मैं लिखूँगा।

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ कि 'बापू-सहो-ग्रन्थ' में लिख भात  
ने सभी प्रतीक्षित कवियों की रचनाएँ मेरे पास रखीं। यह  
आवश्यक था कि उनमें एक रचना मेरी भी संकलित हो। मैं  
- हर दो-तीन दिन के अंतर से गांधीजी पर एक नई रचना लिख  
लेता था। इन प्रकाशित गांधीजी पर इच्छित कविताएँ लिख जाती।  
- उन में ही एक रचना मेरी सावियों ने ग्रन्थ में लिए चुन ली।  
ग्रन्थ में अन्त में दी गई वह रचना सभी को प्रसन्न आई। मैं  
उन कविता में केवल दो पद यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ -

“स्वर्गवासियों! स्वागत के लिए  
सावधान हो जाओ।  
पवन-पंथ में पलक-पोंवड़े  
आपने पुलक दिखाने।

धरती का भुंजार आज आता है स्वर्ग तुम्हारे,  
देवी! आज भगवान् तुम ही उसकी जय के तारे।  
हुई प्रतीक्षा समस्त तुम्हारी, यह कुछ दिन काया है,  
आज तुम्हारा पुण्य-फल पर पवन फल आया है।

मानव तो होता है परतम  
गाओ, आँद मनाओ।

स्वर्गवासियों! स्वागत के लिए  
सावधान हो जाओ।

देवराज! नजो चिन्तित हो तुम, इन्द्रासन न चिनेगा,  
ये ह्दयांगी, त्रिभुवन का दीपक तृणन स्रष्टु गिनेगा।  
ये ही राज्य बँटता आया, स्वयं नहीं आरिणाहीं,  
अईनम रह स्वयं, गोटि तन टैकने का अम्हारी।

सिंहासन पर गहों, शो

हृदयासन पर बैठाओ।

स्वर्गवासियों! स्वागत के लिए

सावधान हो जाओ। ११

‘जिन दिनों ‘वायू-स्मृति-ग्रन्थ’ का प्रकाशन हुआ, उन्ही दिनों ‘मुक्ति-गान’ और ‘स्मृति-पूजा’ नाम से तेरे दो काव्य-संकलनों का भी प्रकाशन हुआ। मुक्ति-गान में तेरी वे कविताएँ संकलित थीं जो तेरे ‘वायू-स्मृति-ग्रन्थ’ के संयोजक काल में लिखी थीं। ‘स्मृति-पूजा’ में वे कविताएँ संग्रहीत थीं जो तेरे अन्तर्गत गांधी पर लिखी थीं। इस प्रकार में प्रकाशन ने पक्का पट चला पड़ा।

### काव्य-तीर्थाटन

‘वायू-स्मृति-ग्रन्थ’ में जिन कवियों की रचनाएँ संकलित थीं, उनमें से कुछ ने उसकी प्रतियाँ मैंने व्यापारिक रूप से देने का निश्चय किया। एक सुयोग भी मिल गया। रीवा के शासकीय महाविद्यालय में आयोजित कवि सम्मेलन में मैं भाग लेता हुआ। उत्तर प्रदेश के श्री-कृष्णकुमार त्रिवेदी और बिजनपुर के श्री लाल भावनप्रताप सिंह ‘अज्ञेय’ से परिचय स्थापित हुआ। हम तीनों ही काव्य-तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। रीवा से इलाहाबाद निकट था। हम लोग पहले वहीं पहुँचे।

इलाहाबाद में डॉ० हरिमंशराम वच्चन से मिल कर तबियत खूब ठीक हो गई। हम लोगों से वे बड़ी आत्मीयता से सम्बन्ध मिले। यद्यपि अनेक समय तो अपने क्रोध में हमनों के साथ बड़े झगड़े हुए थे, तथापि हमें समय-एक-दूसरे को समझाने में उन्होंने हमें उद्यतता ही प्रदर्शित की। हमें अपने भी मुन्हाकातें होती रही। आग की चिटरन और सज्जनता की धारा और आदमी गहरी होती गई।

प्रदेशीय महादेवी कर्म ने भी मिलने के लिए हमें समाय दिया। उनके बौद्धिक कर्मों में मैं सरस्वती की एक भव्य प्रतिमा आसिन् थी। अपने दार्शनिक में वे लोकतांत्रिकी की प्रति और विशेष रूप से निरालाजी के प्रति प्रकाशकों की शोषण-क्षेत्र की शिकायत करती रही।

प्रदेशीय मुनिजनकन पन्त ने पहले तो मिलने में कुछ आनाकानी की, लेकिन जब वे मिले तो बड़ी सहृदयता से साथ मिले। मुझे उस समय पता था कि हम लोगों ने महाकाव्य एक साथ ही प्रकाशित होगा। आगे चल कर जब मेरा ‘सरका भगताँह’ महाकाव्य प्रकाशित हुआ, उन्ही समय पन्तजी का ‘लोकचरित’ महाकाव्य प्रकाशित हुआ। संयोग की बात है कि दोनों महाकाव्यों का परिणामात्मक - सरका भगताँह और महाकाव्य गांधी ने समकालीन थे।



यह भी विनियोग संयोग था कि इन दोनों महाकाव्यों की समीक्षाएँ  
साप्ताहिक 'धर्मगुरु' में एक ही अंक में करायी थीं।

हम लोगों की एक ही राय थी कि महाकाव्य सूर्यनान्त निराली  
'निराला' के सामने कुछ है। यद्यपि उस समय उनकी मानसिक स्थिति  
अच्छी नहीं थी, फिर भी वे हम लोगों से इस तरह लिखते, जैसे वे  
पूर्ण स्वस्थ हैं। जिस समय हम लोग उनकी बातें पढ़ते, उस समय  
निराला जी के का कोई भक्त नहीं बँठा था और निराला जी खुशी  
लपेटे हुए कमरे में खूबते हुए बैठे हुए सज्जन से बातें करते रहे थे।  
हम लोगों ने अपना-अपना परिचय निराला जी को दिया।  
हम से परिचय प्राप्त करने निराला जी वहाँ पहले से ही उपस्थित  
सज्जन की ओर देखा और वे उठ कर चले गए। निराला जी ने  
मुझ से प्रश्न किया -

“क्या जिस तरह की कविता लिखते हैं?”

“वीर रात की।” मेरा मुँह खोलकर संक्षेप उत्तर था।

“अच्छा कोई कविता सुनाओ।”

मेरे संक्षेप में पड़ गया कि मैं जैन की कविता सुनाऊँ। मुझे भय  
भी लाग रहा था कि यहाँ नहीं। मेरी कविता निराला जी को पसन्द आती है  
या नहीं। बड़ा सा हास कटके मैंने उन्हें एक कविता सुनाई जो मैं शिव का  
संसार लिए हूँ। यह कविता भारत की आजादी के लिए के पूर्व लिखी गई  
थी और उसके साथ फिरंगी सत्ताधारियों से कहा गया था कि शंकर  
जी का विनाश आज मुझे मिल गया है और अब हम लोगों की  
ये ये ये भारत में भाग जानने में लगे हैं। कविता को प्रथम पद  
शुद्ध था -

“मेरा मार्ग जैसा, मेरे इस राक्षस पक्ष में हट जाओ,  
मेरी इन बूढ़ी लपटों को अन्धारी लुप्त हो चलाओ।

महाबाल हूँ मैं कराल, मैं हाँसी मैं अंगार लिए हूँ।

मैं शिव का संसार लिए हूँ।”

यह मेरा ही भाव था कि रचना निराला जी को पसन्द आई। मेरे  
साथियों ने भी एक एक गीत सुनाया। हम लोगों को बड़ा आश्चर्य  
होता कि हमारे आगमन के पश्चात् जो सज्जन उठ कर चले गए थे, वे  
फिर आए और शंकर उनके हाथों में लिखे का एक बखुर बड़ा  
दोना था, जिसे उन्होंने निराला जी के सामने रख दिया। निराला जी ने

उस पैंकर को जेलाने का निर्देश मुझ को ही दिया। जब मैंने वह पैंकर बोला तो उसने लगभग डेढ़ किमी गम जलदियाँ थीं। जिले की जा आदेश हुआ -

“आज लोग जलदियाँ लाइए।”

मैंने निवेदन किया -

“आज भी हमारा साज देने को क्या करें।”

“नहीं, मैं नाश्ता नहीं करता। यह आप लोगों के लिए ही है।”

उसका आदेशात्मक उत्तर था। मैंने सोचा -

“हम लोग शर्म से अपने लिए जोड़ा सा भाग में लेंगे। यह तो बहुत अच्छे हैं।”

इस बात निराला जी ने हलका मगया कानोले -

“इतनी जलदियाँ तो बीर रा को एक ही कादी ला सकता है। अगर आप इतनी जलदियाँ नहीं ला सकते तो कुश्मनों को जाने का दम क्यों भरते हैं।”

हम लोगों ने निराला जी को परिहाल में सहयोग दिया और तीनों ने मिल कर जलदियाँ लाफ कर लीं।

इलाहाबाद में हम लोग जलनऊ पहुँचे। श्री गिरिजाकुमार भाबुर उन दिनों वहाँ आकाशवाणी-केंद्र के संचालक थे। भुम्भे में वे अपना छोटा भाई ही मानते थे। उन्होंने बड़ा अपमान दिया।

जलनऊ में ही संयोग से महाकाव्य रामचरित सिंह ‘दिनकर’ से भेंट हो गई। जलनऊ विश्व-विद्यालय द्वारा आयोजित काव्य-सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए वे आमंत्रित थे। उनकी कृपा से हम लोगों को विश्व-विद्यालय का दीक्षान्त-समारोह भी देखने को मिल गया। अंत दीक्षान्त-समारोह को श्रीमती मरोजिनी नायडू ने संबोधित किया था। यह आश्चर्य की बात है कि दिनकर जी से निरन्तर मिलती रही।

मार्गदर्शन एक महीना

जिनानाथ रायजी पुरुषोत्तमदास टण्डन को मैंने नहीं जानता। यह मैंने तो भाग्य था कि मुझे कई बार उनसे भेंट का अवसर मिले और महाकाव्य लेखन की प्रेरणा मुझे उन्हीं से मिली। यह धारणा तब १९५८ की होगी। उस समय मैं जलालाबाद जिले के डबरा नामक स्थान पर शिक्षा विभाग में पदाधीन था। आदरणीय-श्रीमती-श्रीमती-मंडल का सहाय होकर मैंने हाथ ही मैंने मंडल की हिन्दी-संशोधन मंडल

और हिन्दी के मुख्य विद्वान श्री गुरुप्रसाद जी टण्डन का  
सहयोगी था। उनके पिता श्री गुरुचोत्तम दास जी टण्डन अपने  
पुत्र से मिलने बहुत जगहों पर पहुँचते रहते थे। एक बार  
गुरुप्रसाद जी टण्डन ने मेरी भेंट आपसे पूज्य पिता जी से कराई।  
उनके घर पर ही मैं बहुत देर तक उनके साथ बैठ। उन्होंने  
मेरी राष्ट्रीय भावनाएँ सुनीं और मेरे कुछ प्रकाशित संकल्पन भी-  
देखे। मेरे एक काव्य-संकलन 'अवि और सैनिक' की भूमिका श्री  
गुरुप्रसाद टण्डन ने लिखी थी। वह काव्य-संकलन गुरुनारायण  
शर्मा से मिलवा गया था। पूज्य गुरुचोत्तम दास जी टण्डन को यह  
संकल्पन बहुत पाना हुआ और उनकी शैली को देख कर एक  
विचार उन्होंने मेरे सामने रख दिया -

"काव्य के क्षेत्र में आप बहुत लिंग-मुक्त हैं और आपकी कई  
कृतियाँ प्रकाशित भी हो चुकी हैं। मेरा तो सुभाव है कि जब आप  
कोई महाकाव्य लिखने का प्रयत्न कीजिए।"

शेराबि को यह बात सुने बहुत अच्छा लगा, लेकिन सहज संकोच  
वश मैंने कहा -

"पूज्यवर! आपने मुझे यह योग्य समझा, इसी में अपना योगदान  
गणना है, लेकिन मैं आत्म विश्वास नहीं जुटा पा रहा हूँ कि मैं महाकाव्य  
लिख सकूँगा।"

उनका उत्तर था -

"आपकी कृति 'अवि और सैनिक' मुझको विश्वास दिलाती है कि आप  
अवश्य ही अच्छा महाकाव्य लिख सकेंगे। इस दिशा में आप अवश्य  
प्रयत्न कीजिए।"

उनके इस कथन से मैं और अधिक उत्साहित हुआ और बात-बात  
में बड़ाने-बड़े उद्देश्य से मैंने निरन्तर किया -

"जब आपने मुझे महाकाव्य लिखने की प्रेरणा दी है तो इतनी  
कृपा और कोजिए कि महाकाव्य लेखन के लिए कुछ धानों को मास भी  
मुझे बताइए।"

दिलो कुछ सोचते हुए उन्होंने उत्तर दिया -

"धौराजिका बस्ती के घर में कई महाकाव्य लिखे जा चुके हैं और

संस्कृत - चीन का कोई प्रगतिशील महाकाव्य लिखिए और शत्रु  
लिखें मैं अभीद भगवाणिह को उचित पात्र मानता हूँ।"

राजर्षि ने बहुत उच्चरित विषय बताया था। प्राणिकारियों ने  
- प्रति मेरे मन में पहलें ही ही अनुपम-भावना थी। भगवाणिह का  
मन बुनते ही मैं कल्पना के छोड़े दीड़ने लगा। मैं सोचने लगा  
कि अभीद भगवाणिह पर महाकाव्य लिखते ही मेरी गजना हिन्दी के  
गोपकवियों में होने लगेगी और अगर-अगर मुझे बुझाया जायगा।  
जाने क्या तब मैं हवाई बिन्दु बनाता रहूँ कि राजर्षि का सर  
मुझे फिर सुनाई दिया -

"आज जानते हैं कि भगवाणिह देश की आजादी के लिए  
महिष हुआ है और शहीदों पर तो बिना देश में नहीं के बराबर  
लिखा गया है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जब है हिन्दी का  
का प्रारम्भ हुआ है, तब है यह क्षेत्र अप्सूत और उपेक्षित रहा  
है। यदि क्या उस क्षेत्र में उतर लें तो हिन्दी साहित्य के  
एक बहुत बड़े आभाव की पूर्ति होकर लगेगी।"

मैं स्वयं को इस योग्य नहीं समझ रहा था कि इस विषय पर  
राजर्षि के साथ चर्चा कर सकूँ, फिर भी बात चलाते ही उद्देश्य से  
- मैंने कहा -

"हिन्दी काव्य का उद्भव तो कीर-गाथा काव्य से हुआ है और उन  
दिनों तो कीर गाथा पर बहुत कुछ लिखा गया है, कि इस क्षेत्र  
को आज अप्सूत और उपेक्षित किता रह रहा है?"

उन्का उत्तर था -

"मैं तो मान रहा हूँ कि उन दिनों कीर गाथा पर ही काव्य-रचनाएँ  
हुई हैं, पर शहीदों पर नहीं हुई। उक्त युग में काव्यों पर प्रकाश  
रखते हुए भी मैं इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि वे लोग  
अपनी आजीविका कमाने तथा पुरस्कारों के प्रलोभन से  
अपने आश्रयदाता नरेशों पर काव्य और महाकाव्य की रचना  
करते थे, पर उन राजाओं की सेवा में होने वाले शहीद-सैनिकों  
पर कोई काव्य-रचना नहीं आती थी। शत्रु यह स्पष्ट है कि

उस समय भी लौकिक धर्म और पुरस्कार से नाम जुड़ी हुई थी और शहीदों को नाम-लेना कोई नहीं था। क्या आप इसे हिन्दी-साहित्य में शहीद-काव्य को अपनाने नहीं मानते ?”

“अच्छी बात है। हमने इसे भी लिए विवश थे। आपने कथन का समापन करते हुए उन्होंने कहा -

“हिन्दी के लोगों और कवियों का यह कवित्व ही जाता है कि वे उन लोगों पर कुछ लिखें जो लोग वास्तविकी की ओर से आते हैं। जिन लोगों ने अपने प्राणों का त्याग करके और आत्म-यत्न के संघर्षों की होशपूर्वक हम लोगों को आभियोग और गारंटीय दावा का जीवन में सुते दिया, क्या उन लोगों पर लिखकर हम उन्हें जीते हुए घुटनता उठाने नहीं चाहते ? जो तो थे तब कहेंगे कि यदि हमारे देश में शहीदों के वास्तविकता का सम्मान नहीं किया तो हमें इस घुटनता से कुपारिणाम उठाते पड़ सकते हैं।”

हम लोगों की बात और भी आगे बढ़ सकती थी, लेकिन उस समय विवशरीया बोलें (अब महात्मा जवाहरलाल नेहरू के कुछ आचार्य गण राजर्षि से मिलने वहाँ उपस्थित हुए। विदा लेने के उद्देश्य से) -

“आपने आज मुझसे जो विश-दर्शन दिया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद कह रहा हूँ। मैं प्रयत्न करूँगा कि पूरी लोकजीवी शहीदों के प्रति नर-मर्यादा हो। मैं इसे तो अपना आभियोग माने ही जाता हूँ कि आपका आशीर्वाद मेरे साथ रहेगा।”

तृतीय संयोजनः महाकाव्य-लेखन

## महाकवि की भूमिका

शांतलोक-विदेश-महाविद्यालय उत्तर प्रदेश के लखनऊ पर  
हिन्दी के एक छात्र 'महाकवि माधव' का मंचन किया जाने  
लागा था। आ समय में यह महाविद्यालय के आचार्य की पद  
पर पदोन्नत होकर पहुँचा था। यह सन् १९६१ की बात है।  
गायक के लिए पात्रों का चयन होना था। महाविद्यालय में  
सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रगती होने के साथ यह सेवा  
दायित्व का भी गायक स्तरीय हो और आका मंचन लपका  
है। आगे बढ़ने के पूर्व इस गायक की कवयानु का सांकेतिक  
परिचय यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ -

गायक का 'महाकवि माधव'। उसके लालक को नाम मुकुता  
दाद नहीं रहा है। गायक के जायक के सांस्कृत भाषा के  
महाकवि माधव। उनकी पत्नी का नाम सुमंदा का, जिन्हें लोग  
माता सुमंदा के नाम से पुकारते थे। अपनी उदारता और  
दाम्पत्यता के कारण महाकवि माधव बिलकुल निरन्तर होगा।  
उन्हें यह स्थिति अच्छी नहीं लगी कि अन्त में उनका  
दरकार से पत्नी होय जाएँ। परिस्थितियों से निवृत्त होकर  
महाकवि माधव और माता सुमंदा को अपने नगर का परिचय  
करना पड़ा। प्रभु-सुमंदा के राज्य भोज की चारा नगरी में  
जा पहुँचे। राज्य भोज सुनदियों का आनन्द करने और उन्हें  
बड़े-बड़े पुरस्कार देने के लिए सर्वविध है।

महाकवि माधव अपनी पत्नी सुमंदा के साथ चारा नगरी के  
बाहर किसी स्थान पर रह कर आ पूँजी से अपनी गुजर करने लगे,  
जो वे अपने राज्य में गए थे। एक बार राज्य भोज ने एक  
निशान लगे-दरबार का उत्सव जन किया। यह प्रचारित कर  
दिया गया कि वे तो ही सभी कवितार्कों पर पुरस्कार दिए  
जाएँगे, पर सर्वलुब्ध स्वभा पर सर्वधिक पुरस्कार दिया  
जायगा। महाकवि के मन में यह इच्छा जाग्रत हुई  
की वह पुरस्कार जीत कर कुछ अपनी स्थिति

मुद्रायी जाय। उन्होंने राजा के दरबार में जाने का विचार  
 रोक कर सा लोग दिया क्योंकि वे अपनी विपत्तावाला  
 में किसी की दया की। लक्षण भूति के पात्र नहीं  
 बनना चाहते थे। उन्होंने 'पुनर्' शीर्षक से एक  
 रचना अपनी पत्नी को दी थी। कहा कि राजा के  
 दरबार में अपने नाम से तुम शिकायत पहुँचाना।

राजा भोज के दरबार में जब कविता-पाठ हुआ तो  
 माता कुमेधा की रचना सुनते ही हँसि गई थी। उन्हें तब  
 पुरस्कार दिया गया। कविता के भावों को शोभी को देखते  
 हुए काव्य-मर्मज्ञ गणेश भोज को यह सुनने के लिए विश  
 होना पड़ा कि कहीं यह कविता महाकवि माध की हो नहीं  
 है। अपने संदेह की परीक्षा लेने के लिए वे ताम्रान्त नागद्वि  
 के देश में माता कुमेधा के पीछे-पीछे चले गए और ज्ञान  
 पत्र पहुँच गए, जहाँ महाकवि माध ठहरे हुए थे। एक नागद्वि  
 की भोति राजा भोज ने महाकवि माध से वात्सल्य किया।  
 दोनों ही एक-दूसरे से प्रिय नहीं थे। राजा भोज ने महाकवि  
 माध से निवेदन किया कि आप मेरे राज्य में स्थायी रूप से  
 निवास कर मुझे सेवा करने का अवसर दें। महाकवि माध  
 ने विनम्रता पूर्वक उनके आग्रह को टालते हुए कहा कि  
 कि इस समय मैं एक महत्वपूर्ण महाकाव्य की रचना में लगे  
 हुआ हूँ और इस कार्य के लिए मुझे ज्ञान-ज्ञान को मुक्त  
 करना पड़ेगा। उन्होंने आश्वासन दिया कि महाकवि माध  
 भोजन पूर्ण हो जाने पर मैं आपकी यहाँ आऊँगा। महाकवि  
 माध की कुमेधा से पारा नगीचे छोड़कर चले  
 दिए।

किसी अज्ञात ज्ञान पर रहने महाकवि माध ने  
~~अपने~~ अपने महाकाव्य की रचना तो पूर्ण की थी लेकिन



जीवन के आखिरी दिन उन्हें अत्यन्त विपन्नता में गुजारने पड़े और उसी विपन्नता में पागलों की भाँति प्रताप करते हुए अपनी पत्नी को बेसहारा छोड़कर वे इस दुनियाँ से प्रयाण कर गए।

जोता की सँझा लिव - मुझूँ कि नाटक के पात्रों को पयन करने और उनके निर्देशन को दाखिल मुझूँ (आ)। अन्त पात्रों के पयन में तो कोई कठिनाई नहीं हुई लेकिन महाकाव्य की भूमिका का निर्वह करने के लिए योग्य पात्र नहीं मिला। कई पात्रों को आजमाया गया, पर आखिरकी महोदी पाँ कोई बरा नहीं उतरा। आखिरी महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ० टी० वी० गायक ने मुझ से कहा -

“महाकाव्य की भूमिका के लिए जब कोई योग्य पात्र नहीं मिला रहा तो यह भूमिका आप स्वयं वस्त्रों नहीं करते। आपके निर्देशन देने के लिए मैं तो मुझ लगता हूँ कि आप इस भूमिका को औरों से अच्छा निर्वह कर सकेंगे।”

डॉ० गायक की बात हमी को पसन्द आई और महाकाव्य भाष्य की भूमिका का निर्वह करने के लिए मुझ स्वयं विश्व होना पड़ा। माता हमेशा की भूमिका का निर्वह मेरी एकधारा प्रीमिती जयश्री केतकर कर रही थीं।

जब नाटक का संचालन हुआ तो वह हमी को बहुत पसन्द आया। “जगत” शीर्षक का वह गीत हिन्दी में मैंने स्वयं लिखा था। गीत अच्छा बने पड़ा था और प्रीमिती जयश्री केतकर के सफुरावर ने तो उन्हें और भी आकर्षक बना दिया। प्रीमिती के अनुपस्थित संचालन के बीच उस गीत को तीन बार सुना गया।

नाटक के दर्शकों में मेरी पत्नी और बच्चे भी थे। मेरी पत्नी को वह हरम अच्छा नहीं लगा जब महाकाव्य भाष्य प्रकाश करते हुए अपने प्राण त्यागते हैं।

महाकाव्य की भूमिका का निर्वह मैंने बखूबी किया। उसके बाद जब मैंने स्वयं महाकाव्यों को लेखन प्रारम्भ किया, तो

६२

महाकाव्य के जीवन की स्थितियाँ में जीवन के लाल जुड़ गईं।  
महाकाव्य-जीवन, विपन्नता, परेशानियाँ और भ्रमण, मेरे जीवन  
के अंग बन गए। उह नाटक के आगे के पक्षपात में  
एक कविता भी मिली थी -

“ वह नाटक ही चुका संज पर  
अब नाटक होता जीवन में,  
वह नाटक था, या वह नाटक  
होच रहा मैं अपने मन में।”

अपने जीवन की उन स्थितियों की झलक तो मेरा स-काम में  
आने लगा। यह निजिय तो पाठक ही कर सकते हैं। कि  
वैसा मैं नाटक के हर दृश्य को निर्वाह कर सका हूँ या नहीं।

महाकाव्य-जीवन का संकल्प  
शहीद-माता के सामने

सनातन धर्म्य राजर्षि मुद्रोत्तमदास टण्डन का एक वक्तु परामर्श  
में कार्यनिर्वाह नहीं कर पाया था कि मुझे शहीद महाकाव्य में एक  
महाकाव्य की रचना करना है। मैंने उसके परामर्श को मुलाकात में  
नहीं था। शहीद का मिलने वाले नाटिक को मैं अध्ययन करता  
था रहा था और महाकाव्य जीवन के लिए अपना ज्ञान दे रहा था  
रहा था। उसी समय देश के जीवन में एक ऐसी घटना घटित  
होगई, जिसने शहीद का महाकाव्य की रचना के लिए मुझे प्रेरणा  
प्रेरित कर दिया। हमारे पड़ोसी देश चीन ने सन् १९६२ में  
हमारे देश का आक्रमण कर दिया। उन दिनों में हास्य-रसकेंदर में  
संलग्न था। मेरी हास्य रचनाएँ बहुत सरीय और मजबूत होती  
थीं और कवि सम्मेलन के मंच पर किसी भी आदिल -  
अरुणिय तिरके हास्य-काली की गुलामना में मैं  
फीका नहीं रहता था। वे मेरी हास्य रचनाओं  
साक्ष्यते हैं। वे हमेशा हाजी होते हैं।

- चीन ने आक्रमण ने मेरे ज्ञान में (अन्य सभी मंचादी)।

हमारे सन्तानों को देना और जो वसतिवाग को प्रेरणा देने वाला  
कविताएं लिखना हैं। प्रारम्भ का बिना। शरीर भगवान् की  
महात्म्य को प्रारम्भ करने के लिए मैं संशयित हूँ।  
मुझे शरीर को शरीर भगवान् की महत्त्व को सिद्ध है। अतः  
उत्तम वर्ग के लोग को अपने आश्रितों के आश्रितों को भगवान्  
प्रकार हो ही है। अतः मैं अपने आश्रितों के लिए भगवान्  
लिखता हूँ। शरीर भगवान् की महत्त्व को सिद्ध करने के लिए  
मैं लिखता हूँ।

जब मैं किसी-न-किसी को देखता हूँ तो मेरे एक  
मित्र डॉ. शर्मा ने मुझे इसका नाम -  
"शरीर भगवान्" में आ रहे हैं। शरीर भगवान्" जहाँ मैं  
मैंने लिखा है बहुत तेज हो रहे हैं। आतमीयता में दंग-प्रभाव को  
भारतीय की भावना है। तो वहाँ काव्य की बातें हमारी आती हैं।  
भाषा-विज्ञान की सरलता पर आते हैं। यदि ऐसा होना न रहे तो  
मैंने कोशिश की है।

उत्तम वर्ग के लोग को अपने आश्रितों के आश्रितों को भगवान्  
को प्रारम्भ करने का एक पत्र को मुझे दे दिया। मैं लिखता हूँ।  
मुझे अपने भाषा-विज्ञान की उम्मीद है। शरीर भगवान् की महत्त्व को  
मैं किसी-न-किसी को देखता हूँ तो मेरे एक मित्र डॉ. शर्मा ने मुझे  
इसका नाम - "शरीर भगवान्" में आ रहे हैं। शरीर भगवान्" जहाँ मैं  
मैंने लिखा है बहुत तेज हो रहे हैं। आतमीयता में दंग-प्रभाव को  
भारतीय की भावना है। तो वहाँ काव्य की बातें हमारी आती हैं।  
भाषा-विज्ञान की सरलता पर आते हैं। यदि ऐसा होना न रहे तो  
मैंने कोशिश की है।

मैं अपने मित्र डॉ. शर्मा के निर्देशों को पालन कर रहा हूँ।  
किसी-न-किसी को देखता हूँ तो मेरे एक मित्र डॉ. शर्मा ने मुझे  
इसका नाम - "शरीर भगवान्" में आ रहे हैं। शरीर भगवान्" जहाँ मैं  
मैंने लिखा है बहुत तेज हो रहे हैं। आतमीयता में दंग-प्रभाव को  
भारतीय की भावना है। तो वहाँ काव्य की बातें हमारी आती हैं।  
भाषा-विज्ञान की सरलता पर आते हैं। यदि ऐसा होना न रहे तो  
मैंने कोशिश की है।

२३ मार्च १९६६ को हुसैनी का निधन हुआ।  
 - जो किताबों पर अहिंसे सेना लगाने वाला था। किताबों के  
 लोकोटों को भी अहिंसे सेना लगाई। दो दिनों में पंचायत  
 - में भी वह अहिंसे सेना लगाई। और लोगों को मोड़ झुकाई।  
 मोड़ से भी अहिंसे सेना लगाई। मैंने सोचा कि मुझे तब तक  
 ही अहिंसे सेना लगाई। किताबों के लिए निजाम मुझे और दूसरे लोगों को  
 कुछ पुरस्कार-पत्र दिए। किताबों के लिए अहिंसे सेना लगाई।  
 - जो किताबों पर अहिंसे सेना लगाई। किताबों के लिए अहिंसे सेना लगाई।  
 अहिंसे सेना लगाई। मैंने अहिंसे सेना लगाई। - देवतालय-माहिना-  
 - माहिना-माहिना से अहिंसे सेना लगाई। एक सड़क पर अहिंसे सेना लगाई।  
 किताबों पर अहिंसे सेना लगाई। किताबों के लिए अहिंसे सेना लगाई।  
 शहर में दो दिनों में अहिंसे सेना लगाई। एक रात देवतालय-माहिना-  
 को अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।  
 अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।

“आप तो निजाम के दासी हैं। किताबों के अहिंसे सेना लगाई।  
 किताबों के अहिंसे सेना लगाई।”

जो जयपुर से आया। मेरी-वर्क भी - “अहिंसे सेना लगाई।  
 अहिंसे सेना लगाई। वह अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।”

मैं अहिंसे सेना लगाई। किताबों के अहिंसे सेना लगाई।  
 अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।

अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।  
 अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।

“हूँ, अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।”  
 “जी हाँ।” मैंने उत्तर दिया।

“अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।”

अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।  
 अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।

“अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।”

अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।  
 अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई। अहिंसे सेना लगाई।

- मैंने जि-सा सब ची-झें है मैं अपनी ओर ही कर रहा हूँ। - ६५

"मुझे आपका मतलब समझ में नहीं आया। बड़े बड़े-की बात है कि आप चाहते हैं कि मैंने जो सब कुछ रखा है, उसे भी आप को तो मुझे प्रोत्साहित करना - चाहिए।"

अबो तब मैं - २ - के दिमाग में जि-से मुझे याद आया, अब पूछा -

"क्या मैं आपका परिवार प्राप्त कर सकता हूँ?"

उत्तर मिला -

"मैं आपकी बातों को सुन रहा हूँ, वास्तव में मैं सोच रहा हूँ। यह मेरा परिचय है। आप क्या जान सकते हैं? यदि आप भी बता दें तो आपकी जान पाएंगे?"

- मैंने बात बदलने की दावे से पूछा -

"आप मुझे शहीद मजरा सिंह परमिजने से क्यों रोकना चाहते हैं?"

उत्तर में अंतर मिला -

"कहा यह है कि शहीद मजरा सिंह या दूसरे क्रान्तिकारियों पर हमला करने का हुक्म है लोगों ने निश्चित है। कई लोगों ने तो कुछ समय में भीतर कर रहा दिख रहा है। आप भी उन लोगों में एक मुझे और डाना देंगे, इससे आपकी जान से क्या उभरेगी की जो सक्ती है।"

यह वे लोग बात मुझ को मुझे बड़ा निश्चिन्त लगाना। बातें बातें सुनने के विचार में मैंने आपसे पूछा -

"आप ने यह कैसे जान लिया कि जो कुछ मैं सोच रहा हूँ, वह भी कुछ-कुछ सच हो जाएगा, जबकि आप मेरे जीवन के विषयों में कुछ भी नहीं जानते।"

अबो उत्तर आ -

"क्या मैंने बहुत से लोगों के विषय में मैं बहुत कुछ जानता हूँ। यहाँ कई लोग आपसे हैं और मैं जानता हूँ। आपका बहुत प्रभाव कर रहे हैं - बड़ा प्रदर्शन कर रहे हैं - बड़ी-बड़ी प्रतिक्रियाएँ

वही है - तुम कहना कि मैं करीब आऊँ उठना  
मित्र हुआ जिसने आया तो जयसिंह जो लाल  
आदि का कुछ दाही निकलता ।

- मैंने कहा -

"तब मैं दंत कम तो नहीं हुआ कि आप की बात  
आपका भावसिंह पर मिलने का दिक्कत छोड़ें। अब मैं  
हां ही जाऊँ तो अवश्य मिलूंगा ।"

इतिहास होना उल्टे ने कहा -

"यही आप का मित्र हुआ कि नहीं मिलना तो मैं आपकी  
मौली मार दूँगा ।"

- मैं समझे मैं आगया इस उल्टे को चुनकर । मैं देखता हूँ  
जब वह जाऊँ तो मैं और जो मुझे मौली से मार देने की  
आवश्यकता है । मैंने सोचा, यह मौली मार देने की बात  
उस समय के लिए कह रहा है जब यह मेरा मित्र हुआ पड़ने पर,  
जो अभी इसे देखने में लगा हुआ है । इस बात के लिए मैंने  
उल्टे की उल्टाया -

"क्या मैं यह जान सकूँ कि आपने क्या किताबें पढ़ी हैं  
जो मौली मार चुके हैं ? क्या आप ने किसी मुठ्ठलवाले को मौली से  
उड़ाया है ? क्या आप ने किसी गंदे को मौली मारी है ? क्या  
आप ने किसी फिल्म प्रोड्यूसर को मौली का निशाना बनाया है जो  
आमिनीको पर आप जानूँ कि किताबें क्या देते हैं ? कि आप को  
कानि-तोही मौली का निशाना नहीं बनाया चाहते हैं - तो तब शायद  
मेरी मदद कर सकें किताबें माहता है ?"

इतिहास उल्टे उल्टे को -

"मई ! कुछ न मानना । जो लोग मारते हैं वे तो पहले ही  
ही मारे हुए हैं बराबर हैं । आप शायद हैं आप के मित्र ने को  
कोलने का लगे हैं पर आप पड़ते हैं । आदि आप ही अति-मौली  
के विषय में जानते हैं किताबें किताबें तो उल्टे मुझे लाते हैं  
किताबें ही ही जाननी । मैं किताबें कहता हूँ कि

१. जो दिना - पढ़ने लगा, बहोसो. जेन के लिए इतिहासियों  
 ने जानने जहाँ पढ़ने लगा - पंजाबी मरहूम, मुद्रा, जहाँ  
 सुभाषितों सुभाषित - जहाँ पढ़ने रहे हैं । पुराने सदन मरहूम

१. रंजित-प्रसाद महाशय मह. प्रसाद जीन वरदा होत  
२. रंजित-प्रसाद महाशय मह. प्रसाद जीन वरदा होत

नौविज-भरा पाणिपान-प्रवेश



[illegible][illegible]

प्राचीनकाल - मुनिग की विशेष में आजातक में मा-ही-तान  
 पड़ता। २५ मुनिग - अफगा - मुनिग कलाना १०.५५ को बड़े  
 काले लाल मुनिग की पुराना, जिसे अगलाहिं १०० मुनिग जमाने में  
 - दोरा वा १ अफाने जमाने में की २२० के जिसे - लाल शीतल अफाना  
 जिसे अफाना १० ५६ में, ५६ में मुनिग निवासा गया। अफाना २०५  
 - जिसे पुरा जमाना मुनिग अफाना १०५ जमाना गया। १०५ जिसे  
 को बहुत जमाना अफाना माला जिसे एक शहीदी - जिसे १०५ में ५२५  
 जिसे १०५ २२० में अफाना १०५ में - लाल - लाल में लाल जमाना  
 को।

'आलो' है हुँ ही वाणा तब, जो वापि ही वाजा - ॥ १ ॥  
 मुन्द ही २०॥ गङ्गा अरु सङ्गा हुँ जय अरु लगी जोन भाते  
 नी नीना-के पास पहुँची - ॥ श्रीमद् योगेश्वर अरु मुनि-॥ १ ॥  
 ते मुन्द है लगे -

• જોડિયું નાનાં બાળકો, આપને - કમ સારી જોડિયું નાં પિતૃ  
દેવો' વિશેષ, જે પ્રજ્ઞા નાનાં | દેવતાં ઘણાં વધુ | જોડિયું ૩૪

५०  
मरने के बाद भी उसका चरित्र है। (अपने लिए) (५०)  
कुछ और बातें कीजिए।

मैं हूँ जो कि उसकी इस बात को सच मानता हूँ। मैं  
इसका ही कह रहा हूँ -

“दोस्त जानिए। मैं इस लोगों में तब हुआ हूँ, उसी  
- (मैंने आपसे दे दिया है)। अब आप उसी प्रकार जानेंगे (५०)  
मैं जानता हूँ कि यह बात मुझे बतानी है कि नहीं।  
मैंने भी आपको कुछ नहीं दे सकता।”

मैंने यह उत्तर सुनकर उसे फुलिया-आपना ने तेवर बदलने  
कर लगे -

“आप यह क्यों पूछ रहे हैं कि अब हमारा आप सामने लगे  
को सोचते हैं कि आपका पाप साफ हो रहा है। हमारी  
सोच में अब क्या प्रवेश को मुझे मैं हूँ आपकी गिरफ्तार  
- (मैंने) जेल में डाल दिया है। अब तक आप जेल में  
- रह रहे हैं, कोई मुलाकात नहीं होगी।”

उस समय को यह वक्तव्य सुनकर उसे कुछ दिग्भ्रम में  
- (मैंने) दिक्कत देने लगे। सोचा, यहाँ इसे मैं पचास रुपए  
को देकर छुड़ी पाएँ मैं हूँ। मैंने अपनी सोच में कुछ  
- सोचा कि अब मैं आपकी मेरी हत्या में यह बटुका  
- खोज लिया। उस समय उस में कोई भी रुपया के बारे  
में। वह कि आपकी जेल में रात का उठने-सोने के मुक्त  
- मुक्त बसा दिया। मैंने बहुत सोचते की कि मैंने जेल  
- २५ तक जाने-से कि मैंने देते लगे लगे दे, पर  
उत्तरे मेरी एक लगे लगी। गरीब यह कि मुझे न जाना  
- कि मैंने जेल तक लगे लगे दारु दे लगे लगे कि मैंने जेल  
- को जाना मुझे दे दारु तब तक ही गया। मैंने जेल में गए  
- दे दी कि आपने हत्या के मुक्त पर मैंने कुछ देते रहे लगे  
- मैं। अब यह बरदानों न लगे होती तो मुझे पता

मैंने ही मैं दुआओं में तेरे लिए प्रियता होना चाहता। मेरी-  
सेवा में नहीं चाहते। मुझे शहीद मजहरी की माताजी की  
दर्शन करने जानें घर को जाना था।

~~शहीद मजहरी की माताजी~~

## विचित्र और सुखद परेशानी

फतेहपुर से ही मैंने शहीद मजहरी की माताजी का  
पता ले लिया। मुझे बताया गया कि जानें घर से नवाशहर  
जाने वाली रोड पर बटकाइकला गाँव में शहीद-माताजी  
हैं। मैं जानें घर पहुँच गया। जानें घर से नवाशहर जाने  
वाली एक बस भी मिल गई। उस समय शाम हो गई थी। मैंने  
बस के परिचालक से कहा कि इस क्षेत्र के लिए मैं अपरिचित व्यक्ति  
हूँ। मुझे शहीद मजहरी की माताजी के गाँव बटकाइकला  
पहुँचना है। जब वह गाँव आया तो बस रुक कर आप  
मुझे उतार दीजिए। उसने मुझे वहाँ उतार देने का आश्वासन  
दिया। देखिकी है मैं आना करने लगा।

बस आगे बढ़ती जा रही थी और अंधेरा पड़ता  
जा रहा था। एक स्थान पर गाड़ी रुकने पर परिचालक  
ने मुझसे कहा - "माताजी का गाँव आ गया है, आप  
उतर जाइए।" मैंने अपना सामान उतारा। मैं स्वयं भी बस  
से उतर कर सड़क पर खड़ा हो गया। मुझे वहाँ धौड़  
कर बस आगे बढ़ गई। मैंने सोचा था कि मुझे मुझे  
जहाँ उतारा गया है, वही माताजी का गाँव होगा।  
मैंने-चाटों ताप हाथों धौड़ गई पर उस स्थान के  
मिस्टर मुझे कोई गाँव दिखाई नहीं दिया। उस  
समय तक काफी घना अंधकार हो चुका था

विभिन्न दिशाओं में काफी फासों पर बिजली की रोशनी में  
जगमगाते हुए कुछ गाँवों के होने का आभास भी मुझे हो रहा था।  
मैं यह नहीं पतचान सकता था कि इन गाँवों में से माताजी का  
कौन-सा गाँव है। यदि अनुमान है आगे बढ़ कर किसी गन्त  
स्थान पर पहुँच जाता, तो ओह भी परेशानी होती। मेरे सामान में  
एक बिस्तर-बंद, एक हूटकेस और एक ब्रीफकेस था। इन्हीं  
निम्न उठा कर किसी गाँव में पहुँचना मेरे लिए अतृप्त था।  
सड़क पर खड़ा हुआ मैं प्रतीक्षा करने लगा कि कोई  
राहगीर निकले तो मैं माताजी के गाँव का ठीक पता मालूम  
कर सकूँ। बहुत देर तक उधर से न तो कोई राहगीर निकला  
और न कोई बस। मुझे विचार देने लगा कि मैं अच्छी  
भासी परेशानी में फँस गया। मुझे बतलाया गया था कि  
वह दुमाबा का इलाका है और वहाँ बहुत उधड़ भोग रहते हैं।  
उसी इलाके में कुदेरा को कई घेर प्राधिकारी दिए हैं। मुझे  
घेर-उच्चको का भी भय था और जंगली जानवरों का भी।  
मेरे मन में विचार आया कि अपना सामान गेहूँ  
के किसी खेत में धरेपों का किसी वृक्ष पर रात में लटका  
जाय। यह विचार हृदय नहीं हो सका। सोचा कि कहीं रात  
को नींद के मोके में वृक्ष से नीचे गिर पड़े तो महाकाव्य-  
भोग के सारे सपने टूट जाएंगे। मेरे मन में एक विचार  
हृदय हो गया और वह यह कि सामान किसी खेत में धरेपों कर  
पैदल-पैदल जानकर की दिशा पर बढ़ा जाय और जो  
पहला स्थान मिले, वहाँ किसी के घर पहुँच आऊँगा जाय।  
मार्च का महीना था। पंजाब के खेतों में काफी बड़ा  
गेहूँ खड़ा था। एक खेत में अपना बिस्तर वन और हूटकेस  
धिपाया और जरूरी सामान ब्रीफकेस में डालकर मैं

जालंधर की दिसा में पैदल चल दिया। लगभग आधा घंटे  
पैदल चलने के बाद मैं जिह गाँव में पहुँचा, उतका ना  
बंगा था। एक सज्जन है बातचीत की। उनका नात था  
सिंदार कौरासिंह जाक। अपनी कांछा कतामी मैंने उन्हें  
पुछाई थी। उन्हें सहायता की प्रार्थना की। उनका कहना  
"इसमें परेशान होने की क्या बात है। आज रात को मेरे  
पर निकालिए। सुबह होते ही मैं एक रिक्शा में बिठा कर  
आपको माता जी के गाँव भिजवा दूँगा। रिक्शावाला खेत में  
तो आपका सामान भी उठा लेगा और वहाँ आपका लेद  
माता जी के घर पर ही छोड़ दूँगा।"

उन्हीं बातें मानते ही आतिरिक्त मेरे पास भी कोई चारा  
नहीं था। इत उदारता के लिए मैंने उन्हें बहुत-बन्धवाद किया  
और उन्हें धन पहुँच गया। बूझने पर उन्होंने बताया था कि  
वे मामूली किसान हैं। उत मामूली किसान के द्वार-द्वार  
देव का मैं दंग रह गया। काफी बड़े कहते हैं अन्दर बाँकी,  
मैं तो और गरीब के बाँझने के अलग-अलग स्तरों। वहाँ  
काफी जानवर, पर नहीं गन्दगी का नाम नहीं था। प्रत्येक  
पशु के दाने-पानी को ही व्यवस्था बहुत अच्छी थी। उनके  
अन्न में मैंने आतिरिक्त-मद्य नहीं। प्रत्येक आतिरिक्त-मद्य में  
बढ़िया फलीचर था। वाई-लेन के आतिरिक्त टीलकी वाली  
कालमारी भी प्रत्येक एक में थी। आतिरिक्त के लिए पैसे में  
जालंधर के लिए प्रत्येक एक में चप्पलें भी रखी थीं। प्रत्येक एक  
में हान-शुद्धादि की व्यवस्था थी।

रात को उनके परिवार के साथ भोजन हुआ और कतामी का  
मादान-पुदान भी। सुबह के मुँहपान में उन्होंने मुझे जगा दिया  
और बढ़िया जारता के एक रिक्शा में बिठा कर मुझे बिदा  
कर दिया। रिक्शा के चिराए के पैसे भी उन्होंने न दिए। उनका  
बहुत आभार मानता हूँ, मैं उन्हें बिदा हूँ।

पिछली रात छिपार गार में हूँ के खेत में से सामान उठा कर जब मैं शहीद-माता के गाँव बटकाड़वालों पहुँचा तो दिन बढ़ आया था और काफी उजली-धूप लिली हुई थी। उस समय भी हवा में काफी ठण्डक थी और मैंने लोगों को धूप से बचे हुए देखा। रिकशे वालों ने मुझे माताजी के घर पहुँचा दिया।

मेरी कल्पना थी कि माताजी बहुत अच्छे मकान में रहती होंगी, लेकिन मैंने देखा यह कि वह तो ईंटों का बना हुआ साधारण मकान था जो काफी पुराना हो चुका था। सिंह-द्वार के अन्दर प्रवेश करने पर मैं एक काफी बड़े सलून में पहुँचा। उस सलून में एक ओर धराधर से मकान निकाला जा रहा था और दूसरी ओर कोई महिला तन्दूर पर रोटियाँ पक रही थी। एक मरुलपूरी स्थान पर एक-चारपाई पर बैठी हुई एक मरुलपूरी धूप ले रही थी। मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि यही शहीद माता हैं। माताजी होना चाहिए। उस ओर बढ़ कर मैंने शहीद-माता के घरण पूछा। मैं कुछ कहूँ, इनके पहले ही माताजी ने आवाज भगाई -

“उरे! जल्दी से कोई कुर्सी लाओ, कोई साखर काए हुए हैं।”

मुझे देव का माताजी को मेरे साखर लेने का असहानिपुणता के लिये होने के कारण मैंने ऊनी सूट पहना हुआ था, और मैं भी सूट-बूट-चारी लोगों के (शेराचार) साखर भर कर फुकाए जाता हूँ। माताजी के कपान का प्रतीप करते हुए मैंने कहा -

“माताजी! मैं कोई साखर नहीं हूँ, मैं तो आपका एक बेटा हूँ। मैं कुर्सी पर नहीं, आपने-घरणों में बैठूँगा।”

येह कह कर मैं माताजी की चारपाई के सामने बिट्ठी हुई  
दरी पर भूमि पर ही बैठ गया। मेरे बैठ जाने पर माताजी ने  
मुझे बोल पकड़ कर उस की चारपाई पर अपने पास ही बिठा  
लिया और बड़े प्यार से मेरा माथा-पूजा। उनके हाथों से  
मेरे कृतकृत्य होगया। अनन्त काल का काम प्रारम्भ होगया।  
माताजी केवल पंजाबी ही बोल सकती थीं। काम चलाने पंजाबी  
उस समय तक मैंने सीख ली थी और मैं गुरुगुरु निधि में  
लिनी हुई फुलनें भी चोरे-चोरे पढ़ लेता था। पढ़ने माताजी  
ने ही किया -

“कहाँ पुत्र तुम कहाँ से आए हो?”

“माताजी, मैं मध्य प्रदेश के उज्जैन नगर से आया हूँ जो  
एक तीर्थ-स्थान है।”

“बड़े भाग्य हैं तुम्हारे जो तुम तीर्थ में रहते हो। इतनी दूर  
से आए हो, पहले कुछे खा-पी लो, फिर बातें करेंगे। अच्छा  
येह बताओ कि हम लोग तुम्हारी क्या वातिरकरें। तुम्हारी ताद  
तो लोग - वाय पीते लेंगे। तुम-वाले तो चाये बनवाइ, वेसे  
तज्जा धापर और मक्खन तो लाजि है ही।”

माताजी की ये बात सुन कर मैंने उनके पैरों पर हाथ  
विनम्रता के साथ रक्ता -

“माताजी आप बहुत दया हैं और ~~सारे~~ सारे राष्ट्र की कानि  
पूजनीय हैं। आपकी अपने घर पर तिनका दिखाने की भी  
अवश्यकता नहीं पड़ती होगी। मैं दोबारी रहूँ कि आपके घर  
में बहुत काम कर रही हूँ। यदि आप कुराना मानें तो मैं  
आपके तमने एक बहुत बड़ी पृष्ठता करना चाहता हूँ।”

माताजी ने बहुत ही आत्मीयता उंडलते हुए और अपने पैरों पर से  
मेरे हाथ हटाते हुए कहा -

“तू इतनी कुशाग्रवक्ता कर रहा है। कह तो सही, क्या कहना  
चाहता है।”

मैंने एक बार आँगन में गजारे दौड़ा कर और हाथों  
बदोर कर अपना कलम प्रारम्भ किया :-

२५

“ माताजी, आपने आँगन में तन्दूर सुलग रहा है। आप  
केवल एक रोटी बना कर तन्दूर में डाल दीजिए। उसे  
बिनाक में जीवन भर यह गर्व करता रहूँगा कि जिसे माता के-  
लिये शहीद शहीद भगतासिंह ने खाई है, मैंने भी  
उस माता के लिये वही रोटियाँ खाई हैं। आपके लिये  
यह शास्त्र सच है हुए मैं सचमुच आज्ञित हूँ, पर मैं  
अपनी इच्छा को दबा नहीं सका।”

— मेरा यह कथन सुनकर माताजी का अंश -

“तुझे दिन तो क्या, जितने दिन मेरे पास रहे मैं अपने  
हाथ से रोटियाँ बना कर तुझे खिलाऊँगी।”

यह कहकर माताजी उठीं और उन्होंने तन्दूर पर कुछ  
रोटियाँ बेकीं। ताजें निकले हुए सम्पन्न हैं बड़े प्रेम हैं उन्होंने  
मुझे रोटियाँ खिलाईं। मैं सोच रहा था कि इससे बड़ा  
हिंसात्मक न हो मुझे पहले भिन्ना है और न आगे मिलेगा।

माताजी के एक पुत्र और भगतासिंह के भ्रातृज भी  
रणवीरसिंह के मेरे आगमन का समाना भिन्ना हो वे अपना  
कैमरा ले आए और माताजी के हाथ में एक चित्र लिया।  
वह चित्र मेरे जीवन को लिए असूज्य व्यस्त हो बन गया।

माताजी के निजी कमरे में जाकर हम लोग बहुत देर  
तक बातें करते रहे। अपने शहीद बेटे के दुर्कर्म संस्मरण  
उन्होंने मुझे सुना। उन्होंने बहुत समय तक मुझे  
अपने पास रोककर और समय वे अपने शहीद बेटे  
की बातें बताया काती थी। आहो! वह समय भीशाया,  
जब मुझे उनसे विदा लेनी पड़ी। विदा देते हुए उन्होंने  
मुझसे कहा -

“बेटे! तुमसे मेरी दो अपेक्षाएँ हैं। क्या तुम उन्हें पूरी करोगे?”

माताजी के मुँह से यह बात सुनकर मेरे मन में कुछ  
हलचल होने लगी। मैं सोच रहा था कि पता नहीं कि



माताजी की मुझ से क्या अपेक्षाएँ हैं और मैं उन्हें पूर्ण करूँगा या नहीं। मुझे ~~मैं~~ सोचने का आधिक समय नहीं मिला। माताजी ने अपनी इच्छाएँ मेरे सामने व्यक्त कर दीं। वे बोलीं -

“देते! मेरी पहली अपेक्षा तो यह है कि तुम मुझ से निरंतर संपर्क बनाए रखना। हर महीने तुम्हारा कम से कम एक पत्र तो मेरे पास आना ही चाहिए और एक वर्ष में दो बार तुम्हें मुझ से मिलना चाहिए।”  
मैंने वचन दे दिया -

“माताजी! मैं आपकी इस इच्छा की पूर्ति करने का वचन देता हूँ।”

उन्होंने अपनी दूसरी इच्छा बताते हुए कहा -

“मुझे लगता है कि मेरे दिन गिने-चुने हैं। तुम मेरे बेटे पर जो ग्रन्थ लिखने वाले हो, वह बहुत जल्दी लिखना और बहुत जल्दी छपवा लेना। भगवान के पार जाते के पहले, मैं उस ग्रन्थ को देव लेता-चाहती हूँ।”

माताजी की इस इच्छा को उत्तर में मैंने कहा -

“माताजी! जहाँ तक लेखन का प्रश्न है, वह मेरे धर्म की बात है। मैं आपको वचन देता हूँ कि ज्यों की अन्य बातों की ओर मैं विचार कर मैं लेखन में ही आधिक समय लगाऊँगा और मुझे विश्वास है कि मैं शीघ्र ही महाकाव्य का लेखन पूर्ण कर लूँगा। जहाँ तक उसके प्रकाशन का प्रश्न है, वह मेरे धर्म की बात नहीं है। उसकी व्यवस्था तो प्रकाशक के लोग ही कर सकेंगे। फिर भी मैं प्रयत्न करूँगा कि किसी प्रकाशक को राजी करके उसका प्रकाशन भी शीघ्र करा सकूँ।”

माताजी मेरे इस कथन का उत्तर नहीं लगा सकीं। ~~उन्होंने~~ → उन्हें यह पता नहीं था कि मैं

मिलने वाले आत्मन होते हैं और उन्हें धारण करने वाला आत्मन।  
उन्होंने कुछ ऐसी कुछ वगैरह जैसे मेरी बात को न-  
समझा न समझी है। उन्होंने निराशा की भाँति कहा -  
“ तो क्या तुम्हारा ग्रन्थ मुझे जल्दी देकर को नहीं  
मिलेगा ? ”

कुछ देर मौन रहने के पश्चात् उन्होंने फिर कहना प्रारम्भ  
किया -

“ भगवद्गीता को प्राप्त करने के पहले मैं जेल में उन्हें  
मुलाकात करने गई। अपने बेटों से आन्तिम मुलाकात करने  
के लिए सुबोध और राजगुरु की माताजी भी वहाँ पहुँची। हम  
मौन अपने खलीद होने वाले बेटों की आखिरी मन्त्रकालन के  
लिए अन्दर भी। और भी बहुत से लोग उतने मिलने के -  
लिए जेल के फाटक पर मौजूद थे। जेल के आधिकारियों  
ने अपना निर्णय सुना दिया कि अभियुक्तों की माताओं  
के आतिरेक अन्य लोग उगसे नहीं मिल सकेंगे।  
जेल के आधिकारियों के इस निर्णय की सूचना आधिकारियों  
के पास भी पहुँचाई गई। बाड़ी देर पश्चात् आधिकारियों ने  
भी जेल के अन्दर से अपना निर्णय भेज दिया। उनका  
निर्णय था कि यदि सरकार हमें अपने देशवासियों से नहीं  
मिलने देती तो अपनी माताओं से मिलना हमें भी बिकार  
नहीं है। उनका तर्क था कि मुझकी इस बेला में मैं  
हम लोग अपने और पराए का भेद नहीं कर सकते और  
यदि सच पूछा जाय तो अपने देशवासी हमें इस समय  
अपना हाथ लग रहे हैं। अपने बेटों का यह निर्णय  
सुनकर हम तीनों माताएँ उगसे आन्तिमकार मिलने  
बिगड़ी बापिल का <sup>गई</sup> ~~गई~~। हम लोग अपने बेटों के निर्णय  
पर गर्वित होये, पर हर्षित नहीं। मेरे कहने का मतलब  
है कि जीवन के आन्तिम समय मेरे उस

बेटे ने मुझे निराश किया और जब मेरे जीवन का एक  
अवसान निकट आ पहुँचा है तो तुम - जिसे मैंने अपना  
बेटा मान लिया है, मुझे निराश करने चले हो। क्या  
तुम ऐसा कुछ नहीं कर सकते कि मेरे शहीद बेटे से  
मुझे मिठा दो। मेरे बेटे पर जो गुन्धतम लिखा है,  
मैं उसी को दोबारा यह समझ लूँगी कि मैंने अपने  
शहीद बेटे से आखिरी मुलाकात कर ली।"

महाराजी को वक्तव्य समाप्त हो चुका था। उसके चेहरे  
पर गंभीर भाव था। उसके समीप ही कड़ी हुई उनकी  
एक पुत्र-वधू छिपती थीं। राजवीर सिंह अपना धैर्य  
नो बँधी। उनके नेत्रों में आँसुओं की मझरी लग  
गई। महाराजी ने उन्हें धाँसी से लगा कर अपने पास  
से उनके आँसु पोंछे। मैं इस समय तक विचित्र विचित्र  
बना बिड़ा था। मुझे कुछ कहते नहीं बना। महाराजी  
के चरणों पर गिर कर कुछ बूँदों में मैंने उनका  
पाद-प्रक्षालन किया। महाराजी ने मुझे उठा कर हृदय  
से लगाया और मेरे सिर पर धाँसी रख कर मेरे सिर  
में धाँसी छुए कण्ठ से मैंने कहा -

"महाराजी! मैं आपको वचन देता हूँ कि किसी भी  
किसी प्रकार आपके शहीद-बेटे पर ली जा गया  
महामाया बहुत शीघ्र ही आपको हाथों में दे दूँगा।"

शहीद-माता को यह आश्वासन देकर और उनके  
कानों में आशीर्वाद और हर तरह दुआएँ लेकर मैंने  
उनसे बिदा ली।

महाराजी से संपर्क बनाए रखने के वचनको मैं पालन  
करता रहा। मुझे वचन-भंग का अपराध नहीं हो सका,  
इसका प्रेम मुझे कायम, महाराजी को ही कायम है।

आनिगदमके लिए माताजी जहाँ-जहाँ आनंजित होतीं, वहाँ संयोजकों<sup>720</sup>  
से मुझे बुझाते कि आग्रह करती थीं कि इस प्रकार का-कार  
उगते मिलन हो जाता था। जब मुझे पत्र लिखते में  
विलम्ब हो जाता तो उम्मा पत्र आ जाता। उनकी (कही)  
शिकायत होती -

“ ऐसा लगता है बेटे, कि तुम मुझको भूल गए हो। मैं  
तो तुम्हें हमेशा याद करती रहती हूँ। ”

जब एक माताजी जीवित रही, उम्मा प्रत्यक्ष या  
पत्र-लिखन का क्रम चलता ही रहा। यहाँ मैं अत्यष्ट  
कर दूँ कि मेरी अपनी माताजी का निधन उस समय  
होगया था, जब मेरी उम्र लगभग पंद्रह वर्ष की थी।  
माँ के मने का अभाव मेरे जीवन में निरन्तर रहा। उसी  
अभावकी पूर्ति की इच्छा भगताहि की माता विद्यावतीजी  
ने। मैं तो बौरा गया कि माँ भी मिली तो कितनी  
महान, जो समूचे राष्ट्र की माता होने की महत्ता में  
विशेषित थी। आज वह माता इस संसार में नहीं है, लेकिन  
उनके मने की आशीर्वाद के अतिरिक्त उसकी दो भौतिक नियतियाँ  
मेरे पास सुरक्षित हैं। जब मेरे आग्रह पर वे उज्जैन पहुँचीं  
तो उनके आग्रह में उड़ा गए अकीर-गुलान की अपने  
पोंछे गए आँसुओं से सिता उम्मा कुपड़ा अभी भी मेरे  
पास है जो खेचवा है वे मुझे दे गई थीं। इन्हें उनकी  
इसरी निशानी है, उत्तर प्रदेश के मीरजापुर जगन के  
गुहारा साहब में मुझे भेंट किए गए सरोपा के साथ  
एक कदर जो माताजी ने स्वयं अपने हाथ से मुझे दी  
थी। मैं कितना अकिंचन थी यह कितना बड़ा भाव।

इन्हीं से कुछ प्रसंगों को वर्णन आगे के पृष्ठों में करूँगी।  
येहाँ तो भगताहि महाकाव्य के लेखन के सम्बन्ध में मुझे  
कुछ लिखना है। मुझको एक ही चिन्ता थी कि शीघ्र ही  
महाकाव्य का जीवन प्रारम्भ किया जाय और उसे पूरा

करके शहीदता की इच्छा की पूर्ति की जाय।

-८७

## महात्मा महाकाव्य का जीवन

उज्जैन पहुँचकर मैं साधना में लीन हो गया। इच्छा तो यह थी कि कॉलेज से लम्बी छुट्टी लेकर केवल जीवन-कार्य ही करता रहूँ। यह संभव नहीं था। परिवार का वित्त-सम्भार के लिए मैंने जुटाना आवश्यक था। दो काम एक साथ करने पड़े - जीविका के उपार्जन के लिए कॉलेज में 'अध्यापन' भी काता था और वचने हुए समय में महाकाव्य का जीवन भी।

मेरा महाकाव्य प्रातिकाशिकों के जीवन के अनुभव वगैरह, इसके लिए आवश्यक था कि मैं अपनी जीवन-वर्तिका प्रातिकाशिकों की जीवन पद्धति में ढालूँ। मुझे मालूम था कि आधिकांश प्रातिकाशी लोग अविवाहित रहते थे, सना-सुना वाकर या भूत शहर संपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे और यहाँ तक कि बिना कुछ असे-निष्कार के भूमि-शयन ही करते थे।

महाकाव्य-जीवन तक के लिए धूम्रपान-वृत्त का पालन प्रारम्भ कर दिया। भूमि-शयन करने लगा। जी-दूध और मिठाईयों का परित्याग कर दिया। कावे-सम्मेलनों में जाना छोड़ दिया और विश्व-विद्यालयों और परीक्षा-मण्डलों से मिलने वाला स-पारिस्त्रमिक कार्य भी अस्वीकार करने लगा। मेरे इतक व्यवहार पर सगरी लोग हैरत थे। मेरे व्यवहार से उन्हें पागलपन की बू आती थी।

सिपन का क्रम इतक प्रकार का होता कि मुनीम लोगों की नींद स्वप्न में सब का सब को सिपना प्रारम्भ करती थी। परिवार के लोग हो जाते थे और मैं लिपित रहता था। यदि नींद आ जाती तो वही-चटाई पर झुड़क जाता था। गहरी नींद अभी तक नहीं सका। सा ते नींद उचट जाती थी और फिर जीवन प्रारम्भ कर देता था, सा सिपने आने लगते थे।

आलोकानंश सपनों में शहीद भागसिंह जी की माताजी को  
ही देवता था। उनको दिया हुआ लक्षण मुझे चिन्हित  
करता रहता था। वही चिन्ता स्वप्न के रूप में उभर आती  
थी। माताजी आकर पूछतीं -

“क्यों बेटे! ग्रन्थ का लेखन कब तक पहुँचा?”

मैं माताजी को अपने लेखन की प्रगति के विषय में  
बताता और महाकाव्य के कुछ अंश उन्हें सुनाता भी था।  
अक्सर ही मैं उन्हें पल्लु से आँवें पोंछता हुआ पाता था।  
वे मुझे आशीर्वाद देकर चली जाती थीं। कभी-कभी तो मैं  
अपनी शंकाएँ भी उनसे साधने से देता था और वे उनका  
निराकरण कर देती थीं।

यह तो सपनों के संसार की बात थी। मैं पत्र लिख  
कर माताजी को लेखन की प्रगति की सूचना देता रहता था।  
लेखन-काल में एक बार मैं उनसे मिलने भी गया। कुछ घटनाओं  
पर मैं उनका अभिप्राय जानना चाहता था।

लगभग एक वर्ष तक मैं भागसिंह महाकाव्य के लेखन में डूबा  
रहा। आर्यन्द साधनों की ओर से विमुक्त हो जाने के कारण  
परिवार की आर्थिक स्थिति लड़ाकू बन गयी थी। मैंने उसकी  
चिन्ता नहीं की। मेरा चिन्तन था कि महाकाव्य पूर्ण हो जाने पर  
जो मासिक स्तुति प्राप्त होगा, वह सभी अर्थ-भाव-जन्य प्रणों पर  
मेरुम का काज देगा। मुझे यह भी शक था कि महाकाव्य के  
प्रकाशन के पश्चात् मैं सभी अर्थ-भाव दूर हो जाऊँगा।

महाकाव्य-लेखन समापन की ओर जा। लिखते-लिखते मैं  
इतना थक गया था कि आगे लेखन संभव नहीं हो रहा था।  
कभी-कभी यह विचार आता था कि साल-दो साल के लिए  
लेखन स्थगित कर दूँ। किन्तु मैं विचार आता कि  
शहीद-माता को दिए हुए वचन का क्या होगा।  
मासिक रूप से इतना थक-थका था कि लिखते  
बैठा, पर लिखते नहीं बनता था। जिन दिनों

मगताहिं महाकाव्य का जीवन चल रहा था, लुकाई भी  
 बालकवी बेरागी उज्जैन में रहकर रस ०१० परीक्षा की  
 तैयारी कर रहे थे। वे अक्सर आकर जीवन की प्रगति के  
 विषय में पूछताछ करते रहते थे। मैं कुछ लिखे गए  
 अंश भी उन्हें दिखाता रहता था। जब उन्हें मेरी पकान  
 की निराशा का अनुभव हुआ तो कई प्रकाशने उद्योगों में  
 कार्य बैठाया। एक शेर ने कहा करते थे कि जिसका पाव  
 यतु था कि उसे धाती किनारे पर आकर डूब जाय,  
 उन्हें दुर्भाग्य का वधा कहना।

मगताहिं ने जामियां में से श्री जयदेव कपूर की  
 छी शिव वार्ता ने मुझे बताया था कि अपने शहीद होने वाले  
 लाली से जेल में हल लोगों ने आन्तिम मुलाकात की तो  
 अन्तिम क्षण था -

“भाबुक बनने का समय नहीं है शिव! मैं तो कुछ ही  
 दिनों में तुम्हारे भ्रमों से छुटकारा पा जाऊँगा, लेकिन तुम  
 लोगों को लम्बा समय धार करना पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि  
 उत्तरदायित्व के भारी बोझ के बावजूद इस लम्बे समय में  
 मैं तुम तकोगे नहीं, पस्त नहीं होंगे और हर मानकर रास्ते  
 में बंध नहीं जाओगे।”

अपने जामियां से की गई आन्तिकी-मगताहिं की यह  
 अपेक्षा मुझे भी प्रेरणा देती थी। कई आशाओं की स्फूर्ति  
 का संचार कर देती थी। मैं भी माने कि रास्ते में  
 भटक कर बैठ जाने वाला धाती कहीं का नहीं रहता।  
 अपनी सारी निराशाओं पकान को मुक्त कर मैं  
 जीवन में फिर प्रवृत्त हुआ और महाकाव्य का  
 जीवन पूरी कर ही डाला। बड़ा संतोष हुआ मुझे।  
 शहीद मगताहिं की सत्तापनी को सूचना दे दी कि गुन्ध  
 का जीवन पूरा होगया।

एक महान क्रान्तिकारी के सामक्ष्य में

मैं चाहता था कि मगतासिंह महाराज्य के प्रधान के-  
द्वारा मैं अपनी पाण्डुलिपि किसी ऐसे क्रान्तिकारी को दिला दूँ जिनके  
मगतासिंह के साथ काम किया हो। मैंने यह इनामिए व्यवस्था  
समझा कि कोई पटना गंगा मिली गई हो तो उसे बुझा  
लिया जाय और कोई बात क्रान्तिकारियों के सिद्धान्त के विपरीत  
उत्तरे स्थापन न हो जाय। मैंने अत्यंत बतारसिद्धात भी  
चतुर्वेदी और महानक्रान्तिकारी श्री मन्मथनाथ गुप्तजी को-  
पत्र लिखे। उन दोनों ने मुझे सुझाव दिया कि इनकार्य  
के लिए मैं माँसी के महानक्रान्तिकारी डॉक्टर भगवानदास माहौर  
से मिलूँ। उसका व्यवसाय था कि डॉ० भगवानदास माहौर खेप  
भी बहुत अच्छे कवि हैं और मगतासिंह के साथ उन्होंने  
कंचे से कंचा मिडा का कार्य किया है। उन समय वे  
माँसी के बुन्देलखण्ड-कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक भी  
थे।

पत्र-व्यवहार द्वारा समय निश्चित करके मैं डॉ० भगवानदास  
माहौर से मिलने माँसी जा पहुँचा। उन्होंने मेरा बहुत आद-  
रपूर्वक किया। मगतासिंह महाराज्य चुनने वे खेप भी अच्छी  
हो रहे थे। पालकी मार कर वे मेरे सामने बैठ गए और  
मैंने मैंने पाण्डुलिपि खोल कर उन्हें महाराज्य सुनाना  
प्रारम्भ कर दिया। मगतासिंह महाराज्य के अंश सुनते-सुनते  
वे किसी दूत के आँख में पड़ गये। मैंने देखा कि पहले  
तो उनकी आँखों में लाल-लाल डोरे उभरे दिखाई  
दिए और फिर दोनों आँखें पूरी तरह से लाल हो गईं।  
ऐसा लगा कि उनकी आँखों में जून टपकने लगा था।  
उनकी यह दशा देखकर मैं भयभीत हुआ। मैंने सोचा  
कि शायद मुझसे ऐसी बात मिली होगई है, जो इनके पक्ष  
में आई और क्रोध के कारण ही उनकी आँखें



माल होगई है। मैंने उनकी ओर देव का उमंग भुवन में  
 कि क्या मैं वाचन समाप्त कर दूँ। उन्होंने बिना कुछ  
 बोले ही वाचन करते जाते को संकेत किया। मैंने  
 वाचन जारी रखा। कुछ देर पश्चात् मैंने देव कि  
 उनकी आँखों में आँसू टपकने लगे हैं। मैं वाचन करता  
 रहा। जब महाकाव्य का एक प्रसंग समाप्त हुआ तो उन्होंने  
 अपने हाथ से मुझे वाचन बन्द करने का संकेत किया। उन्हें  
 प्रकृतिस्मरण होने से कुछ समय लगा और जब वे पूर्ण रूप  
 से प्रकृतिस्मरण होगए तो स्वयं ही बोले -

“ बहुत अच्छा। अच्छा लीका है बन्धु। मैं तो जहीन  
 की घटनाओं से लोगो भा। मेरा प्रभाव है कि आप पूरा महाकाव्य  
 मुझे सुनाएँ। मेरे एक कानिदारी लानी पत्री सदाशिवराय मल्हारापुरकर  
 भी यहाँ आँखों से रहते हैं। उनके साथ एक भाग आँखों से कुछ  
 दूर सितार-नदी के तट पर चले गे जहाँ अमरशहीद चन्द्रशेखर  
 आप्ताद की कुटिया बनी हुई है। वही आप इस महाकाव्य का  
 वाचन पूरा करें। ”

मुझे माहौरजी का प्रभाव बहुत परम्य आया। मुझे संतोष था  
 कि मेरे उन पत्रों का है। उनकी मुद्रा देव का जो भय  
 मुझमें उत्पन्न होगया था, वह इर होगया। मैंने उन्हें कृपणा  
 सुनाई जब कीरोजपुर में एक कानिदारी ने मुझे - मुनीती दी  
 थी कि यदि भगताहिण लिख जाने वाले ग्रन्थ में कोई  
 अल-जालून बात लिखी गई तो मैं गोली मार दूँगा। मेरी यह  
 बात मुझको माहौरजी बहुत डर। उन्होंने मुझे काश्ता  
 दिया कि आपका लेखक लीको बहुत परम्य आएगा।

वर्तमान अक्षपदेशकें तगा ओर देव के निकट सितार-नदी  
 के तट पर चन्द्रशेखर आप्ताद ने काकोरी-काण्ड के पश्चात्  
 एक वृत्तकारी के रूप में अज्ञातनास किया था। उसी  
 कुटिया पर पहुँच कर कई दोहों में मैंने संपूर्ण महाकाव्य  
 को वाचन किया। माहौरजी और मल्हारापुरकरजी ने

लोगों की बहुत उरांसा की और उन्हें किसी प्रकार  
परिवर्तन करना सीखा नहीं किया। मगताहिल महाकाव्य पर  
उनकी स्वीकृति की सीढ़र लाग चुकी थी। मैं बहुत लुझी-  
रुझी उज्जैन चोट आया और इत उचल-धुन में  
लग गया कि महाकाव्य शीघ्र प्रकाशित है।

चतुर्थ संचलन: महाकावी का सकारण

शहीद माता ही पूरा महाकाव्य - लेखन का अपना काम मैं समाप्त कर चुका था। प्रकाशकों का काम शेष था। मैंने कई प्रकाशकों को पत्र लिखे, पर उत्तर नहीं मिली। आया। सोचा, स्वयं ही जाकर उन लोगों से मिलूँ। दिल्ली, इलाहाबाद, लाहौर, बंगलूर और बनारस के प्रकाशकों के पास पहुँचा। कोई कहता -

“हिन्दी की कविता तो बिकती ही नहीं। इतना बड़ा महाकाव्य छाप कर हम व्यर्थ अपना पैसा नहीं फेंकेंगे।”

इतर कहता -

“हमारी सेफ में कई पाण्डुलिपियाँ रखी हुई हैं। आप भी छोड़ जाइए। उन सबके व्यय जाने के पश्चात् ही आपकी कृति का क्रम आ सकेगा। दो-चार वर्ष तो आपको प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।”

दिली अन्यथा उत्तर होता -

“अगर आप इसे छापना ही चाहते हैं तो सस्की धरई को पूरा पैसा हमें पेचागी दे दीजिए। अपने पुस्तकालय का गाना डाल कर हम आपकी पुस्तक छाप देंगे। पुस्तक बिकने पर हम आपका पैसा लौटा देंगे।”

जहाँ भी जाता, इसी प्रकार के उत्तर मिलते। महाकाव्य बनने के सपने भंग हो रहे थे। शहीद-माता को दिया गया वचन भी भंग होने को था। मैं सोच रहा था कि जितने देश में शहीदों की यह कद्र हो, उतना भविष्य को भी होगा। अपना-सा मुँह लेकर मैं अपने-अपने को-य-या पहुँचा।

### परिवार का सहयोग

शहीद माता को दिया गया वचन प्रतिपन्न चिन्तित किए रहता था। एक दिन परिवार के लोगों के सामने बिठाया और अपनी समस्या उनके सामने रख दी।

परिवार में एक पुत्री की शादी हो चुकी थी, एक पढ़ रही थी। दो पुत्र भी जिनमें से एक प्राथमिक पाठशाला में और दूसरा माध्यमिक शाला में पढ़ रहा था। मेरे बच्चों ने आश्वासन दिया -

“हम लोग अपनी-अपनी आवश्यकताओं को कम से कम कर देंगे और कोई ऐसी बात नहीं माँगेगे, जिसमें आप की आर्थिक पैसा खर्च करना पड़े।”

बच्चों की ओर से यह आश्वासन, बहुत बड़ा आश्वासन था। पत्नी ने कहा -

“मेरे पास होते-चाँदी के जितने आभूषण हैं, उन्हें आप बेच दीजिए और किताब ख़रीदा लीजिए।”

आखिर मैंने पत्नी को यह बात दे ही दिया। अर्जेंटली बाज़ार में उनके सारे आभूषण बेच दिए। पुस्तक तो परीक्षा लेने पर तुरन्त हुई थी। पार को अन्य सामान भी बेचना पड़ा। किसी चर्मशाला या होटल में छहरने के लिए जितना सामान अपोस्ट्रीत होता है, उतना राब कर सब कुछ बेच दिया।

एक दिन कॉलेज से जब पार लौटा तो मेरे दोनों बच्चों ने मेरे हाथ पर कुछ पैसे राब दिए और बोले -

“आपकी पुस्तक की ख़र्चाई में यह हमारा योगदान है।”

पत्नी ने स्निग्ध स्वर में -

“एक कच्चाड़ी इधर से निकल रहा था। इन लोगों ने उसे अपने सारे कपड़े बेच दिए। गर्म कपड़े भी नहीं छोड़े। जो बदन पर पहने हैं, वे ही कपड़े रह गए हैं।”

बच्चों को यह भाग दोबारा मेरा मत। बिल उठा। तबभी आश्चर्य दिखाते हुए पत्नी ने पूछा -

“जब इन लोगों ने अपने कपड़े बेचे तो उतना तब यह हमें कहां भी? ऐसा करने से हमने इन्हें क्यों नहीं रोका?”

उत्तर आ -

“जब आपकी पुस्तक ख़रीदने के लिए मैंने अपना योगदान दिया है, तो बच्चों को योगदान देने से मैं क्यों रोक्ती?”

उन्को उत्तर में यह भाव निहित था कि (मिशन काप भी तो अपना योगदान दीजिए)। मेरे पास अभी भी सुती मिलान कर कई जोड़ कपड़े थे। केवल दो जोड़ कपड़े रख कर, बाकी एक बेंच दिए। भगत सिंह महाकाव्य का तुलनात्मक पूर्ण हो चुका था। उत्तम परिणाम होश था। पहला परिणाम तो यह निकला कि अच्छे सूई के दिनों में भी ठिठुरते हुए लिख जाते-आते रहे। उन्होंने कोई परमादृष्ट नहीं रखी थी मैंने भी अपना दिल कठोर कर लिया। दूसरा परिणाम यह निकला कि पुस्तक द्वारा ली गई परीक्षा में हम लोग खरे उतरे और जो पैसा एकत्र हुआ, उससे भगत सिंह महाकाव्य छप गया।

भगत सिंह महाकाव्य छपा हुआ दोनो का हम लोग पूरने नहीं लगा। शरीर-माताको भी यह शुभ-सूचना देवी गई। उनसे यह भी निवेदन कर दिया गया कि काप उज्जैन पहुँच कर ग्रन्थ का विमोचन करनेकी कृपा करें। ग्रन्थथल्य बार-बार इंगलिया मिल रहा हूँ कि माताजी उसे ग्रन्थ ही कहती थीं। उनसे किया गया निवेदन बहुत औपचारिक था। एक प्रतिज्ञा भी आशा नहीं की कि वे उज्जैन पहुँच लेंगी। उनके पार पर मैं खड़ा उनकी हलत देख आया था। अपने मकानमें एक कमरे से दूसरे कमरे तक भी वे बिना किसी के सहारे नहीं जा सकती थीं। मैं सोच रहा था कि माताजी का उत्तर आएगा और निवेदनी कि वेरे। तभी मेरे पास आ जाऊँ। उत्तम उत्तर आया। उन्होंने लिखा था -

“वेरे। मैं तुम्हारे ग्रन्थकी भेंट लेकर करने उज्जैन पहुँच रही हूँ।”

विश्वास नहीं हो रहा था कि माताजी उज्जैन पहुँच लेंगी। मित्रों से चर्चा की। उज्जैन नगर को अभी

उत्साह के करंट ने दूर दिया है। मातङ्गी के स्वागत के लिए समिति बन गई। इस समिति की विशेषता यह थी कि इसमें सभी राजनैतिक दलों के लोग सम्मिलित थे। यह पहला बेकार था कि सभी पार्टियों के लोग अपने पारस्परिक मतभेद भूलकर एक मंच पर बैठे थे।

स्वागत के सभी कार्यक्रम दूरे

उज्जैन नगर की राष्ट्रपतियों और प्रधानमंत्रियों का स्वागत करने का गौरव प्राप्त हो चुका था, लेकिन शहीद भगतसिंह की मातङ्गी के स्वागत के प्रयत्न में सभी स्वागत पीछे धकेल दिए। १ मार्च १९४५ को दिन उज्जैन के शिवालय में स्वर्णिम हो लीला जायगा। भगवान महाकाल तथा सम्राट विक्रमादित्य की नगरी उज्जयिनी को स्वयं एक महान तीर्थ होने का गौरव प्राप्त है, पर अन्तःगौरव विद्युत् जल होगा जब एक अन्य सदृश-तीर्थ स्वयं अपने भित्तों को उपासीत होगा। यहाँ गच्छते हैं कि पुण्य-सम्मिलन क्षिप्रा है भंड करने देशभक्ति, बलिदान एवं वीरता की निवेणी है प्रवहमान होकर आई थी। इस सदृश तीर्थ का नाम है - अमर शहीद भिरदा भगतसिंह की वीर-माता प्रीमती विद्यावती।

वीर-माता के शुभागमन के समया वर्ष-हिमोरो की भाँति आसपास के नगरों एवं ग्रामों में प्रकीर्त हो चुके हैं और भुण्ड के भुण्ड नर-नारी भूमते-गते जब नगर में प्रविष्ट हुए तो सड़कों पर चलने के लिए स्थान नहीं मिल रहा था।

नगर के प्रमुख मार्गों से बसों खुली हुई बसों में बिठा कर वीर-माता की स्तुति निकली गई। उनके साथ काशीन भी, उनकी एक पुत्र-वधू प्रीमती लीला रणवीरसिंह। किसी सहायक को वे अपने साथ नहीं लाई थीं। चलते समय अपने दोहों को तिमलाकाई की -

“देखो, मैं अपने उज्जैन वाले दोहों को पास पा रही हूँ। मेरी उम्र तो होली-पुकी है। यदि मैं वहाँ न रहूँ तो तुम लोग

अपने उस भाई को दोष मत देना । यदि ऐसा हुआ तो मुझे यह प्यार होगा कि मेरी जिंदगी एक महान तीर्थ से मिलेगी ।”

माताजी को यह कल्पन लोगों को परमात्मा देने के लिए काफी थी । राष्ट्र-माता की प्यारी निकल पड़ी बगली के वृद्धाश्रम पर मैं ने आत्मातुल्य भाव ले आता भगतासिंह का तैल-चित्र दोलता-लि लग रहा था । मैं ने पीछे बैठे-को चित्र ऐसा लग रहा था जैसे आपने गढ़ापर बैठे को अपने कंधों पर बिठाकर मैं ने उनकी उंगलियाँ आन ली हों और उनसे कह रही हो —

“तुम्हें आँखों में लोकर मैंने उज्जैन में पा लिया हूँ । अब तुम मुझे धोड़ कर कहीं नहीं जा सकोगा ।”

भोग पुष्पकित ने कि राष्ट्र-माता हमारे बीच आई हैं । वे निकट से उनकी दर्शन करने और उनके चरणों पर मानक राख कर आँसुओं का अमृत चढ़ाने बगली के पास पहुँचने लगे । मैं की सुरक्षा की दृष्टि से पुलिस ने जवान डण्डे लेकर हैनात हो गए । लोगों को कहना था —

“तुम भोग डण्डे बरसाकर हमारी होपड़ियाँ तोड़ने या खाल खींच आते, लेकिन जब तक हम अपने लोगों हैं मैंने पैर नहीं डूँ लेंगे, तब तक पीछे नहीं हटेंगे ।”

मैं ने समझाया । पुलिस ने संयम से काम लिया । जल-चाय हैं मैंने चरणों से टकरा-टकरा कर पीछे हट रही थीं । स्नान-स्नान पर बनाए गए स्वागत द्वारों के नीचे से निकलती हुई मैंने ऊपर झूलने की वधाई ले रही थी । महाकवि कालिदास के मंदिर से निकल उज्जयिनी की मालिनियों द्वारा निर्मित पुष्प-हार मैंने गले में पहुँच कर झूलने नहीं समा रहे थे । वे अपने भाग्य पर हँसा कर कह रहे थे —

“देखो, तीर्थ-स्वाम्या मैंने गले से लिपट जाने को जो सौभाग्य भगतासिंह को प्राप्त था, वह आज हमें प्राप्त हो रहा है ।”



माँ भी बेटे के चलाचल में डूब गई । उसे लग रहा था, जैसे आ-पाद विलम्बित फुल फुल-हार, 'हार नहीं', उसके बेटे की भुज-बल्लारियाँ हों, जिन्हें वह माँ ने जल में डाल कर मूल रहा है । माँ-बेटे के इस मिलन को देख कर लोग अपने को झुल गए । आस-पास नर-नारियाँ भी जन-तता आप में नहीं थीं । पागलों की भीड़ गगन के जन-जीवन को मकलार रही थी । माँ-बेटे की जयकार के स्वर आसमान को हिला रहे थे । ठोल और नगाड़ा का स्वर वीर-भावनाओं का उद्रेक कर रहा था । लग रहा था जैसे क्षिप्र को जल-पुवात जन-पुवात में परिवर्तित लेकर जन-पण पर पहुँच गया है । विड़कियाँ, गवाक्षों की ओर झरोखों से झाँकते-चेहरे माँ की मंगल-मूर्ति के दर्शन कर चंचल हो रहे थे । कोमल कर-पल्लव फुल-वर्षा में चला रहा था, तो झोंपे की मोतियों के वप में अक्षु-निमोचित कर रहे थे - हर्ष-विषाद की गर्वने झोंपू । पाड़कते हुए दिमाँ की बरसती हुई झोंपों में केवल एक ही भाव था -

“चल्यो मैं तेरी कोव, जिसने वीर-भावना में ही सपूत को जन्म दिया ।”

“चल्यो हैं हमारे भाग्य जो आज कर बैठ वीर-माता के दर्शन प्राप्त किए ।”

स्नान-स्नान पर बाली रोक का वीर-माता की कारती उतारी जा रही थी । दौड़-दौड़ कर लोग अपने घरों से अपने बच्चों को लेकर माँ के घरों पर डाल रहे थे और माँ कह रहे थे -

“माँ ! इतने ऐरा आशीर्वाद के कि ये भी मारा रहे जैसे वीर को दिलिदानी बत सुकें । माताजी उन नन्हें-मुन्नों के सफाक पर हाथ फेर कर ही उन्हें विदा करती थीं । हर पेर धुने वाले धातों को माताजी एक-एक फूल उनके हाथ में बाँटा देती थीं । वे किसी साधु-सन्तानी को अपने पैर नहीं धुने दे रहीं थीं । हर साधु-सन्तानी को ने खयं ही प्रणाम करती थीं । दूर लड़ें हुए भी धुलें धुलें-अरारियों पर आतीत लोगों के प्रणाम का उत्तर वे तत्परता से दे रहीं थीं । लोगों को प्रणाम करते-करते अपने-अपने २३ की

दोनों बाँहें बुरी तरह झुज गईं । उन पर वर्षाए गए प्लूमी तें बग्गी  
सात बार भी और ज़िन्दा हुई ।

### पगलाया हुआ वातावरण

संयुक्त राज्य भारत-भारत वातावरण पगलाया हुआ था।  
जमी हुई अराधूर भीड़ में त्री-श्रृष, बूढ़े-जवान और बच्चे सभी  
मंच की ओर दृष्टि गड़ा बैठे थे। सभी का लक्ष्य था अजगग  
करता हुआ सुगम-सज्जित मंच जिस पर त्याग-तपस्या की  
साक्षात् सभी सजीव प्रतिमा शहीद-शिरोमणि भगतासिंह की  
प्रदोषाओं में प्रभु वापसी में दोमाशासी की। शहीदों के  
व्यवस्थित चित्र बालिदानी वातावरण की छवि सादित कर रहे थे।  
यदि मैं को अपना भग्न पारा था तो चन्द्रशेखर काजाद भी  
कम हुआ नहीं था। वीरगति प्राप्त चन्द्रशेखर काजाद  
का चित्र मैं ने पार्श्व में सुशोभित था। मैं चित्रों को  
गमने बैठे हुए जन-समुदाय को देख कर मैं को आँपते हुए  
लेहों में ~~छे~~ चरपराता हुआ स्वर निकल पड़ा -

“कौन कहता है कि चन्द्रशेखर काजाद और भगतासिंह  
इस संसार में नहीं हैं? दोनो तने, ये कितने काजाद और  
कितने भगतासिंह मेरे सामने बैठे हुए मुझ से आँखें मिक्का  
रहे हैं। राजगुरु और सुभदेव भी तो इन्हीं में बैठे हैं। मेरा  
भगवती-चरण भी तो यहीं-कहीं है। मेरे बेटो! तुम्हें इसी  
रूप से देखते रहने के लिए ही तो मैं अभी तक जीवित हूँ,  
अब क्या दूटा हुआ दिना कितने दिन चाड़-चाड़ करता।”

समाज के प्रारम्भ से मैंने मैं को द्वारा सुनाया गया वह संसार  
लोगों को सुनाया जब मैं सी पाने वाले अपने बेटे से कहित भेंट  
किए बिना ही मैं जेल के पाटक से मोड़ कर ई की। मैंने  
वै संसार भी लोगों को सुनाए जब एक एक को पृथ्वी कर  
मैंने मैं से भेंट की थी और स्नेह-संघर्ष मैं से मुझे

सराबोर कर दिया था। एक पंजाबी जो जवान ने भगत सिंह को दी गई फौसी के प्रसंग को विवाह के समय गाए जाने वाले पंजाबी-फोड़ी-गीत का भाविक स्वर से गायन किया। कुछ मिलाकर वातावरण ऐसा बन गया कि लगने लगे हुए बीस हजार लोगों ने ही कन्वेन्शन लोग फफक-फफक कर या छुक-छुक कर रो रहे थे। रोने में सब को मात कर रही थीं माताजी की पुत्र-वधू श्रीमती भीमा रणवीरसिंह जो उनके समीप ही बैठी हुई थीं। अपने पल्लू में अपनी बहू की काँपों-पोँछते हुए मैं ने लगने ~~बसती हुई~~ ~~कानों~~ अश्रु-विमोहित करते हुए लोगों को समझाने की दृष्टि में कहा —

“विबरदार ! जैसे तुम ने ही एक मीसेया। क्या होगा यह आज तुम्हें? जानते नहीं। मैं आज तो मेरे भगतसिंह की शादी का दिन हूँ। तब तो वह शादी कराने के नाम पर प्यार-कर भाग गया था, पर आज वह तुम्हारे उज्जैन नगर में चूमाग से अपनी शादी करा रहा है। उसकी शादी में कितनी अच्छी सजावट तुम लोगों ने की है कि तारीफ करते नहीं बनती। देवी, ये कितना सुन्दर मण्डप तुम लोगों ने बनाया है जो हा-फूलों के बोझ से भुका जा रहा है। जगमग करती हुई ये अलंकरण वस्तियाँ इस मण्डप में प्रकाश की गंगा बहा रही हैं। कितने सुरीले स्वर में शादी की फोड़ी गाई गई है। (आज मेरे दहे भगतसिंह की शादी नहीं तो और क्या है? मेरे बच्चे! आज रोको नहीं! आज तो बुरी का दिन है, तुम लोग छुशियाँ मनाओ!”

मैं ने जो रौने की समझाइश दी थी, पर ऊपर उल्टा ही हुआ। नयनों के प्रवाह का वेग और आधे से बढ़ गया। चालीस हजार आँसू हैं आँसू की मड़ी भरी हुई थी। केवल दो आँसू ऐसी थी, जो नहीं रो रही थीं। वे दो आँसू-

मैं शहीद-माता की। अगर वही सों पड़तीं तो मेरे हुए हूँ।  
मोर्गों को संतवना किंतु ठरत प्रदान करतीं। मैं अपने कर्मों  
को सोंता हुआ नहीं देव सकती। उसे लेना होता है तो एकान्त  
में सों लेती हूँ।

वातावरण को मोड़ देने के लिए मैंने उचित समझा कि  
भगतीरि महाकाव्य की प्रति को विमोचन करने के लिए मैं  
निवेदन किया जाय। रंगीन वावरण में लपेटी गई महाकाव्य  
की एक प्रति मैंने माताजी की ओर बढ़ा दी। एक अद्भुत दृश्य  
मोर्गों को देखने को मिला। ग्रन्थ की प्रति लेने के लिए अपने  
हृदय आगे बढ़ाने के बजाय माताजी ने अपने हाथ पीछे कर  
लिए। मैं आश्चर्य-चकित था। तभी लोभ हिरान को कि माताजी  
उनके शहीद बेटे पर लिये गए ग्रन्थ की प्रति लीकर करने में  
कतना कानी क्यों कर रही हैं। किंतु ग्रन्थ को प्रकाशित देवने के  
लिए माताजी ने एक-एक पल एक-एक वर्ष की माँ की बिताया भी,  
वही जब उनके हाथों में आ रहा था, तो उन्होंने अपने हाथ  
पीछे क्यों लींच लिए, यह समिति समझे लिए समझा वही  
हुई थी। समिति का पर्यवेक्षण माताजी ने ही किया। मेरी  
ओर मुवाती के लेकर उन्होंने कहा —

“तुम्हें पहले चन्द्रशेखर आजाद पर ग्रन्थ लिखना चाहिए था,  
वधों की भगतीरि पहले आजाद शहीद हुआ था। मेरे मुवाती ने  
तुमने पहले भगतीरि पर ग्रन्थ लिखना। आजाद की मैं इस  
संसार में नहीं हूँ। उनकी आँ की हस्तियत में मैं तुम्हारे स्वरूपान्तर  
पावती हूँ। वधा तुम कथना अगला ग्रन्थ चन्द्रशेखर आजाद  
पर लिखोगे? अगर तुम अपने नगरवालों के सामने यह  
बादा करो कि तुम्हारा अगला ग्रन्थ चन्द्रशेखर आजाद  
पर लिखा जायेगा, तो मैं इस ग्रन्थ की मंटे लीकर  
नगरवालों, अन्यथा नहीं।”

माताजी की इस अहमता पर तभी लोभ अग्रव्यवहार।  
उनकी जय के नारे देर तक गूँजते रहे। आज के यम

आकर मैंने अपने पीछे लवण का अँगुठा - पीरा को माताजी के माथे पर रक्त का तिलक लगा कर कहा -

“माताजी! यह रक्त-तिलक लगा कर मैं आपके-परा धुकर मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरा अंगना न हलकावत कर शरीर-वन्द्योक्त पर होगा। मैं अपने लगर के लोग (प्राचर-गीतों) को अपने हलकावत का साक्षी बनाता हूँ।”

अब निजिरी यह भी कि मैं अपने एक बेटे के रक्त से चिन्तित होगई। हजगों श्री-पुण्यों की अक्षर-वर्णवत् माल जई थी, पर जिसे उसने अपना बेटा मान लिया है, उसके रक्त के स्पर्श ने उसके हलकावत का बौध तोड़ दिया और प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष का रोने लगी। राष्ट्र-माता को रोता हुआ मैं देव का लोगों का एक ही चिन्तन था कि मैं को क्या सोचना प्रयोग की जाय। इतना बारी भी माताजी की बहू की। उन्होंने अपने दुपट्टे से जैकी काँची से काँचु पोंछे और उनके गले से लिपट कर कहा -

“मैं - मुझ भी करो, गली तो मैं फिर से रो पड़ूँगी।” मैं ने धैर्य-कारण किया और तेरी ओर देव कर कहा -

“बेटे! मुझे दिखाता है कि तु अपने दिए हुए वचन को पूरा करेगा। मेरा आशीर्वाद है कि तेरा हलकावत शीघ्र ही पूरा हो। मैं तेरी आग को पराव-भूकी हूँ।”

इस आशीर्वाद के साथ ही मैं ने उगीत आवरण से गपेटे हुई भगताहिं तालकावत की प्रति मुझ से प्राप्त की और उसे निमोचित किया। मेरे अंगुष्ठ पर उस प्रति पर उन्होंने अपने हातका छिद्र किया। मैंने भी अपने रक्त-सात अँगुठ के निह उस प्रति पर अंकित कर दिए। मैं ने उस प्रताप को अपनी गोद में रख लिया और बोली -

“जिसे मैंने लाली में लोकाया, उसे अजित में पा लिया है। मुझे लगता है कि मेरा बेटा भगताहिं तेरी गोद में आ बैठा है। मुझे लगता है जैसे मेरा बेटा मुझसे



“कालो, आजकी चात्री (जगदिनी-गरीयसी) उत नारी की  
 गरीमा के समया हम सब अपने संसार भुझाएँ - आकाश प्रकट  
 करें जिसके आदि रूप में की प्रशंसा में अनेक संस्कारों द्वारा  
 आचरण हुआ है।

“राम और यश, बुद्ध और ईश तन्ना मोहम्मद और गांधी  
 की जगती के रूप में जिसकी गरीमा का संगीत निरन्तर गूँजता  
 रहता है, उत नारत्व के गौरव में विधुषित वीर-पुरु विद्या-मों  
 को अपने हृदय के समस्त प्रकाश-सुमन इस अ संकल्प के साथ  
 अर्पित करें कि भात का कोई बेटा कायर बनकर मों की  
 मौल को बलवन्तित नहीं करेगा।”

शहीद-मार्ग के अंगूठ की पुँजी की मों की विद्याकर सबने के-  
 समस्त हम लोग उन्हें इन्दौर और रामान भी ले गए जहाँ  
 भावों-भावों भावों में उत साकार तीर्थ में दर्शन किए। हम  
 भावों में विद्या लेते समय उन्होंने आग्रतुष्टि के अङ्ग में कहा -

“बेटे! इस बहुतशीघ्र दिवसी पहुँचकर बहुकेश्वर दत्त में  
 मिल लेना।”

इत आग्रतु के पीछे १३ दत्त की दिन-ब-दिन बिगड़ती हुई  
 हालत थी, जिसकी चिन्ता में तो बहुत थी।

दत्त जी से भेंट: पहला सागत फटकार द्वारा

खर-पर-लट

समस्त जंग आनाताम के प्रयवेष्ट वाई के अक्कर के दरवाजे पर मैंने  
 एक हल्की सी दस्तक दी, जिसने १३ बहुकेश्वर दत्त को। दरवाजा  
 खुला। दरवाजा खोलते वार्न व्याही को दायर में खड़ा चौंका  
 की बड़े अदब के साथ मैंने उन्हें जमाया किया। अन्तराष्ट्र  
 के साथ उन्होंने जमाया का उत्तर दिया और मेरे भ्रम  
 को दूर करने के लिए कहना पारभा दिया।

“हैं मानव हाकिम शहीद नहीं, इत आनाताम को पद  
 जहाँ मैं हूँ। बहुकेश्वर (1) भावों के भावों मानव हाकिम शहीद



















आगे की आन्दोलन में संदर्भ में की थी है कुछ बदलावों को लेकर  
में चलाया। उससे अनुभूति लेकर मैंने उन्हें प्रवृत्तता और उन्होंने बताया  
प्रारम्भ किया। मेरा पहला प्रश्न था -

“आज जो जोड़ी पार्टी में मगतासिंह को दत्त की जोड़ी बहुत मजबूत है।  
इस जोड़ी को बढ़ाने का कारण क्या है। मैं मगतासिंह के साथ आपकी  
पहली मुलाकात कब की वहाँ हुई?”

“मगतासिंह के साथ मेरी पहली भेंट कानपुर में हुई जब मैं परसोईकर  
आदिवासी आन्दोलन में <sup>कानपुर</sup> पहुँचा। उस समय कानपुर के प्रार्थितगरी श्री-  
योगेशचन्द्र-चरणों की श्री सुरेश मइन्तार्य के निर्देशन में कार्य कर रहे थे।  
सुरेश दा ने ही मेरी भेंट मगतासिंह से कराई। कानपुर के दूसरे लोग भी  
हम लोग पहुँचे। मगतासिंह पहले ही एक भाड़ी में बैठा हुआ सुरेश दा  
की प्रतिष्ठा कर रहा था। सुरेश दा के हाथ पर मैं उनके हाथ पहुँचा  
गया। उस समय वह सरदारों के निवास में था। <sup>सुरेश दा के निवास में</sup> मैंने  
देख कर उनके तेवर बदल गए। उनके चेहरे पर रंग आया  
होगया और नग्न हो खड़ा गए। ऐसा लगा, जैसे वह मुझा हाथ  
कर मुझे भारते के लिए भगवत वात्ता है। मैं उनके क्रोध का  
काण्ड समझ गया और उसका क्रोध शान्त करने के उद्देश्य से  
मैंने कहा - मुझे यहाँ सुरेश दा ने भेजा है। वे दो मित्र  
के अन्दर ही यहाँ आने वाले हैं। मैं अपना कबला आगे  
आरी रावता, उनके पूर्व ही सुरेश दा वहाँ पहुँच गए। सुरेश दा  
ने हम दोनों का परिचय करा दिया और उन्हें पश्चात हम  
लोगों के दिमाग मिलते ही चले गए।”

मेरा अगला प्रश्न था -

“क्या यह बताइए कि दिल्ली की केन्द्रीय असेम्बली में क्या-  
विमोट करने के लिए आप दोनों की जोड़ी कब बनी?”

“यह मगतासिंह का ही प्रस्ताव था कि केन्द्रीय असेम्बली में  
कम में कम जाय। पार्टी के दो सदस्यों को वहाँ जाना था। मेरा  
गाम तो मेरा भग्न निर्विवाद रूप से तय हो गया। मेरे साथ  
जाने के लिए मगतासिंह ने अपना नाम स्वयं प्रस्तावित किया। पार्टी  
के अनेक मगतासिंह को खोला नहीं चले थे, इसलिए मगतासिंह  
को नाम दौड़ दिया गया। बाद में सुबदेव भी मगतासिंह के  
कहालुगी हुई और मगतासिंह ने इतना आग्रह



जिसका कि मैं जानूँ जान के लिए उसे कुछ चुन लिया गया। यद्यपि  
मगतासिंह के स्थान पर अपना नाम चुनवाने के लिए राजकुमार ने  
आकाश-पाताल एक कर दिया गया, पर उसे सफलता नहीं मिली। मरने  
भारने के लिए राजकुमार बहुत उतावला रहता था।

“ दत्तजी, मैं उन छोटी-छोटी बातों की तरफ से नहीं जाना चाहूँगा  
जो बहुत दूर हैं। लोगों की चारण है कि दोनों बम मगतासिंह ने  
ही में है। इसमें सच्चाई क्या है और आप लोग इतने बड़े कसों को  
दिखा कर कैसे लगे पड़े।”

“ सच्चाई यह है कि एक बम मगतासिंह ने फेंका था और दूसरा  
मैंने। आनेम्हारी की दर्शक-दीर्घा में जाने के लिए हम लोगों को  
अनुमति-पत्र हमारे सामने जयदेव कपूर ने उपलब्ध करा दिया था।  
जब हम लोग अन्दर पहुँच गए तो एक परिचित सदस्य द्वारा वे  
दोनों अनुमति-पत्र हमारे बाहर फिजवा दिए। यदि वे हमारे ही-  
पास रहते तो हमारी गिरफ्तारी पर पुलिस को यह मालूम हो  
जाता आनेम्हारी के किता सदस्य ~~मैं~~ की अनुशंसा से हमें  
अनुमति-पत्र मिले हैं। दर्शक-दीर्घा में जहाँ समय हम दोनों  
को निष्काश था। दावी लेकर और समझ कर पीछे। हम लोगों ने  
दोनों लेकर पहले हुए थे, जिससे उनकी जेबों में बम आसानी से  
रखे जा सकते हैं। जेबों में बम रखने के पश्चात् हम दोनों ने उप-  
दिष्ट के राजे आवका भी पोंग बना कर जेबों में फुसा डाले  
थे, जिससे छुनी हुई जेबों को कौन भी मोग अनुमान लगा सके कि  
आवका रखने के कारण ही वे छुनी हुई हैं। पहले बम मगतासिंह ने  
फेंका और कुछ क्षण पश्चात् ही उसी स्थान पर दूसरा बम मैंने  
फेंका।”

“ दत्तजी, यह तो मुझे मालूम है कि अपनी योजनानुसार  
बम-विस्फोट करने के पश्चात् आप लोगों ने अस्पति गिरफ्तारियाँ की,  
पर मैं यह पूछना चाहता हूँ कि यदि आप चाहते तो क्या  
आप लोगों को वहाँ ही मोग निष्काश के अवकाश है?”

“ हम लोग बहुत आसानी से वहाँ से बच निकल सकते थे।  
प्रकृत बम प्रहार के पश्चात् ही हमारे अवन में इतना धुँआं भर

गया था और इतनी भादड़ मच गई थी कि मंडि में सिमकने लगे लोग बहुत आसानी से बाहर निकल सकते थे। बाहर निकलने पर सभी चन्द्रशेखर आज्ञा किसी गाड़ी में लगे लगे उड़ सकते थे, और - कि उनका विद्या था और वे सबके लिए तैयार थे। कच भागने के अवसरों का हम लोगों ने जान-बूझ कर त्याग नहीं उठाया।"

प्राग्निवहरी - आन्दोलन की आग की परतों का बहुत कुछ अध्ययन हुआ था, संस्कारण आदि सम्बन्ध में मैंने ज्ञानी से कुछ नहीं पूछा। अपने सम्बन्धित पुरन में प्रसूत किया -

"जन्म, जब आप आजीवन-व्यापार की सजा काट का घूटते तो आपकी क्या प्रतिक्रिया थी?"

एक गहरी साँस भरकर जन्म ने कहना प्रारम्भ किया -

"जेल में घुटने की मुझे खुशी नहीं हुई। अपने छोटे हाथों मगता हूँ मैं चिर-विद्योह हो चुका था। जेल में घुटने के बाद मैं दिग्गो पहुँचा और अजेल के दर्शन करने की इच्छा जागृत हुई, जिसे धन-विस्फोट के पश्चात् मुझमें और मगता हूँ को बन्द किया गया था। मैंने देखा कि वह जेल समाप्त हो चुकी थी और उसके स्थान पर कोई नई इमारत खड़ी हो रही थी। उस स्थान पर पछानों की तरह मुझे घूमते-फिरते देव का एक इंजीनियर ने मुझ से पूछा कि मैं क्या लोग रहा हूँ। मैं क्या लोग रहा था, यह मैंने उसे बताया। अपने जेल की उस कोठरी का स्थान लोगने में मेरी पहचान थी। अपने जेल का पुराना नक्शा निकाला और नई इमारत के नक्शे के नक्शे से अन्ना सि भाग दिया और एक स्थान पर उँगली रखकर अन्ने कहा कि यहाँ आपकी कोठरी थी। फिर अन्ना स्थान पर वह मुझे ले गया। जेल की उस कोठरी के स्थान पर मेरा जेल का मैदान था और कुछ युवक-युवतियाँ वहाँ बैठकर बैठ लगे रहे थे। मैं बड़ा होकर उस मैदान की तरफ देखा रहा। उन युवक-युवतियों ने कहा कि मुझे जेल में रोच है, संस्कारण में उनका जेल देव रहा हूँ। जेल की समाप्ति पर उन लोगों ने हमसे प्यार का विषय कहा।"

से मिलने कायें रहते हैं। मैंने उन्हें बताया कि मुझे जेल में  
 रखा नहीं है, मैं तो अज्ञान को दब रहा था जहाँ जेल की  
 कोठी में किसी समय भगता सिंह की बटुकेदारदत्त को  
 बंद किया गया था। मेरा यह कहना सुनकर उन लोगों ने  
 बड़े आश्चर्य के साथ पूछा कि ये भगता सिंह की बटुकेदारदत्त  
 क्यों थे। यह जानकर कि यह गड़ मछी को यह भी नहीं मालूम  
 कि भगता सिंह क्यों था, मैंने सोचा कि अब यह दुनिया में रहने से  
 कोई लाभ नहीं। जिन्होंने लोग अपना शरीर को इसी जल्दी भूल गया  
 मैं उन लोगों से यह कह कर चला गया कि आप लोग अपने घर  
 के बुजुर्गों से या अपने भ्रातृजन से पूछना कि भगता सिंह की  
 बटुकेदारदत्त क्यों थे।"

दूसरी को यह कहना सुनकर मुझे भी यह सोचने में लिए  
 विवश होना पड़ा कि यह कृतघ्न सीढ़ी देश का क्या भला  
 कर लेंगी। उनके साथ अगला प्रश्न था -

"दत्तजी, यह बदलाव का मूल कारण क्या है जो इसके लिए  
 आप जिसका उत्तरदायी मानते हैं?"

"मेरी अपनी समझ के अनुसार यह परिवर्तन का मूल कारण  
 यह है कि हमने खून-पसीने और त्याग-बलिदान का मूल प्रयोग नहीं किया  
 और दुनिया भर में यह हिंदी पीटने लगे कि खून की छद्म छुप  
 बहाए बिना ही भारत को आजादी मिल गई है। इसका परिणाम यह  
 निकला कि देश में अंधारवादिता पनप गई जो लोग उन लोगों  
 को अंधा बना देने लगे जिनके हाथों में सत्ता थी। क्रांति कारियों के  
 द्वारा मरे परिवारों के लिए कुच्छ कानून के अज्ञान पर लोग अब यह  
 कह-वाही बूटने लगे हैं कि हमने अमुक क्रांतिकारी को इतनी  
 आर्थिक सहायता की थी। यहाँ अस्पताल में मुझसे मिलने  
 के लिए भी कई लोग आते हैं जो कुच्छ हो अपने साथ  
 पीले शाल को मो ले आते हैं जिन्हें मेरी लगन से पीले  
 शाल-पटाका यह प्रचार कर रहे हैं कि हमने दत्तजी के लिए इतना  
 कुच्छ किया है। इसी तरह की एक सैकड़ तरह की बातें

हुना रहते हैं। कुछ दिन पूर्व ही दिल्ली के रहने वाले एक पंजाबी  
संजयन मेरे पास आए और मेरे सखार को कोसने की यह सखार  
आतिथ्यस्थियों के आतिथ्यों के भरण-पोषण के लिए कुछ नहीं  
कर रही हैं। अपनी उदात्ता को दायित्व करते हुए उन्होंने गतों  
तक कह दिया कि शहीद भगतसिंह की बेका इन दिनों शहीदों  
मेरे रही हैं और उनकी मुखादे के लिए मैं प्रतिभात कुछ दे दिया  
करता हूँ। उनकी यह बात सुनकर मुझे क्रोध आगया  
और उनको डाँटते हुए मैंने कहा कि भगतसिंह ने तो शहीदों  
की नहीं की थी, कि उनकी बेका कहाँ से आ गई। अपनी  
गलती पकड़ी जान के दे ऐसे सिरपेरा कि कहि कहता बला  
कर नौ-दो-ग्याह हो गए। ऐसे-ऐसे बश-भोग्यप लोग रहे गए  
हैं 'आज कल'।

इसी प्रकार की बश-भोग्यपता के कई उदाहरण मैं जान्य  
कई आतिथ्यस्थियों के मुँह से सुन चुका हूँ। दत्त जी ने उनसे  
एक आग्रहों को जोड़ दिया। समय बहुत-बालिके लोग  
को। दत्त जी से विदा लेने के लिए मैंने उनसे कुछ  
- दोस्तों के पत्र लिख। उनसे मेरा एक पत्र था -

"दत्त जी, बंगाली होते हुए भी आप जतने कुछ 'कोर'  
हिंदी के हिंदी कोसते हैं कि हम हिंदी-भाषियों को आपसे जानने  
हिंदी कोसने से हिंसा होता है। आपका तब बका है?"

"हो न भले ही दत्त जी के बका"

"आपको बंगाली कोसने से हमें हिंसा भर है, आपका बका  
जो कि हिंदी भाषियों के बीच दत्त जी के बका है और कि उत्तर प्रदेश  
के हिंदी भाषियों की बका को दत्त जी ने न भेजा है। कानपुर में गले-गले  
दिनांकों में। बालकृष्ण राम जनेन जैसे दिग्गज हिंदी-भाषियों का  
हिंसा के भी हमें भरपूर लिखा है। दत्त जी के बका हिंदी तो  
भगतसिंह कोसता था 'वह तो एक हिंदी का हिंदी कोसने वाला  
और दत्त जी का। हिंदी को बुरे कुछ बका है मुझे और  
तब यह बका है।"

कुछ सोचने की मुद्रा में बिना कोई प्रश्न किए मैं कुछ क्षण  
 मौन बैठा रहा। मुझे इस प्रकार मौन दोबारा स्तब्धी ने ही प्रश्न किया -  
 "किन किन्नाहों में लोग हैं सत्यजी का?"

मैंने कुछ लज्जा कर उत्तर दिया -

"मैं सोचने लगा था कि आपने अपने आन्तरिक जीवन में  
 कोई-एक-उत्तर देते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है। जहाँ  
 भोजन है आपकी भेंट नहीं होती होती। मैं जानता-वास्ता हूँ  
 कि क्या आपने अपने आन्तरिक जीवन में ऐसे दिन देखे हैं  
 और उन स्थिति में आपको क्या लगता था?"

मेरा प्रश्न पुनः कर स्तब्धी कुछ सोचने लगी। फिर बोली -

"कोई एक घटना है तो मुझे, हमारे आन्तरिक जीवन  
 में वो ऐसे अवसर बार-बार आते थे जब कभी एक दिन कभी  
 दो दिन कभी कभी तीन-तीन दिन तक हमें भोजन के दर्शन नहीं  
 होते थे। उस हालत में भी हम लोग अपना काम नहीं बंद करते  
 थे और जिससे जो दायित्व दिया जाता था, वह उसे पूरा करके  
 दिया जाता था। मैं आपको आगरा की एक घटना सुना रहा हूँ।

"उस दिनों लखी अलीनगर नाम का हम लोगों को आगरा  
 में बस बनाना पड़ा था। उसके-वर्षे जाने के बाद भी हम लोग  
 कुछ दिन आगरा में रहे। मुझे पता था कि एक मकान में  
 मेरे साथ जयदेव कपूर, शिव वर्मा और विजय कुमार सिन्हा थे।  
 भगत सिंह की-पट्टी का आजाद नहीं बतल-बल गाने हम लोगों के  
 पास जो पैसा था, वह खर्च हो गया। बराबर तीन दिन तक हम लोगों  
 को भोजन नहीं मिला। चौथे दिन हमारे लखी शिव वर्मा होटल में  
 रहने वाले अपने एक मित्र के पास गए और अपने फर्क-फर्की की  
 बात उन्हें कह-छु पुगई।

"दोपहर के भोजन के लिए लखी ने शिव वर्मा के घरवालों  
 में पहुँचने का निमंत्रण दे दिया। दोनो मित्रे अन्त में भोजन करने  
 गए। भोजन पर लखी का नाम जहाँ ही सुना, शिव वर्मा कुछ रो-रिखा -  
 उठा कर अपने कोट की जेब में रख लेते। इस प्रकार उन्होंने अपना  
 पेट भूलिया और अपने लखीसोते लिए बार-बार रो-रिखा-पूरा भी।  
 भोजन समाप्त करने शिव वर्मा ने अपने लखी से दो आने दिये। लिए और  
 एक-छु लखीरे में दही भरकर हमारे पास आ गए और बोले, हम लोगों के लिए  
 भोजन ले आया है। उस समय मैं अकेला ही कभी पाया और कोई पुस्तक पढ़  
 रहा था। मैंने कहा कि इस लखी को यही राख दो, जयदेव और विजय के आने पर  
 लखीरे। मैं किताब पढ़ने में लगे हो गया। आप लखी को एक खंजर रो-रिखा के

[illegible]

“सत्यजी, मैं एक हिंदी को भीतर से देखी जा रही हूँ। आनी-आनी  
शरीर, मज्जा, हिंदी में ही रहने वाला एक-दूसरे हैं। मैं तुम हैं-  
आपको वही मैं देखी हूँ।”

3. 11. 38 (M) -

आप है जिसे अनेकाने हाथों से धरती है, पर  
- यदि आप ने हमारे हाथों पर एक महान्त्व मिले जाता है, तो  
आप है यह अनेकाने हाथों से धरती है कि आप अनेकाने हाथों से  
- पर जो अनेकाने हाथों से धरती है कि आप  
गले में मिले रा पदा है। मेरा परामर्श तो रही है कि आप  
स्वा. को इस अनेकाने हाथों से धरती है कि आप अनेकाने हाथों से  
परी भी अनेकाने हाथों से धरती है कि आप अनेकाने हाथों से  
- आप है कि आप अनेकाने हाथों से धरती है कि आप अनेकाने हाथों से  
- निजने को धरती है कि आप अनेकाने हाथों से धरती है कि आप अनेकाने हाथों से  
- निज तेरा रहिए। मेरी हस्त अनेकाने हाथों से धरती है कि आप अनेकाने हाथों से।”

अपनी जिज्ञासीकृष्ण में क्षीणी ने उसे दण्डाष्टक गाता  
 मोने की मुझे दिया, जिसे मैं उन्हीं ने मेरे हाथों ही हासिल  
 किया। उन्हें देकर मेरी मैं दण्डा आया।

Spina

उसने इस विचार के कुछ मास परखवाले थे। समाजवादी पद्धत का विचार कि कृषि इस दुनिया में नहीं रहे। उन्होंने कानून की यह इच्छा रखी थी प्रकट कर दी थी। जो वे तो दाह संस्कार में अपनी माता की समाधि को निकट ही किए। आप। तब जैसी विचार में आया कि 'अली' माता की माताजी कृषि से जोड़ दिए जाने का प्रयत्न आग्रह करने से क्यों करती रही थी।

ਮੇਰਾ ਨਾਂ ਸੁਰਜੀਤ ਕੁਮਾਰ ਸਿੰਘ ਹੈ

मोक्ष-मार्ग ज्ञात हो । भक्तों की कष्ट आत्माओं में आती है । भक्तों में  
भी 'कल्याण' नाम का एक प्रमाण है । यह प्रमाण प्रकटित हो चुका है । यहाँ

दोषों में से एक दोष है कि वे चिन्ता नहीं करते। (मोक्षने मोक्ष) ११३  
इन लोगों ने केवल अपने दिने बिताए हैं। वेदादि ने के पूरे में  
में ने उगाई आने में प्रयत्न किया -

"कृष्णजी, मैं एक हिंदी को लैबरी में रखा था। उसी-उसी  
शरीर में गतादि पा मिला। वह एक-दूसरे हैं। अब मुझे  
आपको वही सब बताऊँ।" १२

इसका उत्तर -

"आप ने किसी अनेकाना हाथों का बिल्ला में नहीं है, पर  
- बुद्धि काय ने हमारे पास पा एक महत्त्वपूर्ण मिले। आप  
आपने यह आश्चर्यजनक साधनादि हो जाते हैं कि आप प्राणियों  
- पर कोई कुछ भी नहीं है। यह आपकी रचना है कि आप  
गले में लोहे का पदार्थ है। मेरा परामर्श तो यही है कि आप  
स्वास्थ्य को इस आदर्श में तटस्थ मान-कर लें। आपने जो बातें  
कही हैं वे सब असंगत हैं। आपका प्रचार भी गंभीर नहीं आता  
- बल्कि।" फिर भी आप मुझे यह भी बताते हैं कि प्राणियों पर  
- निषेध के कारण आप मुझे यह भी पत्र लिखते हैं। आप अपने  
- लिए तैयार रहिए। मेरी समस्त श्रमसमर्पण आपने पाई है।"

आपनी निराशा के लिये मैं कृष्णजी से क्षमाएँ मांगता हूँ।  
मेरी भी मुझे क्षमा, जिसे मैं आपको मेरे समान ही मानता हूँ।  
कि। उन्हें देना मेरा मैं-का काम था।

इसका उत्तर -

आपने इस विषय में कुछ बातें प्रस्तुत की हैं। आपका पढ़ने का  
विषय कि कृष्णजी इस दुनिया में नहीं रहे। उन्होंने आपकी यह श्रम  
- पढ़ने की प्रकट कर दी थी। मैं तो दाह संस्कार में अपनी आत्मा  
की समाधि में निकट ही लिखे। आप। तब मेरी प्रार्थना में आता  
कि अतीत भगवान् की सातवीं कृपा से जो कुछ मिले लें का  
- प्रथम आग्रह मुझे से वही करती रही थी।

महाकवि आपा के मधु-चिह्न पर

मोक्ष-मार्ग जो है। महाकवि कवि आपा के आदर्शित 'महाकवि'  
मैं 'कलेश्वरजी' चन्द्रसेन 'आप' महाकवि प्रकाशित हो चुके हैं। पर मैं

मैंने उम्मीद की थी कि मैं भी एक दिन  
दत्तजी, मैं एक दिन को भी एक दिन को भी  
शरीर मगहाई जा मेरा महात्म्य धर्म-पुत्र है। अब मुझे  
आपकी बातें बतलाएँ हैं।

उम्मीद उम्मीद -

आप है जिसे आपने कहा है कि आपने नहीं है, पर  
जुंकि आप ने हमारे भी एक महात्म्य मिले साथ है, तो  
आप है वह आशा करना सामाजिक हो जाता है कि आप सामाजिक  
पर जो कुछ भी मिलेगा। यह आपकी इच्छा है कि आप  
गये हैं मिलें रा पदों में। मेरा परामर्श तो शरीर है कि आप  
जिस को इस आदर्श में तटस्थ मानकर मिलें। आपकी योजना में  
कहीं भी शरीर को मगहाई। और आपका प्रचार की मध्य नहीं आता  
- ताकि। आप ही आप मुझे यह भी लगता है कि आपकी योजना पर  
- मिलने के कारण आप मुझे यह भी लगता है कि आप अनेक  
- मिले हैं। मेरी समस्त श्रम समझें आपने मिले हैं।

आपकी निराशा के लिए मैं दत्तजी ने मेरे अपराधों को  
कोई भी मुझे नहीं, कि मैं उम्मीदों में मेरे समस्त ही महात्म्य  
- कि। उम्मीदों में मेरे अपराधों को।

इस प्रकार

उम्मीदों में मुझे यह लगता है कि आपने पढ़ने को  
मिले कि दत्तजी इस दुनिया में नहीं रहे। उम्मीदों में आपकी इच्छा  
- पढ़ने ही पढ़ने की थी कि मेरा दात-संसार जो मिली आता है  
को आपने मेरे निकट ही किया आप। तब मेरी निराशा में बताया  
कि शरीर मगहाई की माताजी दत्तजी से जो कुछ मिले को  
- प्रवर्तन का यह मुझे संको कही रही थी।

महाकवि रामदास पद-विहीन पर

मैंने यह कहा है कि मैंने आपकी इच्छा को नहीं आगे रखा है  
और 'महाकवि रामदास पद-विहीन' महाकवि प्रकाशित हो चुके हैं। पर  
जो मुझे यह कहें हैं कि मुझे को भी यह कहें मुझे। मुझे को









मोठा कर रहे हैं, अनाथों को भी - १५७  
को एक नज़र भी नहीं देते हैं। यदि किसी अनिष्ट के  
विशेष वाली प्रार्थना होती है तो आपद उनकी जगहें अच्छी हैं।

मेरे हों के रोकर ही एक उदाहरण है जैसे जगदीश जी एक-मात्र  
सिंह का घर था। मनुष्य की दुष्टियों से सब कर भत्त देकर अपना ही  
अपनी सम्पत्ति की भीड़ों के साथ ही दवाइयों के गुण बताए। देखते ही  
देखते उनसे काफी तोर बसा लिए। अपनी दुर्गति बढ़ा कर गहरे  
मा। इसी और दोहों की मही दिवाता हुआ बीजा -

“ बाबूजी, यह मेरे एक पण्डित की कसौटी है। मैं आपका देव  
गुहूँ कि आप भी एक भी प्रसन्न नहीं बिकी। मेरी तलाश मानिए और  
आप एक माउड-सीकर फिर से ले लीजिए और पाइकी हुई भाषा  
में लितावों की तारीफ़ शुरू कर दीजिए। आप देखेंगे कि कैसे  
ही देव से भिन्न होती है जगदीश। कुछ शरीर-आपसी भी हुआ है।  
आप देखेंगे कि लितावें हवा-हवा निकल जाएंगी। ”

जिसे सब ब्रह्म की तलाश मान कर अपनी संस्था को एक  
माउड-सीकर भी फिर से ले लिया, लेकिन अपनी प्रसन्नता को गरीब  
करने के लिए एक शब्द भी मेरे मुँह से नहीं निकला। माउड-सीकर  
के साथ उसे भी ही माइका आया था, वह मेरी दयनीय दशा न  
देख सका और अपने प्रभाव रखा कि मेरी स्त्री से वह अलग  
कराएगा। कहने कहना प्रारम्भ किया -

“ शहीदों की आसुसी लितावें खरीदिए। उनकी भीड़ों की  
कहानियों लोहिए। उनकी प्रेम-कथाएँ पढ़िए। ”  
सारा पहलू है वह और भी कुछ ऐलाग कर, मैंने स्वीकार  
बदलने के लोहा अपने बंधा दिया। यह प्रयोग के सफल  
रहा।

जब किसी यहाँ तक आ गई कि गुजरा-चायला मुश्किल  
ले गया तो अगले दिन अगली महाकाव्य में कुछ पृष्ठ  
इधर-उधर से मैंने जहाँ ही पाइ दिए और मैंने-बुरा  
बदलने वालों के साथ जाकर उन्हें प्रसन्न दिखाने का काम

19-  
 - जो फूलों की-कली है खेड़ी कर गई है, बहुत लगी देरों में /  
 - पंख-पंखत कपोलों की फुलकों की एक-एक सुभा देते हैं जैसे  
 - गली हुआ । जैसे आँखें बहुत ही फुलकों की । सँभल है ( )  
 - ली कपोल तो पता क्या ?

आर-जैय दिन खन्ना सिमी-इफ प्रकाशित हुई कि  
 फुलकों की फुलत फैलनी लगी और बिजली कचली-लाल दिखनी।  
 तभी एक हावा होगी । एक दिन भीड़ में है एक मुलक आया  
 और लपककर उसने मेरे पैर धू लिये । जिदालु भीड़ की  
 प्रश्न-वाचक राजाओं का समाधान अपने इन शब्दों में किया -

“ ये हमारे मुलकों हैं । वे मिंगा कॉलेज में प्रोफेसर हैं ।  
 इन्होंने मुझे बी.एड. में पढ़ाया है । बहुत लड़े क्यों भी ( )  
 हैं । ये सारी फुलकों इन्हीं की लिखी हुई हैं । ”

लोगों में आवा-धुंसी होने लगी -

“ इतना बड़ा लोका इफ प्रकाश फुलकों में क्यों रहता है ? ”

“ लगता है, यह बेचारा मुसीबत का मारा हुआ है । ”

“ आर, फुलकों तो बहुत अच्छी हैं, और जैय भी बहुत होती-रही है । ”

ये लोग मुनहें लुप्य लुप्य, इसके पहले ही होना बड़ा कर  
 - जहाँ है लोका गया ।

आज ही दिन-आर-एक-भक्तियों का एक विशिष्ट-मण्डल भरेपान  
 करता । उन लोगों ने एक-एक हुआ-हुआ मुझे पकड़ा लिया ।  
 पढ़ा तो बालू म हुआ कि वहाँ की किसी लम्बे-लम्बे ( ) का द्वार  
 मेरा कमिन्सन-लगाएँ आते-जिते था । कार्यक्रम ने लगे  
 लोका कर-मुकदमा, मेरी स्मृति को प्रश्न ही नहीं रहा ।  
 उन लोगों ने दूध-धाम है मेरा कमिन्सन लिया । मेरी  
 लोकाओं की लोका का बाबा-बादिल गया । जो फुलकों के लोका  
 लोका-मुकदमा आकाश में लोका गई । शालू की प्रीति  
 भेट का मुझे सम्मानित किया गया । कदी-गोली भेट है ।

अबले दिन मैंने कर लोका धो-दिया । जहाँ के लोगों ने  
 मेरा सम्मान किया था, वही दोरी लोका कर लोका फुलकों के लोका

कर में दते कर्मसाधित किए जाता । यह बला से बचने में  
 जिसके भी भुविमान है ही लिखते । राजे । देव के । मंत्रों  
 गीतों, इत्यादि- किताबों का एक बड़ा बगुन दारिद्र्य के  
 योमीन को पुनः पुनः ले जाता । उन्ने में लाख  
 कष्टों का भोग किताबों का ।

ਕੀਰਤ ਜਾ ਪਾਠੁ

[illegible]

देहरादून का प्रसिद्धि-सम्बन्ध तीन दिन चलने वाला था।  
वक्तोओं के नाम चुनने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। अतः कि  
चुरेंचर वक्तो जहाँ मौजूद थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने मेरा  
कविता-समूह पुराना रखा था। उनका शिष्ट बंदिता सम्बन्धनों का दयादा  
शुद्धि करने के कारणों का रोशनी रखने मात्र सुनने का ही उद्देश्य था।  
किया है। सम्बन्धनों में फरक पीढ़ी के कारण समूह को 'बेकार' समझ  
नहीं आता। यद्यपि भी प्रवेश करने में पहले ही सम्बन्धनों  
को दिखाने के लिए शिष्ट का समय भी नहीं दिया जा सकता। फिर  
कुछ हो-य-समूहों के बीच कि सम्बन्धनों के पहले ही कार्य का  
प्रारम्भ करने के पहले जो राय-शीत भावा-आपणा समूह

समय पर सरलजीकी एक राष्ट्रीय कविता पढ़ने का काम सही दिनांक पर  
सकता है। ऐसा ही हुआ। ~~प्रथम~~ कार्यवाही का प्रारम्भ करने के पहले  
अध्यक्ष महोदय ने संक्षेप वक्तव्य देते हुए कहा -

“समाजवादी कार्यवाही का प्रारम्भ राष्ट्र-गीत के गायन से हुआ  
करता है, जो कि एक आदर्श कार्यवाही का प्रारम्भ एक एक राष्ट्रीय कविता के  
पठन से करेंगे। हमारे बीच की स्वरूप प्रेरणा उत्पन्न करने के एक कार्य  
है जो केवल राष्ट्रीय विषयों पर ही कविता लिखते हैं। ये शब्दों की  
प्रयोगशाला के ही कार्य हैं। कविता, गीत, राष्ट्र-गीत के माध्यम से  
सरलजी की राष्ट्रीय कविता है ही कार्यवाही का प्रारम्भ होगा।”

अब तो पढ़ने के पहले पढ़ने कहा -

“कविता चार पदों की है, लेकिन समाजवाद के कारण मैं उम्मीद  
रख पा रहा हूँ।”

अब मेरी कविता का पहला पद समाप्त हुआ तो अध्यक्ष महोदय  
ने स्वागत की कहा - पूरी कविता सुनाओ। मैंने पूरी कविता सुना दी।  
मैंने जो बातें सुनाई थीं, वे सब सुनीं। मैंने अध्यक्ष महोदय से कहा कि  
आज की प्रयोगशाला कार्यवाही राष्ट्र-गीत है तो होकर सरलजी की  
कविता है हुआ करेंगे। यह मेरी कविता का सर्वोच्च विचार  
मेरी कविता की राष्ट्र-गीत के लिए करना पड़ा, मैंने इसे  
समाप्त की। मैंने जो वक्तव्य कहा करता हूँ। जो कविता मैंने पहले  
दिन पढ़ी थी, वह पूरी की पूरी यहां उपस्थित कर रहा हूँ।

मैं आगरा-झाड़ी की गाथा-गद्य

मैं आगरा-झाड़ी की गाथा-गद्य  
उसके अर्थ जाना करता हूँ,  
जो कविता राष्ट्र ने जिया है,  
मैं उसे सुनाना करता हूँ।

यह सत्य है, आगरा-झाड़ी की इस गाथा ने दर्शाई है,  
यह सत्य है, उनकी आशा पर-वल करवाया है।  
यह सत्य है, हिन्दुस्तान का जिया उनकी बुद्धिनी है,  
यह सत्य, अपना महान, उनका उनकी कविता-कविता है।  
वे गायन होते, तो भारत मुझे का देना चाहता था,  
जीवन रोना को मा होता जो हम ही नहीं सहा जाता।  
यह सत्य है, दाग मुलाही को उनको मोह हा-चोए है,  
हम लोग कोते, उनको चरती में गतिव दोए है।

इस पीढ़ी में, उस पीढ़ी के  
 मैं भगव जगाया करता हूँ ।  
 मैं अमर-शहीदों का-धारण  
 उनके यश गाया करता हूँ ।

यह सच, उनके जीवन में भी रंगीन बहलें आई थीं,  
 जीवन भी समानित मिली थी, उनके जीवन में फाई थी ।  
 पर, मैं को आँसू भाव उनके सब सरस, कुहरें लौटा दीं,  
 कौलों को पथ का करण दिया, रंगीन बहलें लौटा दीं ।  
 उनकी चरती की देवा का वादे न किए भस्म-चौड़े,  
 मैं को अन्तिम हित फूल नहीं, वे निज भास्म लेकर दीं ।  
 भारत का पुन नहीं पतला, वे खुन बहा कर दिया गए,  
 अग को इतिहास में जगती, वे गौरव गाया दिया गए ।

उन गाथाओं में तदीयुन को  
 मैं गरमाया करता हूँ ।  
 मैं अमर-शहीदों का-धारण  
 उनके यश गाया करता हूँ ।

हैं अमर-शहीदों की पूजा, हर एक राष्ट्र की परंपरा,  
 उनको है मैं की कोव-चान्य, उनको पाकर है चान्य चरा ।  
 गिरा है उनका रक्त जहाँ, वे होर तीर्थ कहलाते हैं,  
 वे रक्त-बीज, अपने जैसे की बड़ी फलन दे जाते हैं ।  
 इतिहास राष्ट्र कर्तव्य, शहीदों को समुचित-सम्मान करे,  
 भास्म देने वाली जगत पर, यह युग अभिमान चरे ।  
 होता है रेत गले-जहाँ, यह राष्ट्र नहीं दिस पता है,  
 आजादी ललित हो जाती, सम्मान हमी बिन जाता है ।

यह चर्चा कर्म यह गरी  
 जमीन में समझाया करता हूँ ।  
 मैं अमर-शहीदों का-धारण  
 उनके यश गाया करता हूँ ।

पूजे-न शहीद गए तो फिर, यह पंच कौन अपनाएगा ?  
 तोषों को गुंते हैं कौन आकर, अपनी धातियाँ अड़ाएगा ?  
 दुश्मनो फन्दे कौन ? गोश्लियाँ कौन वस्त्र पर लाएगा ?  
 अपने हाथों अपने मस्तक फिर भागों कौन बढ़ाएगा ?



सुजे न शहीद गए तो फिर, आत्मा की जैन बनकर भा ?  
 फिर जैन मीत की व्याप में, जीवन के साथ रहकर भा ?  
 सुजे न शहीद गए तो फिर, यह मीत क्यों ही बनकर भा ?  
 चरती को ओ कह कर, मिट्टी गावा 'त' जैन बनकर भा ?  
 मैं चौराहे-चौराहे पर  
 ये प्रश्न उलझा करता हूँ ।  
 मैं अमर-मर्त्यों को - बरखा  
 उमर के बंधन गाया करता हूँ ।

अगले दिन की कायगाही के प्रसंग में 'खून की आत्मा' शीर्षक  
 की पुस्तक स्वामीजी को पाठ्य आई -

### खून की आत्मा

जैन कहता है, हमारी बाहुओं में लाल नहीं है ?  
 जैन कहता है, हमारे खून में जताआ नहीं है ?  
 जैन कहता है, प्रलय के ही पुनारी हम रहे हैं ?  
 जैन कहता है, प्रलय हमने कभी माना नहीं है ?  
 जैन कहता है, अहिंसा अनेकता का अन्तर है ?  
 जैन कहता है, सत्य में हम न लड़ना जानते हैं ?  
 जैन कहता है, आपत्ति का हन्धेरा ओ देते रहें, तो  
 तोप की, तलवार की भाषा को पढ़ना जानते हैं ?

विश्व के इतिहास में अदृश्यतुल्य पढ़ लो हमारा  
 - यह कहते स्वामीजी से लिख 'विराटस्य' लेआ,  
 - एक पन्ने पर अहिंसा की लिखी बाणी मिलेगी  
 दूसरे पर गरजता संघर्ष का अन्धकार लेआ ।

उत्तिष्ठतां तं पद-बाध हो कर रहे है हम निगम-प्रोगण  
 -निगम प्रिय सखनन्ध भी बन्धुग के जोड़े गए हैं,  
 निगु, जिसने भी उठई आँख है सो मातृ-भू पर  
 दाँत भी उस लातलायी के यहाँ तोड़े गए हैं ।

जौन है वह सहसि, जो कर सके अरोध गाँतना  
 बड़ गए जत पाँव, भंजिल तक कभी रुकते नहीं हैं,  
 चों न जाने है हमारे खुन की तासीर ऐसी  
 शीघ्र कट जाते हमारे, निगु के मुकते नहीं हैं ।

शुनूओं की व्वाहियों में, हिन्द के तर-ताहरो के  
 मुह-रत माने-दुपारें मुह ही भोके गए हैं,  
 गारियाँ भी कम नहीं बलिदान-गारिमा में लरीं त  
 पुत्र, पति, भाई, सगर की आग में भोके गए हैं ।

हैं नहीं वीरगणाओं की कामों इस देश में कुदर  
 वीरता की ज्वाला भी रणभूमि में खेसुमती हैं,  
 छोट भी सम्मान की कोई न ~~हम~~ दूर समाता कामों है  
 जालम लपटों को मिहँ करके स्वयं ही दुमती हैं ।

बाल-वीरों की बाबाएँ विश्व को बतला रहे हैं  
 गितगतिपते, नील-गम के वध पर अंकित सितारे,  
 बाप से बेटा सवाया ही यहाँ होता रह है  
 दाँत शंसे के गिला करते यहाँ बालक हमारे ।

इसलिए संकल्प हम दुहरा रहे हृद-चेतना से  
 -देश का सम्मान हम, निज प्राण देकर भी रखेंगे,  
 सुनिगे के धूल भी चुनने वाले, तो हम चुनेंगे  
 देश के हित उभैत को भी पाले खुशी है हम-चरवेंगे ।

- महात्मा प्रवेश के सा-अपुर जगह में 'स्वर्गीय जालकृष्ण शर्मा 'जीवनी' की स्मृति में एक कवि-सम्मेलन का आयोजन था। कवि सम्मेलन स्मृति-मेला-होना में आयोजित था। कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष थे अमलपुर के सुभाषि श्री भवानी प्रसाद तिवारी और प्रमुख अतिथि थे प्रदेश के राज्य-मंत्री श्री गौतम शर्मा। दूर और पास के आने वाले सम्मेलित कवि आमंत्रित थे। कवि-सम्मेलन-मन्त्रालय जब जानते हुए जब जानते हुए ही गये तो एक कविवरि कवि-सम्मेलन के परचात, मुख्य-अतिथि श्री-गौतम शर्मा ने कवियों को उकसाया -

"यह कवि-सम्मेलन आयोजित करने वाले जालकृष्ण शर्मा जीवनी की स्मृति में आयोजित है, लेकिन कवि सम्मेलन बड़ी विनीत-गति से चल रहा है और इसमें मंडली हुई कविताएँ सुनने का नहीं मिल रही।"

- कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष दादा भवानी प्रसाद तिवारी ने भी और देखा। मैंने-संकेत देकर उन्हें आइवाला कर दिया कि यह सुभाषी स्वीकारने में तैयार हूँ। उन्होंने कविता पढ़ने के लिए मेरा नाम पुकार दिया। उन दिनों मैंने एक नई कविता लिखी थी, जिसका शीर्षक था - 'चन्द्रशेखर आज़ाद की माँ का अन्तिम वक्तो'। इस कविता की पृष्ठ-भूमि यह थी कि चन्द्रशेखर आज़ाद ने स्वयं भी माँ जी से बहुत समय तक कहाँ-काँ कहाँ किया था और उनसे शहीद होने से प्रस्ताव जब माँ का जिाने के मावरी श्राव में उनकी माताजी सुनें मरने लगीं तो आज़ाद के आयोजित भावों आज़ाद की माताजी को अपने हाथ में ली लगे और उन्हें बहुत आशा के साथ रखा। उन दिनों मैंने आज़ाद की माताजी को तैयार कर लिया। आज़ाद की माताजी का देहवसान माँ जी की ही-हृदय। 1945 ई. में हुआ। आज़ाद के हाथी आयोजित करने में आज़ाद की माताजी की स्मृति में माँ जी ने एक पोस्टर निर्माण कर दिया और कुछ दिन बाद माताजी की एक श्रुति स्थापित करने का संकल्प कर लिया। माताजी की श्रुति का निर्माण किया आज़ाद को

भाँसी-जिवाही साथी मास्टर रुद्रनाथरायण जी हैं। जब आजादगी  
 - आजादी की भूमि-प्राप्ति की दिवार सासन के कानों तक पहुँची  
 तो अपने इस काम को अर्थ का करार देते हुए नगर में निवेद्यांग  
 लागू कर दी। प्राणिमायियों ने सोचा कि हमारे साथी आजाद  
 - तो अब हमारा जालीय होगा और हम लोग इस गौरव से वंचित रह  
 गए। उन्होंने निश्चय कर लिया कि हम लोग - पन्द्रहवाँ आजाद  
 की गों की भूमि स्थापित करने रहेंगे, मने ही इस कार्य में हमें  
 अपनी जान जँवानी पड़े। आजादी की भूमि अपने अरि  
 पर राख कर के लोग निवेद्यांग मंगे कहे निवेद्यांग पड़े और  
 जुलूस लाडा-स्वाम पर जो पहुँचा। वहाँ आजाद की गों को  
 - भूमि की स्थापना कर दी गई। शासन ने इसे अपना अपमान  
 समझा और पुलिस को बोली - वामन की आरु दी गई। पुलिस  
 ने ~~मिडिया~~ लोगों पर गोलियाँ बरसाई और दोपहने ली देहने  
 - मौत व्याप्त वहाँ राहिए होगी। पुलिस ने भूमि को गिरा दिया  
 और उसका एक अंग पंडित लोग को।

इस घटना की प्रष्ट-दूधने में ही मैंने वह कावेता लिखी थी,  
 जिसका शीर्षक था - 'पन्द्रहवाँ आजाद की गों का आतिथ्य वक्तव्य'  
 - य. राय वासुदेव राय ने आजाद की गों में भरने के पूर्व कोई  
 वक्तव्य नहीं दिया था, पर वह तो कावे की वात्सल्य थी कि यदि  
 आजाद की गों में आतिथ्य वक्तव्य लिखा जाता, तो वह क्या कहती।  
 अब तो मैं पुनराजने पर कावेता-पढ़ने के पूर्व मैंने संक्षिप्त  
 वक्तव्य देते हुए कहा -

"अभी-अभी मुख्य-अतिथि महोदय श्री शर्मा जी ने वक्तव्य  
 के साथ बड़े-बड़े करते हुए कहा कि कावे-जमाने का कावे, मं  
 गाते हैं-चाँद रहते और पढ़े जाने वाली कावेताओं में यह नहीं  
 लगाता कि वे एक कावेता की कावे की स्मृति में पढ़ी जा  
 रही हैं। मैं एक कावेता पढ़कर इस विचिन्ता को तोड़ने  
 को प्रयत्न करता हूँ। कावेता का शीर्षक है -

('पन्द्रहवाँ आजाद की गों का आतिथ्य वक्तव्य')

## पञ्चयोग का ज्ञान भी मैं का हानि भवती है

मैं दीपक की बुझने वाली लौ जैसी वृद्धा हूँ,  
चूना कोटती हूँ दम जिसका, मैं ऐसी वृद्धा हूँ।  
दिए रोनाता ने जो हैं, मैं दो दिन काट रही हूँ,  
जीवित रह कर, मैं अपनी ही निम्नता टाट रही हूँ।

पेट पीठ हैं एक, गलाना का कोटि खूब रही है?  
पकी फासल-सी, अरे भूख भी दिन-दिन खूब रही है।  
दूध भर भरा औचल का, पौरुष के पानी जैसा,  
वर्तमान ही मुझे भरा रहा, दुखद कहानी जैसा।

देशभक्ति के जोश सरीखी, देह छेद लट रही मेरी,  
सिंह-सिंघों की गिनती-सी, उमर घट रही मेरी।  
एक मनी मैं डाले पानी-सी आस-पुष्प गई मेरी,  
दुर्दिन के सम्मान सरीखी, नमर भुका गई मेरी।

मन की विकृतियों जैसी पड़ गईं गुर्रियों तन पर,  
कुम्हों-कुम्हाड़ दूनी जैसी राख जमी निन्ता पर।  
चिर-अतृप्त अगिलाकाओं से, बाल पका गए मेरे,  
जीवन-पथ पर-लाते-चलते, पाँव धका गए मेरे।

देशद्रोहिणों की गंलख सा, बड़ दुर्भाग्य रहा है,  
कैसे तुम्हें बताऊँ, मैंने क्या-क्या दुःख सहें हैं।  
मैं भू हूँ, जिसने अपना बेटा ज्वाना किया है,  
उठ न सकेगा, कई गोलीयों पाना वह ऐसा है।

बेटे के तन में भी जितनी मातृ-दूध की चारे,  
राख-धल में बन गईं पुनः वी वे सब प्रसर फुलें।  
लड़ते-लड़ते खेत रहा था, सिंह-सूरमा मेरा,  
देख नहीं पाया, आपत्तदी का वह स्वर्ण-सवेरा।

926  
लोने लोग, जिताओं पर मैले हर वरस लगेंगे,  
अरे वतन के लिए, फूल उमकी सूरत पर बसोंगे ।  
पर अब मैले कलें लग रहे, कोई मुझे बताए ?  
कौन मद रह फूलों हैं, कोई मुझको समझाए ?

जिना लोनों की लाशों पर चला कर आजायी काई,  
उमकी शायद बहुत ही गहरी, लोनों ने दफनाई ।  
उमके आने, आना रोहियों के दर्शन को तरसें,  
स्वर्ण-मैल, पर और किसी ने आंगन में जो वरसें ।

पता नहीं था, इस चारती पर ऐसे दिन आएंगे,  
बोच-बोच कर आजायी का मोल गिदें जाएंगे ।  
पता नहीं था, समय बदलते आँखें ब्रह्म-जाएगी,  
मानवा की अवस्था, इतने शीघ्र निवृत्त जाएगी ।

एक ओर नंगी लाशों का कफन नहीं मिल पाए,  
और दूसरी ओर, दिवाली नित्य मनाई जाए ।  
वशों न दमित-पीड़ित की आहों में उफान फिर आए ?  
वशों न किसी की छुटन आग अभिशापों की बरसाए ?

वशों न किसी की कोण, घुट फिर है ऐसा जन्माए,  
जो कि गरुड़ बन, महा-मयंकर नागों को खा जाए ।  
लगता, भारत की लारी का फिर मातृत्व आगेगा,  
शान्तिदानी वीरों का मैला फिर है यहाँ लगेगा ।

फिर मुझ जैसी कोई माँ, कोई आजाद जन्मेगी,  
किसी-बन्धुशेषर की, फिर खौवन-गंगा अमनेगी ।  
पाप-पुन्य पर, फिर बिना श-ज्वाला वह लहराएगी,  
आली श्राव, किसी अन्यायी को फिर हँसाएगी ।

अन्यायों के शासन पर, वह फिर गोली दागेगा,  
पुन आली विस्फोट-गर्जना, फिर यह युग जागेगा ।  
शोषण करने वालों का अपराध फिर है डोलेगा,  
जरा ऐसे श-चारती पर तब आँखें खोलेगा ।

यह भी वह उच्चता जो मैंने गांव-लोक के हाथ सुनाई। कविता की पंक्ति-पंक्ति पर दाद मिली। इस आह्वान को जितना ही गया। कविता लिख लेने पर बहुत देर तक ताकियों की गड़गड़ाहट से भवन में जाता रहा। उसके बाद सुन्नाटा हो गया। अचानक जो दब सोच रहे थे कि कविता पढ़ने कि कैसे मंजूर जाय। उन्होंने सभी कवियों की ओर प्रश्ननाचक दृष्टि से देखा। सभी के चेहरों पर उन्होंने 'नहीं-नहीं' लिखा पाया। कवि-सम्मेलन का सम्मान प्रोक्षित करने के आतिथ्य को कोई उपाय नहीं था। (अपनीय) हा। फिर मैं कह रहा -

सरसजी की कविता - चन्द्रमौल का आदा की बाँक आनिता वसो-प' कविता पर आज का कवि-सम्मेलन जो धरावर किया जाता है।"

यह कवि-सम्मेलन की सम्पूर्ण की प्रोक्षणा थी। लोग उठ उठ कर चले गये। मुख्य अतिथि गहोदय ने अच्छी कविता सुनाने के लिए मुझे बधाई दी और विभ्राम-गुह-वर्ण गए। मैं एक मित्र को धर रुका हुआ था, मैं उनके हाथ उनके धर की ओर-वर्ण दिया। हम लोग तड़क पर जा रहे थे कि मुझे आवाह हुआ कि हम लोगों के विलकुल पीछे पुलिस के कुछ आदमी-चल रहे हैं। पीछे मुड़ कर देखा तो पाया कि एक पुलिस-इन्स्पेक्टर को कुछ सिपाही हमारे पीछे थे। उन्हें आगे निवास जाने देने के लिए हम लोग रुक गए। हम रुका हुआ दो फील्डर पुलिस दल भी रुक गया। हम फिर-पलने लगे तो पुलिस-दल भी फिर-चलने लगा। आगे मैं पीछे मुड़ कर - पुलिस-इन्स्पेक्टर साहब से पूछा -- आपका हरावा क्या है?

पुलिस-इन्स्पेक्टर उत्तर था -  
"आपको हमारे साथ पुलिस-स्टेशन तक-बलना होगा।"  
"किस जुर्म में? मेरा प्रश्न था।"  
"आपने जगद और रिंता सड़ाने वाली कविता सुनाने के जुर्म में।"

मैं चलने मित्र के साथ पुलिस-स्टेशन-चला गया। पुलिस-इन्स्पेक्टर ने मेरे मित्र को आसन बिठा दिया और मुझे आवाह के-धर में ले जाकर मुझ पर वृत्त-वृत्त करता रहा। उसे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि मैं एक सामान्य मनुष्य-वत्तम में पैदा हुआ

“इ वास्तविक महाविद्यालय के प्राध्यापक होते हुए आपने इतनी  
लोपाति प्राप्त कर ली है। मुझे भी। आपका अपनी नौकरी का मोह नहीं  
है क्या? यदि आप प्राध्यापक नहीं होते तो मैं आपका आजीवन  
कर देता।”

इसके पश्चात् उस कुमिल इन्वेलप्टर ने भी सभी-से सम्बन्ध  
में जाकर अपने व्यास के इलाके लिए कि वह इन दोनों के  
व्यक्तियों का सम्बन्ध करके यह देवे कि मैंने-अपने विषय में उसे  
कुछ गलत तो नहीं बताया। कुछ ही मिनटों में। अपने हो-वर्ष  
दिया। अपने पहुँचने पर वह आपकी ओर कुछ मित्रों में-वर्षा भी।  
बात कई क्षणों तक पहुँची। जग-आन्दोलन उभड़ पड़ा। इन्हीं  
वर्षों के एक-दो-तीसरे में। लाइली मोहन मिश्र ने आप-सम्बन्ध  
में आपके साथ लिए गए कुर्बानियों का उल्लेख किया। मध्य प्रदेश  
-सिन्धु-समा में भी प्रश्न प्रस्तुत गया। उस समय पं० हार्मिल प्रसाद मिश्र  
मध्य प्रदेश के मुख्य-मंत्री थे। उन्होंने उचित कार्यवाही करने का  
आश्वासन देकर मामले को खाना किया।

इसी क्रिया ने एक और स्थान पर गुनगुना किया। मध्य प्रदेश  
के भादवा जिले के आदवा नामक स्थान पर भू-चला एवं प्रकाशन विभाग  
की ओर से एक आवेदनपत्र आरम्भ करवाया गया। मैंने  
उस आवेदनपत्र में कार्य-निर्देश आ। आदवा जाते हुए निम्नलिखित  
कार्य करित हो गई।

आदवा-जाने के लिए वह बी.एस. दास यात्रा करना लगे हैं। मैंने  
वहाँ में ही एक जगह पर रहा था। उस समय तक मेरा ‘चन्द्रशेखर आजाद’  
महाकाव्य छप-सुना था। उसकी कुछ प्रतियाँ मैं एक दोस्तों में बाँट  
कर इस उद्देश्य से ले जा रहा था कि बी.एस. दास की यात्रा में मैं इसे  
चन्द्रशेखर आजाद के श्रेष्ठ में बाँट दूँगा। आजाद की प्रतियों का  
बन्डल अच्छी तरह से छुपानी है बाँट कर बाँट कर उभार रखा गया था।  
यात्रा के दमकों के कारण बन्डल की छुतलियाँ मोह-ली-वर्ष से  
रगड़ जाती रहती थीं। वे कट गईं। बन्डल की छुतलियों एक-एक  
करके नीचे गिरने लगीं। किसी यात्री का ध्यान गया और  
उसने कहा कि कोई चालू नीचे गिर रही है। वह उसे रोका गया। (मैं)  
यात्री नीचे उतरा। मैंने देखा कि ‘चन्द्रशेखर आजाद’



गोपालराय को प्रीति का सड़क पर लड़ता हुई राजा मिली हुई को प्यार-  
-प्यार गाड़ी को प्यार चक्रे का गायन का कुच्छ सह-यात्रियों की सहयोग  
मे भेंट के मिली हुई प्रीति काटार की। जहाँ मे बैठका में सहयोग  
मे कहा -

"आपने सुना होगा कि-चन्द्रशेखर आज़ाद जी प्रतिज्ञा थी कि कोई मुझे जेलित गिरफ्तार नहीं कर सकेगा। आपने जीवन में तो आज़ाद ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की ही, पर उसके शहीद होने के पश्चात् उस पर जिन्हें गए महात्म्य ने भी आपनी प्रतिज्ञा पूरी करने दिया है। आप नामों लोग गवाह हैं कि आज़ाद का क्षेत्र आपके ही खंडाल में बंकी हुई प्रतियाँ जा-अपने काम कुत्ता लगाई थी। आज़ाद जी ~~किसी~~ <sup>उस</sup> ~~हिन्दी~~ <sup>हिन्दी</sup> ~~वला~~ <sup>वला</sup> ~~हुई~~ <sup>हुई</sup> ~~ले~~ <sup>ले</sup> ~~दुख~~ <sup>दुख</sup> ~~का~~ <sup>का</sup> ~~नी-~~ <sup>नी-</sup> ~~ला~~ <sup>ला</sup> ~~आगए~~ <sup>आगए</sup> ~~(कहा)~~ <sup>(कहा)</sup> ~~उं~~ <sup>उं</sup> ~~हुं~~ <sup>हुं</sup> ~~सा~~ <sup>सा</sup> ~~नो~~ <sup>नो</sup> ~~कामाल?~~ <sup>कामाल?"</sup>

आज मैं आपको यह बातें बता रहा हूँ। आप जान लें कि आज़ाद जी का क्षेत्र आपके ही खंडाल में बंकी हुई प्रतियाँ जा-अपने काम कुत्ता लगाई थी। आज़ाद जी ~~किसी~~ <sup>उस</sup> ~~हिन्दी~~ <sup>हिन्दी</sup> ~~वला~~ <sup>वला</sup> ~~हुई~~ <sup>हुई</sup> ~~ले~~ <sup>ले</sup> ~~दुख~~ <sup>दुख</sup> ~~का~~ <sup>का</sup> ~~नी-~~ <sup>नी-</sup> ~~ला~~ <sup>ला</sup> ~~आगए~~ <sup>आगए</sup> ~~(कहा)~~ <sup>(कहा)</sup> ~~उं~~ <sup>उं</sup> ~~हुं~~ <sup>हुं</sup> ~~सा~~ <sup>सा</sup> ~~नो~~ <sup>नो</sup> ~~कामाल?~~ <sup>कामाल?"</sup>

भाग्य का हार, दुःख का जो कमाल,  
 इतिवृत्तों का हृदय में जो तात्पर्य है स्वागत किया। प्रत्यक्ष  
 जो 'जगत्' काय - नरक प्रकाश (गंगाका)। वहाँ जो अन्तिम 'न'  
 म हृदय की एक-एक धति बरीद थी। मैंने महामाया की एक-एक धति  
 केवल एक-एक रूप में देखी। शरीरों के गमक में मैं हमेशा ही  
 'हारी' प्रकाश मानुष होता रहा हूँ।

जाने-सम्बन्धन वाली बात सोच रहा हूँ। आँदना में ~~क्या~~  
 जाने-सम्बन्धन प्रादुर्भाव हुआ। जल्दबाजी में जाने पर मैंने कही रचना  
 पढ़ी - 'चन्द्रशेखर का आकाशनी अँका काजीम वस्तुव्य'। वह शेर ने  
 चन्द्रशेखर का आकाशनी का आ। वह कविता वहाँ का पढ़ता है। अभी मैंने  
 वह कविता आनी ही पढ़ी थी कि पाता ही नहीं है सु-पता और प्रकाशन  
 आदिवासी जहाँ दया उसे और मेरे हाथ में है आदमी लीन-वर्तुल्य के उत्तमों  
 को। -

अतः यदि आप राह जाँवता पढ़ने में अपने संकल्पों को दूसरी व्यक्ति  
सिनेने के स्थान पर हैं व्यक्ति का सुगमता ज्यादा पसन्द करेंगे। राह  
आकर हैं अपने स्थान पर बैठ गया। कवि-सुमेधन का सुमेधन  
दीर राह प्रसिद्ध कवि श्री सुमेधन-वर्तुर्दी की कर रहे हैं। उन्होंने-



आखिरी घर की-काव्य लिखना उसे अपने पै। है चपकल और नगर-नगर भ्रम कर आखिरी और क्रान्तिकारी की गाथाओं की लोच करने के साथ-साथ अपनी पुस्तकों का वितरण करते रहना मेरी दृष्टि नज़ गड़ी थी। इन्हीं संदर्भ में एक बार मुझे गद्यप्रदेश के सुरेता नगर में जाना पड़ा। कई विद्यालयों में मेरा कविता-पाठ हो चुका था। एक दिन मैं एक विद्यालय के प्राचार्य महोदय के साथ बातचीत कर रहा था कि एक वरद्वारी लड़कन मुझे खोजते हुए वहाँ पहुँचें। उन्होंने कहा कि पहले तो मैं इस विद्यालय में आपका कविता-पाठ सुनने की अनुमति-चाहूँगा, फिर आपकी हज़ारों की प्रान पर-चाप कर अपना परिचय आपको दूँगा और आपकी साथ कुछ समय बिताऊँगा। मैंने उनसे कहा -

“इस विद्यालय में मैंने कविता-पाठ सुनने की अनुमति तो आप इस विद्यालय के प्राचार्य महोदय से लीजिए।”

प्राचार्य जी ने मेरी बात सुनकर कहा -

“ठाकुर साहब तो हमारे जगत् के सम्माननीय व्यक्ति हैं। यह विद्यालय भी इनकी का सम्मानिए। अपने ही विद्यालय में किसी की अनुमति की क्या आवश्यकता।”

प्राचार्य जी की इसकाफ़ को सुनकर तथा ठाकुर साहब की नेच-भूषा तथा उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को देखकर मैंने यह अनुमान लगाया कि मैं लड़कन से तो यहाँ के विद्यालय या कोई अन्य कौड़ी नार्थकता होने चाहिए। विद्यालय में मेरा कवितापाठ हुआ। ठाकुर साहब मेरे साथ थे - मेरे ~~हैं~~ हरने के स्थान पर पहुँच गए। पहले तो मैंने हम लोगों के लिए चाम का आदेश दिया और फिर ठाकुर साहब से वार्ते होने लगी। मेरे मन में उत्सुकता तो थी ही, मैंने कहा -

“ठाकुर साहब, पहले तो आप मुझे अपना घूरा परिचय दीजिए, फिर आगे वार्ते होंगी।”

ठाकुर साहब ने अपने निधम में बताते हुए कहा -

“जी, मैं इसी जिले के एक गाँव का निवासी हूँ। मेरा नाम ----- है। पहले मैं डाकें डाला करता था। जयप्रकाश नारायण जी की प्रेरणा से

समर्पण करने के पश्चात् अब आपने फैसले का इन्तजारे कर रखा  
हूँ। इस समय मैं सैरोल पर खड़ा हुआ हूँ और अगर मैं आपकी  
गाम की ओर मुन कर आगयी हों तो उदात्तित हुका हूँ।"

ठाकुर जहब का परिचय प्राप्त कर मैं चपानपूर्वक उनकी ओर  
देखने लगा। मुझे इस प्रकार उनकी ओर देखते हुए दीप का उलीने  
प्रश्न किया।

"महोदय यह जानकर कि मैं एक डाकू हूँ, आप डर तो नहीं  
माएँ?"

मेश उत्तर -

"जी नहीं मैं आप से दिलकुम नहीं डर हूँ। आपकी राजा के तो  
बन्दूक भी नहीं हैं और अगर होती तो भी डाकू लोग अकारण तो किसी  
की जान लेते नहीं मितें। मुझे तो आपकी विषय में जान और  
आपकी जानने की अकारण जाग्रत हो उठी है। यदि आप अनुमति  
दे तो मैं आपसे कुछ पूछूँ।"

मेश यह मन्त्र पुनः ठाकुर जहब ने कहा -

"आप मेरे विषय में जानने के लिए कुछ पूछना प्रारम्भ करें,  
असक पून अमेर २० वगैरे मैं आपकी आगमन और विभिन्न विद्यालयों  
में बिना पारिस्त्रमिक लिए चपले तक कविता पाठ करने के आपकी  
उद्देश्य के विषय में मैं स्वयं जानना चाहूँगा।"

मैंने बहुत संकोच से उन्हें बताया -

"ठाकुर जहब यह से आपकी विदित ही है कि हमारे देश में शहरीय  
और उनके परिवारों की ओर अपेक्षा हो रही है। कवि की मौलिक इन  
विषयों पर इतना ही नहीं लिखते, क्योंकि उनके लिखे हुए को प्रकाशक  
लोग व्यापक के तैयार नहीं हैं और प्रकाशक लोग इन पुस्तकों में अपना पैसा  
इतना ही नहीं पाते जितना वे चाहते हैं। अतः उन पुस्तकों को खरीदता नहीं है और वास्तव  
में कुछ ही इन पुस्तकों को इतना ही नहीं खरीदते क्योंकि लोगों को यह  
आनिन्दारिहों के अज्वाल चरित्र सामने आने से उन्हें चरित्र चयन से  
लगे हैं। इन्हीं सब बातों के सोचकर मैं स्वयं इन देशीयताओं को लिखता हूँ,  
अपने जीने में चपलाता हूँ और पुस्तकों के गढ़े बाँचे-बाँचे कर और अपने  
कविताओं पुनाया केवल लागत मूल्य में पुस्तकें बेचकर धानों में  
राष्ट्रीयता उत्पन्न करने का प्रयत्न करता हूँ। ईश्वर मैं अपने-अपने कविताओं  
आता हूँ, लेकिन मैं सोचता हूँ कि जब यह दोनों अपने प्राण दिते हैं तो  
मैं अगर कुछ कविताओं में भी हूँ, तो कोई वही बात नहीं होगी।"

मैंने यह काम सुनकर हाकुर लहब में जाके की 'हूँ' की ध्वनि की ओर बोले -

"यदि पहले आप ही परिचय हुआ होता तो हम लोग आपकी लिए बहुत कुछ कर सकते थे। अब तो व्यायोगरूप में आपको मेरी एक सेवा स्वीकार करनी ही होगी और वह यह कि जब तक आप यहाँ नगर में हैं, आपको प्रसक्तों को अपने अपने काम में करूँगा और आपको यहाँ के प्रजा का सारा पन्ना में उठाऊँगा और यहाँ भी बता दूँ कि मैं अपने इस प्रस्ताव को उत्तर में 'ना' नहीं चुनना चाहूँगा। अब कहिए, आपका क्या उत्तर है?"

मैंने उत्तर था -

"जब आप अपना पैराना मुझ पर लाद दी-धुने हैं और आप उत्तर में 'ना' नहीं चुनना चाहते तो मैं हूँ, किए देता हूँ, जोकिंग मैं यह हूँ, मजबूरी में कर रहा हूँ, यह भी आपको बता दूँ।"

मैंने उत्तर सुनकर हाकुर लहब प्रसन्न हुए। मैंने बोले -

"अब आप मेरे विषय में क्या सूचना चाहते हैं, पूछ सकते हैं।"

मैंने कहा -

"मैं आपको डाकु-जीवन के विषय में जानना चाहूँगा कि आप लोग किस जगहों के यहाँ डाको डाकने की योजना बनाते हैं और जो कुछ आपको भूट का माल मिलाता था, डाका कटपास किस तरह होता था?"

मैंने प्रश्न को सुनकर हाकुर लहब में कुछ धाज उत्तर सोचने के लिए लिए और मैंने बोले -

"पहली बात तो यह कि मैंने हमेशा ही दूसरे सरदारों के दल में एक सहायक के रूप में काम किया है। हम लोग सुभाव और सुनवारों दोषों और हमारा सरदार निर्णय लेता था। इतना अवश्य है कि हम लोग उन लोगों के घरों पर ही डाको डाकते थे जो सज्जन-लेश होकर भी भूट-नगौर, शोषण और अत्याचारों के बला का धन संग्रह करते हैं। वे लोग भी हमें डाकुओं से कम नहीं होते, जिन पर हम डाका डाकते थे। रही बात भूट हुए माल के कटपास की, तो मैं उदाहरण देकर आपको समझाऊँगा -

"मान लीजिए कि सरदार छह हज़ार दल में दस सरदार हुए और हमने डाका डाक कर एक लाख रुपए प्राप्त किए। इन एक लाख रुपयों में से आधा भाग अर्पित, बचाव हज़ार रुपए हमारा

सरदार अपने सामूहिक कोष में लिए अलग निशान भीता था। अब  
वंचे कोष पचास हजार रुपए, जो उसने बराबर-बराबर अतने भाग  
लिए जाते थे, जितने हम लोग लेते थे। मैंने बताया कि मान लीजिए  
जो हमारी संख्या दस हुई तो प्रत्येक सदस्य को पाँच-पाँच हजार  
रुपए मिलें। हमारा हरेक भी अपने लिए हमारे बराबर ही हिस्सा  
भीता था। अब रहा वह सामूहिक कोष जो भूट-से चान से संपत्ति  
हो आया ठीक-ठीक अलग रख दिया जाता था। उस कोष को  
संवर्धित करने का पूरा आदीकार हमारे हरेक को होता था। उसकोष  
में ही वह अच्छे से अच्छे हमियान खरीद कर हमको देता था,  
हमारी राय का पूरा बर्तन उठाता था और हमारी सुरक्षा के  
लिए जिन लोगों को देना होता था, वह उनी कोष से ले देता  
था। हम लोगों को तो जो अपना हिस्सा मिलता था, उसमें ही  
हमको एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ता था। उसे हम अपने  
परिवार वालों से भरण पोषण के लिए भंज दिया करते थे।

बाबू साहब ने बीच में टोक कर मेरे अगले प्रश्न दिया -  
“आपने कहा है कि आप लोगों को अपनी सुरक्षा के लिए भी  
निकी को कुछ देना पड़ता था। वह आप किसको देते थे?”  
मेरा यह प्रश्न सुनकर बाबू साहब ने मेरा हाथ दबाते हुए कहा -  
“बुद्धिमानों को आप इसका उत्तर हम से न पूछिए। यह तो  
जग-जगह बात है।”

मेरा अगला प्रश्न था -  
“जो सदस्य डाकू-बन्ध में भरते होता है, उसकी परिचायकों भी जाती  
हैं और यदि वह अपने लज्जा भंडे हमियान ले जाता है तो उसका क्या  
किया जाता है?”

उत्तरा उत्तरा था -  
“यदि सदस्य भरोसे मन्द हुआ और यदि पहले ही निकी को खून-बारिश  
पहुँचाता है तो उसकी कोई परिचाय नहीं भी जाती, अन्यथा उसे  
कहा जाता है कि अमुक-यानी को खून-बारिश देने के लिए अपनी  
योग्यता का प्रमाण दे और उसे रीत करना पड़ता है। यह प्रश्न उत्तर  
संघ हमियान लेने को, तो दल के लोग उस हमियान को परिचाय  
करते यदि कले काम को पाते तो सामूहिक कोष में उतारा जाता  
पुनः दिया जाता है और वह हमियान उसकी योग्यता से मिले

नहीं रहती । ११

— मैंने अपने गाँवों की शहरियों में न जाकर हाकु ताकत में एक छत-छतक मनोरंजन में लायकों में विषय में लिखा। उनके उत्तर में उन्होंने बताया —

“जो कि आप लोग फिल्मों में दोस्त करते हैं, हम लोग महापुरुषों की पुजारों का आयोजन नहीं करते। कभी-कभी कोई सदस्य सरकारी अनुमति से किसी नगर के सिनेमा हॉल में भेष बदल कर कोई फिल्म देख लेता है। देखते हैं लोगों में भी कुछ सदस्य मौत जाकर आ चुकते हैं। पुता कर एक-दूसरे का मनोरंजन कर लिया करते हैं। हम में तो कुछ लोगों को पुस्तकें पढ़ने का शौक भी था। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हम में तो कई लोगों ने ~~अपनी~~ <sup>आपनी</sup> लिखी हुई दण्डशेखर आज़ाद पर लिखी हुई पुस्तक पढ़ी है। मैंने तो यहाँ तक सुना है कि हमारे दूधरे दाल के बहुत बड़े सरदार लावनगीह जब बुलावते तब तब से सारे गाँव, तो उनके सिंगान में दण्डशेखर आज़ाद पर लिखी गई आपकी पुस्तक मिली थी। ११”

हालांकि हमारी यह बात सुन कर मैं नौक पड़ा कि शायदों पर लिखी गई मेरी पुस्तकें डालू लोग पढ़ने लगे हैं और विशेष रूप से दण्ड-सद्वत् लावनगीह ने पढ़ी है। अपनी ~~अपनी~~ याददाश्त को सुदृष्टि पर मुझे वह याद आ गई जब कुछ दिनों में मुझसे ही मेरी पुस्तकें खरीदी थीं। विवरण स्मरित वह यादना यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ : —

सन्-संवत् में याद नहीं है, सन अक्षय्य याद है कि एक बार मुरेना जिले के ही जयपुर परगने के बड़ौदा ग्राम (मुजराह बड़ौदा से मिल) में एक कवि-सम्मेलन के अंतर्गत मुझे बुलाया गया था। शायद जो कवि सम्मेलन हुआ। प्रचार का भी किया गया था और आपका भी कोई गाँव के व्यक्ति श्रोता के रूप में वहाँ पहुँचे थे। श्रोताओं की उत्तरी लाठी भीड़ वहाँ दोली गई।

जबकि मुझे जब मेरा प्रश्न आया तो मैंने बड़े जोश के साथ अपने दण्डशेखर आज़ाद महाकाव्य का एक अंश सुनाया। श्रोता समूह की ओर मुझे बहुत अच्छी वाद मिली। जब

मेरी कविता-पुस्तक (आप) होगया तो मैं अपने स्वामन पहुँच गया।  
मेरे लैहते ही एक इराज्य कोने से एक प्रोता में परमाइश की -

“आप राही कविता दुबारा सुनने की कृपा कीजिए।”  
उन्नी गह परमाइश सुन कर मुझे कुछ अरपरा जगा और  
- मैंने पुनः बड़े लोका परमाइश करने वाले सज्जन को सुना कर कहा -  
“सामान्यतः लोग और-और कविताएँ सुनने की परमाइश  
तो करते हैं, लेकिन मुझे हुई कविता को दुबारा सुनने की परमाइश  
कोई नहीं किया करता। आप स्पष्ट बताएँ कि यही कविता  
दुबारा सुनना चाहते हैं या कोई अन्य कविता।”

उत्तर आया -

“हम यही कविता दुबारा सुनना चाहते हैं।”

उन्ने यह आग्रह को सुनकर मैंने उन्हें समझाया -

“देखिए, एक बार सुनाई गई कविता को दुबारा उन्नी जोर-जोर  
से लय में नहीं सुना सकते। आप उन्नी को-पे-पे लिए दूसरे प्रोताओं  
को लय-अन्तर कर रहे हैं। मैंने कई कविता सुनने तैयार हैं,  
पर जो कविता अभी सुना-सुनाई, वह नहीं सुनाऊँगा।”

“हम यही कविता सुनकर रहे हैं।” आश्रित ने लड़े होना कहा।  
विवाद को बढता हुआ दोष कर संशोजक महोदय ने चारों से मेरे कान  
में कहा -

“अरे वही कविता सुना लीजिए। मुझे तो लगता है कि आपने  
वो प्रोताओं से कुछ डाँक भोगा है। हमारी खातिर उन्नी दिव्य मत  
कीजिए।”

सज्जित मेरी समझ में आगई। मैंने शहीदों की कविता की पक्ष-पक्षी  
पर वाद देते हुए वही कविता को सुना दी। मेरे दिव्य में संशोजक  
महोदय यह सूचना दे चुके थे कि कवि-सम्मेलन की समाप्ति पर  
जो लोग शहीदों की आजीवनियों पर किसे गई सराजी की  
सुझावें (बरीदना-चाहें, लोप सकते हैं।

कवि-सम्मेलन की समाप्ति पर अन्य जगह आकर लोगों ने मुझ  
सुझावें बरीदना प्रारम्भ कर दिया। मैंने देखा कि जिना कोने से



एक ही नरिता को दुबारा पुनर्जन्म की जरूरत नहीं, उसको  
को भोगों ने सर्वस्व खोने परीक्षा को चण्डालाचार्य  
गुरुदेव की तो मेरे पास एक भी प्रति नहीं बची। बाद में  
हैं सोचकर जीने मुझे बताया कि इस दुनिया में कर्मों में  
आपुनो को आजा की ईश्वरभाव के बात नहीं है क्योंकि इस  
दोष में तो निर्भय होकर विचरण किया करते हैं और पुनर्जन्म  
में तो उनका होता ही नहीं है।

श्री गुरुदेव की याद आते हैं जे इस निवेदन पर पहुंच कि  
उसी लक्ष्मी-लम्पे में आपुनो ने मेरी पुस्तकें खरीदी होंगी।

जिन ८६५ साहब का मैंने उल्लेख किया है, वे भी लाख  
तीन दिनों तक पुस्तकें के पीछे उठाते हुए घूमते फिरें और मो-  
हारा लक्ष्मी भी वे उठाते रहे। जब मुरेना छोड़कर मैंने उनसे  
विदा ली तो मेरा आश्चर्य कि वह टिकित भी उठीं न लिय और  
आपुनो ही दुर्जन एक निवेदन किया -

“आपसे यह सांगुसे निवेदन है कि क्या-क्या आप इस दोष-  
में आकर लम्पे में खूब करते रहे।”

मैंने भी आश्चर्य में लक्ष्मी में आने कहा -

“यदि मैं कुबारा इस दोष में आऊँ तो आप मुझे यही मोहों-  
या मिली-जंगल में।”

होते हुए उन्होंने उत्तर दिया -

“आप प्रकाश वाद और सुनवाराव जी का इतना गहरा प्रभाव मुझ  
पर पड़ा है कि कुबारा जंगल में आने की बात मैं सोच ही नहीं  
सकता।”

ठाकुर साहब हैं हुई इस सुभाषित की कई वर्ष चर्चा हो-चुके हैं  
और आपकी जीवनी ने मुझे इतना आकाशोपनिषत् कि याददाश्त  
तो मैं जवाब ही दे गई है। बहुत से जो देते हैं उन ८६५  
साहब का नाम याद नहीं आ रहा। इतना अवश्य लगता है कि  
खुंलार हमने आने वाले इस वर्ग में भी कुछ अच्छे संस्कार  
होते हैं और अच्छे व्यक्तियों का उन पर प्रभाव भी पड़ता है।

੧੨-੮ A ੧੩-੮ L

ਨਕਸ਼ਾ ਪੁਸਤਕ ਅੰਤ

ਗੁਰੂ

— ਵਾਸਤੇ ਪੁਸਤਕਾਂ

ਪੁਸਤਕਾਂ ਅਤੇ ਹੋਰ ਸਮਾਜ

ਸਮੇਤ



- मैं आगमों के बजार में । इस बजार में मेरे कई आगमों  
 मिले हैं, इस बजार में अपने अपने नामों से आगमों  
 को बुलाया । का कई विद्वानों ने मेरी कविताओं को  
 हुका और मेरी पुस्तकें खूब पढ़ी हैं । उनमें से  
 श्रीमती-शिव-महाविद्यालय में भी कविता-पाठ के  
 लिए मुझे आमंत्रित किया गया । वहाँ मैं एक आचार्य  
 श्री आगमोत्तरी (विद्यालय) में मुझे बहुत अच्छा  
 सहयोग दिया । महाविद्यालय के प्राध्यापकों में मेरी  
 कविता-पाठ हुका और मुझे बहुत सराहा गया । मैंने  
 दोष की शोताओं में एक छोटी-सी आवाज भी को जो  
 सारी सारी पर उद्यम-उद्यम-कर ला दे रही थी ।  
 पावे मेरे कविता पाठ समाप्त हो गया तो वह छोटी  
 आवाज मेरे पास आया और मुझे बोला -

" मैं एक छोटी-सी आवाज हूँ जो कौनों-  
 इन को डराने की कोशिश नहीं करती हूँ । आपकी  
 कविताएँ मुझे बहुत पान्द आई हैं । मैं मुझे विश्वास  
 है कि छोटी-सी आवाज आपकी कविताएँ पुनः उद्यम -  
 उद्यम पढ़ेंगे । मैं आपकी आवाज करता हूँ कि आप  
 मेरे साथ-साथ कर हमारी कंपनी की कोशिशों को  
 आपकी कविताएँ सुनाने की कृपा करें । "

मुझे हवादाँ मिलने को यह वक्तव्य बहुत अच्छा  
 लगा, लेकिन अपनी विवशता बताते हुए मैंने उनको  
 कहा -

" हवादाँ मिलने । आप लोगों को कविता  
 सुनाने हुए मुझे भी बहुत बुरी होती है । मैंने  
 मेरी कविताएँ आप लोगों को सिखाई हैं । मैंने गाई

हैं, लेकिन कुछ ऐसे इन बातों को हैं कि मैं आप  
को भी - वे बीना उपस्थित नहीं है। (कुछों) क्योंकि  
आज मेरे आजमेरे प्रवास को अन्तिम दिन है और  
आज पहली बार मैं यहाँ है। (इन्दा की ओर प्रयास  
कर पाऊँगा।) (कुछों) (कुछों) (कुछों) (कुछों) (कुछों) (कुछों)  
कैसे कम परिवर्तित हो नहीं कर सकता।"

मैंने कमल तुम्हें (कुछों) (कुछों) (कुछों) (कुछों) (कुछों)  
निराशा हुई। (उन्हें) निराशा करते हुए कुछ भी बहुत  
अपमान हुआ।

अगले दिन (इन्दा की ओर) जाने वाली ट्रेन पकड़ने  
के लिए मैं अपने स्टेशन पहुँचा तो टिकट (वगैरह)  
के लिए कुछ मैं नहीं बचा। मैंने देखा कि  
पूरे स्टेशन पर लोग के लोगों की चक्कर-पटल  
थी थी। उनकी लफड़े बता रही थी कि वे लोग  
किसी की खोज कर रहे हैं। मेरे पास ही कुछ मैं  
पता कि यहाँ को अन्तिम बार -

"ममता है कि ये किसी भी किसी पक्षिप्राणी  
आसुत की खोज में यहाँ आए हैं जो शायद ही  
पते वापस लौगा। (वैद) (कुछों) (कुछों) (कुछों) (कुछों)  
तमाशा देखने को मिलेगा।"

उस यहाँ के अन्तिम को समर्पित करते हुए मैं  
भी जाता -

मैंने किसी भी किसी पर उन पक्षिप्राणी (कुछों)  
को पकड़ा ही जाना-वाले की आँखों आँखों  
- अन्तिम भी होना चाहिए।"

- हम लोगों में इसी प्रकार भी बातें - (कुछों)

चनी भी बि. कुछ जोजियां की देजी बजारे हमारे  
बहु पर भी पड़ी। एक जोजियां ने दयाग में बंधु  
की ओर देवते हुए अपनी डोंगली उठा कर कहा -  
"वा है।"

जोजियां की भेड़ हमारे बंधु की तान अपनी की  
उत भागी ने मुझे पेल लिया। बंधु में बिड़े कि  
दयाग ने दयाग पुनर्क कहा -

"मियां कितना अच्छा नाटक कर रहे हैं और जिसके  
बुद्ध ही पाकिस्तानी जासूस। अब मजा आएगा  
आपकी इच्छा में देव कर।"

पाकिस्तानी जासूस को उल्लेख हुए कि मैं ही दयाग  
ने उल्लेखता है पुनः -

मेरे साथ कि पाकिस्तानी जासूस की बात कर रहे हैं  
नहीं कहें ?"

उत्तर दिया -

~~"नहीं नहीं तो जिनके अच्छे लोगों ने मेरे~~

"कर नहीं तो जिनकी तलाश आप भागी ने  
की थी जिसको आप भागी ने प्यार रखा है।"

हमारे ने स्पष्ट किया -

"हमें किसी पाकिस्तानी जासूस की तलाश नहीं  
थी। हमने जिनके प्यार रखा है, मैं को ई पाकिस्तानी  
जासूस नहीं हैं। मैं तो बहुत बड़े व्यक्ति हैं जिनके ने  
हिंदुस्तानी की जो वीरो पर बहुत अच्छी कर्मियां  
किए हैं। वजह मैंने गीजनल-कॉमेज में इनकी  
कर्मियां सुनी थीं कि इनके गिनेदन किया था

१० कि हम जोजियों को बीच पहुँच रहे हैं हम लोगों को  
 से अपनी कसि ताई सुनाई । इन्होंने अपनी कसि सुनी  
 देता कर काज देने है अपने की बात करो । हम लोग  
 रयास की तरफ कुछ ही इन्के पास अपनी कसि को  
 आप सुमाने जाए हैं ।"

हम लोग प्रिय की कसि से मेरे पक्ष में जो  
 कसि वाली, वरु रात भी कि लोगों की बात जालतफहसी  
 दूर होगई जो इन्होंने मुझे पाकिस्तानी जासूस  
 समझ लिया था । इन्होंने मैं वरु में पकड़े  
 आगे पहुँच गया था । मैंने अपना इन्की का  
 टिकेट बरीदा की जोजियों ने उत्तर देने दिया —

११ गाड़ी आने से आगे म-जिदा

११ गाड़ी चलने में अभी पड़लौ मिगिल भी देर है ।  
 जानिए हम जोजियों गाड़ी में आपका सामान रात  
 देते हैं जो लगी डिब्बे के सामने (नोटपार्स पर आप  
 हम लोगों से वे कसि ताई सुना दीजिए जो कसि  
 आपने रीजलत-कॉलेज में सुनाई थी ।"

अब तो सफ़र होने में मुझे कोई आसानी  
 नहीं थी । उन लोगों ने पहले ही लड़ी हुई सिंडका  
 अजमेर-खंडवा ट्रेन के एक डिब्बे में मोटा सामान  
 जमा दिया जो नोट-पार्स की कसि में जमा  
 लिखा । फल इतना था कि वे लोग बड़े-बड़े पैसे  
 कसि ताई सुनने वाले थे । यही जो प्र-वाटेन  
 की कसि ताई की रिता-समत में सामो मिले ।

उन दिनों मैं खुद-सब-जन्मी- को कविताएं लिख-  
 भी, जिन्हों में एक रचना साहित्यिक भी थी दूसरी  
 मात्र चुककरी थी जो अंग्रेजों के जलारेजान  
 लिए लिखी गई थी। इस दूसरी कविता की विशेषता  
 यह थी कि उसका हर पद एक छंद में छान  
 पर जादू जैसा प्रभाव उत्पन्न होता था जो  
 श्रोता को अचरम-उच्चम पहुँचा दे। जो कविताएं  
 मैंने लिखीं वे थीं —

(३)

### जवानो हिन्दू !

जवानो हिन्दू ! जो हर दिन कर जंग में तुम  
 हमारे देश का गौरव बढ़ाते अन्धा उल्लास है।  
 हमारे प्राई हुई संसार को आग-गंधा लौटाई  
 हमारे दुश्मनों का हौसला नया लड़वाया है।

दिखाया विश्व को तुमने, हमारे हड्डियाँ हैं वे-  
 कि जिन्हों शत्रु को संहार करने वज्र बजता है,  
 हमारा खून है सारा जल है जो बोलता है  
 कि यों जवाना मुझी को गर्जना तमका उफनता है।  
 मुनी लताकार दुर्बल को दिया तलवार उतर  
 -चमकती धार से अस्त्रों से जागी शान्ति की है,  
 पिपा लाया हनुका, पाक लाने पर रण का जो  
 रहे अस्त्रों जाका से तुमने बड़ी कीड़ी मिरा दी है।



गले में खुदा होने का जना होकरा जटवावहा  
 गिद्धा तुम है, वह ही क दुष्य अनादी माद काग है।  
 अजानो हिन्दू के, और दिवा कर जंग में अपने  
 हमारे देश का गौरव बहुत अना उहाया है।

बहुत ही शेर में दन में का का रहने का  
 दुहाये का ने उगा का बहुत ही निवन्ना है  
 अजर ही सोइ का रहने का, उहा दी दाहिने अना  
 गाना कर दुहाये में क्या रहे तुमने उहाया है।  
 अभी जो चाक जिहा की दाहा रहने का अना  
 अभी तुमने जिहा का दाहा की दाहा का उहाये है,  
 उहा का अना का दाहा की दाहा का उहाये है,  
 उहा की दाहा का दाहा की दाहा का उहाये है।  
 उहा का दाहा का दाहा का दाहा का उहाये है।  
 उहा का दाहा का दाहा का दाहा का उहाये है।  
 उहा का दाहा का दाहा का दाहा का उहाये है।  
 उहा का दाहा का दाहा का दाहा का उहाये है।  
 उहा का दाहा का दाहा का दाहा का उहाये है।  
 उहा का दाहा का दाहा का दाहा का उहाये है।

उम्हारे नेट, और जे दन - दाहा हागे निवन्ना  
 पटका कर पांव नाचे, और क्या दुहाये उहाये है,  
 पहन कर और की जो दाहा, गुराजि-दाहा तुम पर  
 निहा उहाये दाहा निहा, उहा में दाहा उहाये है।  
 दाहा का दाहा का, दाहा का दाहा का दाहा का  
 दाहा का दाहा का दाहा का दाहा का दाहा का  
 उम्हारे दाहा का दाहा का दाहा का दाहा का  
 दाहा का दाहा का दाहा का दाहा का दाहा का  
 दाहा का दाहा का दाहा का दाहा का दाहा का

तुम्हारे सामने फूटने दिया, मफाक भुका बाँटा  
विजय का पते यह निज देश को तुमने दिखाया है।  
जवानों हिन्द को, जो हर दिनाकर जंग में तुमने  
हमारे देश का गौरव बहुत अँचा उठाया है।

लकीरें लाल मोहनीं दिवा दीं (वींचकर ऐसी  
जै जित है विजय का भुगोल भी इतिहास भी बदला,  
बदल कर (योरियो, आज दुःख में निज पैतरे बदले  
जमाने की हवा बदली, चरा-काकाश भी बदला।  
सिसकती-सुबकती इंसानियत को पोंछ कर आँसू  
विजय की, मुताबिकी तुमने उसे मुस्कान दे डाली,  
जया ही राखी, तुमने राखद कुल को पंख दे डाला  
हमारे शौर्य की, तुमने नई पहचान दे डाली।

तुम्हारी नीरता को हो रहे - चर्चों जमाने में  
जिल निज कलुओं से विजय को तुमने लिखा है।  
जवानों हिन्द को, जो हर दिनाकर जंग में तुमने  
हमारे देश का गौरव बहुत अँचा उठाया है।

राहीदो ! इन तुम्हारी शान की लौगंध लाते हैं  
शहादत यह तुम्हारी, हम ज सदियों तक भुलाएंगे,  
भुलाएंगे हमारी पीढ़ियों में हम तुम्हें फिर-फिर  
तुम्हारी याद हम आविराग लौ लौ पर भुलाएंगे।  
तुम्हारा छून चारती को बनाते उर्वरक ऐसा  
जै 'आज बलिदान की फातमे' निरन्तर भुलाएंगे,  
ग्रहण कर भेंट प्राणों की, हमारे देश की लुशियों  
जै न छूतों ललेगी कोर जब दुःखों ललाएंगे।

शहादत को तुमहारी, हम मरण का हृदयों फुहारें, जब  
 जिनाया देश को हमने, जया जीवन जगाया है।  
 जमाने हिन्द के, जो हर दिना कर अंग में हमने  
 हमारे देश का गौरव बहुत उँचा उठाया है।

— — — १ — — —

(७)

गुल आया जग के र त्यौहार

— गुल आया १ — र त्यौहार ।

रेवारी का खुला हुआ गेहूँ हार ।

शत्रु को सुन बल को तालनार  
 मुद्रित हो की हमने सीकर  
 हुआ कल कल जलता अंगार  
 नौ गाँव सदी छुट्ट पुनार  
 हुई हुते जीवन की रफ्तार  
 कि बल्लभ दौड़ा सरपट मार  
 कि जीवन जपलों का आतार  
 गुहा पर जीवन बानिहार  
 प्रलय का बल करे पारोवार  
 रक्त को जगा उमड़ने प्यार

गुल आया जग के र त्यौहार ।

हमारे शोभित का पंगार ।

जो गता लंकार सगी सुनार  
शत्रु ने किया हिन्दु घरदार  
ये लो दन्ता-दन्ता है गार  
लान पर-पट्टी हुई भी-चार  
भयान से भयला पड़ी तनवार  
भगाई गता कर सौती भार  
शत्रु-सेना को-बड़ा ब्रुवार  
मन्य गया भीषण लालार  
हिल गई अन्यायी तरकार  
दिलेरी में पड़ गई दरार

शुद्ध आया बनकर ल्यौहार ।  
शुद्ध ही जीवन एक विचार ।  
शुद्ध आया बनकर ल्यौहार ।

देव कर हैंक दे त्यागार  
शूरमा लखित हुए अपार  
किए जग-जग कर लखन प्रार  
तोड़ कर बिरा अन्हें बेवार  
एक भेजा दिल्ली उपहार  
भगा दर्शन-दाम का दरवार  
हैंक का बहू ठेकेदार  
फिट गया आका सब त्यागार  
हुआ दिलकुल गन्दा बाजार  
चलित हो देव रहा संसार

शुद्ध आया बनकर ल्यौहार ।  
हमारे बल को आर न पार ।  
शुद्ध आया बनकर ल्यौहार ।

शर्व में शत्रु-जेट सराफार  
लगे करने जम में संचार  
हमारे जेट उठे, हुंकार  
तक़ारों से करने संचार  
कर दिया जेटों का संचार  
दिया निज गौरव का विस्तार  
हमारे वीर रुद्र अवतार  
गौतमी करते बरखाधार  
दवास्त कर दिए सैन्य-भंडार  
भंग कर दिए सिंहास दांडार

मुहब्बत आया बन कर लौहार ।

शत्रु-आरमानों का पतमार ।

मुहब्बत आया बन कर लौहार ।

जानों की हो जय-जयकार  
देशों को रो हृदय पहरदार  
हृदय में मातृभूमि का हमार  
वीरता में विद्युत काकार  
विश्व जन-मन पर हुंकार  
सुयश के लौंग नन्दनवार  
पहल कर ज्वालाओं के तार  
मृत्यु में किया अनन्त-आभिकार  
देश पर किया अकल्प उपकार  
अज्ञ कर जानों की दीनार

मुहब्बत आया बन कर लौहार ।

मुहब्बत आया बन कर लौहार ।

मुहब्बत आया बन कर लौहार ।

आज जरा ही अनुमान लगा सकते हैं कि जब  
सेना के अंगरक्षकों ने इसे खोजा तो मुन्ना होगा तो  
अन्या क्या होगा, हुन्ना होगा। हर सैनिक खुशी  
के मारे उछल-उछल पड़ता था और जो जब  
पद के अन्त में "सुख काया बन कर लौटार"  
पढ़ा जाता था तो वे सभी के हाथ एक साथ  
हाथ उठा कर चिन्ता पड़ते थे - "सुख काया  
बन कर लौटार।"

~~संरक्षण~~  
कविता-पाठ समाप्त होने पर सैनिकों ने  
मुन्ने बहुत आदर के साथ गाड़ी में बिठाया। एक  
पूरी बर्तन पर उन्होंने मेरा दोस्तर फैला दिया  
और सहायकों ने निवेदन दिया कि इन्हें  
गाते में कोई कष्ट न हो। कुछ अनाज  
दौड़-दौड़ गए तो फल-फूल और मिठाइयाँ  
खरीद आए और एक सुराही भरकर भी मेरे  
साथ रख दी।

मैं निश्चिंत हूँ कि यदि सुख में जानेवाले  
सैनिक-दलों को इसी प्रकार की नीर-मखनारों  
से अनुपेक्षित किया जाय तो निश्चित ही  
उनके हौसले बुलन्दी पर पहुँच सकते हैं।  
और देश के लिए वे बहुत कुछ कर सकते हैं।

मध्य प्रदेश में 'मिर्जापुर' को कहना पड़ा। मैं इसका अर्थ  
नहीं समझता था। यहाँ पहले कोई भी नहीं था।

### गानोपों की लाप-रानी

मध्य प्रदेश के पश्चिम-मिर्जापुर अंचल के सैंधवा नगर में  
मिर्जापुर में आसोजित था। व्यापार के कारण मैंने वहाँ पहुँचना अतीव  
कर दिया था। १९५१ साल की बैरागी वहाँ दोपहर तक पहुँच गए और टैक्सी  
आए। उन्होंने मुझे सैंधवा पहुँचने के लिए जो कुछ आवश्यक किया। सैंधवा  
पहुँचने के लिए मुझे कहाँ-कहाँ और किस समय वहाँ मिलेगी, यह सब  
कहकर उन्होंने मुझे छोड़ दिया। जब मैं टैक्सी का स्टैंड पर पहुँचा  
तो इधर जाने वाली बस मुझे अपने हाथों धूँटती दिखाई दी। बस-  
स्टैंड के टैक्सीमेन से मैंने 'गुंरी-गाँव' को सुनिश्चित किया कि इधर  
जाने वाली बस को रोककर रखा जाए, मैं टैक्सी से वहाँ पहुँच रहा हूँ।  
इस प्रकार 'गुंरी-गाँव' पर मैंने वह बस पकड़ ली और आसोजित  
होगा। मैं इधर पहुँचने पर सैंधवा जाने वाली बस मुझे मिल  
जाएगी। कुछ दिनों के बाद एक बार मारवाड़ियों के गाँवों और  
तैलों के रेवड़ इतने निकले कि जब मैं इधर बस-स्टैंड पहुँचा तो  
मुझे बताया गया कि सैंधवा जाने वाली बस अभी पंच मिनिट पहले  
ही धूँटी है। मैंने एक टैक्सी के वाले से कहा कि तुम उठ जाओ  
पीछा करो और जाओ जो वह बस मिलेगी, मैं तुम्हारा पूरा खर्चा  
पूरा दूँगा। टैक्सी वाला मुझे लेकर चला पड़ा। नगर के कुछ  
बाहर ही वह बस मुझे मिल गई। मैं समय पर सैंधवा पहुँचने  
के लिए पूर्ण रूप से आवश्यक हो गया।

मैं जिस बस में यात्रा कर रहा था, वह मध्य प्रदेश परिवहन-  
निगम की थी। उसने परिचालकों ने मुझे बताया कि यह बस तो  
सैंधवा नहीं जाएगी, पर यह आपको जुमलानिया पर छोड़  
देगी, जहाँ सैंधवा जाने वाली प्राइवेट बस इन्हीं स्वारियाँ  
लेकर ही जाती है। जब उस बस ने मुझे जुमलानिया पर  
उतरा तो मैंने देखा कि एक प्राइवेट बस वहाँ खड़ी थी। टैक्सी

काबू में मैंने सेंचवा को एक टिकिट देने में लिए कहा। आने  
को -  
"काबू साहब, आप वक्त में बैठ जाइए, वही आपका टिकिट  
मिल जाएगा।"

मैं वक्त में बैठ कर ~~आइए~~ आपका होगा कि कालीर मुझे  
सेंचवा जानेवाली वक्त मिलती गई। पूरी वक्त भर जाने पर वह  
चल गई। लगभग बीस किलोमीटर चलने को पसचात जब  
वक्त वक्त किरीटेशन पर रुकी तो मैंने परिचायक में पूछा कि  
यह वक्त सेंचवा किस समय तक पहुँच जाएगी। सेंचवा पहुँचने  
की बात सुनकर परिचायक मेरे मुँह की ताप देवने लगा  
और बोला -

"साहब, यह वक्त सेंचवा नहीं जा रही है, यह तो  
विरगोन जा रही है।"

अब उसके मुँह की ताप देवने की बारी मेरी थी। मैंने  
बहुत परेशान होकर उसे कहा -

"कहा यह वक्त सेंचवा नहीं जा रही थी तो आपने मुझे  
इसमें बैठने के लिए कहा कहा कि जब मैंने आपसे  
टिकिट माँगा तो आपने कहा कि टिकिट वक्त में ही  
दे देंगे। यदि आपने टिकिट दिया होता तो मैं पट्टा तो  
लेता कि आपने मुझे कहा कि टिकिट दिया है।"

उत्तर उत्तर -

"कहा आप तक किसी यात्री ने किसी कन्डक्टर की जिम्मा ट  
पड़ी है जो आप मेरी जिम्मा ट पट्टा लेते। कि आप का ही  
गए हैं तो या तो यहाँ उतर जाइए या खाली गे।"  
चाहिए।"

"कहा यहाँ उतर जाते पर जुगवाविया जाने के लिए  
मुझे कोई वक्त मिल जाएगा।"

"जी नहीं, किसी ताप की जाने के लिए यह कालीरी  
वक्त है।"

मैंने कदम अकड़ के साथ उससे कहा -



“दोस्त कन्डक्टर साहब, गलती आपकी है जो एक तो आपने मुझे मुझको टिकित नहीं दिया और दूसरी बात यह कि वक्त के समझे आपने यह नहीं मिल रहा कि यह वक्त क्यों जा रही है। आपकी गलती को इलाज यही है कि आप गाड़ी ज़ुलवानिया वापिस ले-वालिए। मैं वहाँ से किसी रूप द्वारा संचयन पहुँच जाऊँगा।”

मेरा यह प्रभाव मुझको कन्डक्टर भड़का कर बोला -

“आप कोई फाट पाएँ हैं, जो मैं आपके लिए बस वापिस ले जाऊँगा। इस गाड़ी में ये जो पचास सवारियाँ बैठी हैं क्या इतना समय बरबाद नहीं होगा? यह होगई है, इन लोगों को भी तो समय पर अपने छिकाने पर पहुँचना है।”

यद्यपि मुझे किसी अच्छे नतीजे की आशा नहीं थी, पर मैंने कन्डक्टर की बात को पकड़ते हुए कहा -

“अगर ये पचास सवारियाँ बस को लौटा कर ज़ुलवानिया तक ले जाने के लिए सहाय हो जाएँ, तब तो आप बस वापिस ले-वालींगे या नहीं?”

उत्तर आ -

“पचास सवारियों को बस को वापिस ले जाने के लिए राजी हो जाँय, यह मुमकिन ही नहीं है, आप इनसे पूछकर देख लीजिए।”

आशा की ओर एक दृष्टि किरण मुझे दिखाई दी। मैंने चतुरे पर उत्पन्न विनम्र भाव लाते हुए हाथ जोड़कर सारियों से कहा -

“मैं एक लक्ष्मी हूँ। मेरा नाम श्रीकृष्ण सरल है। एक लक्ष्मी-समीपन के लिए मुझे संचयन पहुँचना था। वहाँ एजेंटों लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मेरे ने पहुँचने पर वचन-भंग तो होगा ही, उन लोगों को कामकाज बिगाड़ भी सकता है। आप लोग यदि इसका जो ज़ुलवानिया तक लौटाने के लिए राजी हो जाँय तो मेरा और संचयन वालों का काम बत जाय। आप लोग यही समझ लीजिए कि किसी बरसी को छुड़ाने के लिए वह एक घण्टे तक नहीं रुकी रही।”

मेरा बकाना मुझको सवारियों में कुछ छुर-छुर-छुर आरंभ हुई। उनमें से एक बोला -

"क्या आप वही नहीं जानते हैं, जो शहीदों की आत्मियाँ पर  
कविताएँ लिखते हैं?"

"जी हाँ, ठीक वही।" मेरा उत्तर था।

उस रात मैं अपने कुछ तारियों में जाना फूँटती की की मुलाकात -  
"हम लोग आपकी इस प्रशंसा से बहुत ही सन्तुष्ट हैं कि इस  
मास गाड़ी को जुलवानिया कागज लौटाया जाय, लेकिन हमारी क्या  
शर्त है?"

"आपकी क्या शर्त है?" मैंने पूछा।

उसकी शर्त थी -

"वापिसी-यात्रा में जब तक यह बात जुलवानिया पहुँचे, आपकी  
पूरी समय हमें कविताएँ सुननी होंगी।"

उस लोगों की यह शर्त मैंने तुरन्त स्वीकार कर ली और  
कन्डक्टर से गाड़ी लौटाने के लिए कहा। कन्डक्टर परेशान कि क्या  
किया जाय। वह बोला -

"साहब, हमारे ही बात क्या, आज तक किसी भी भी बात उस  
मुकाफ पर नहीं लौटी, जहाँ से वह चली गई। हेरत तो यह है कि  
ये पचास तारियाँ आप की बात मान गई, जिसकी कतई उम्मीद  
नहीं थी। हमक से बात निबाल कर मैं कुछ ही दिन आया हूँ।  
-चालिए, वापिसी ही ली।"

कन्डक्टर ने इन्सुल को आदेश दिया कि गाड़ी वापिसी-यात्रा  
जुलवानिया के लिए चलेगी। रात में मैंने शहीदों पर  
लिखी गई फड़कती हुई कविताएँ सहयात्रियों को सुनाई।  
जुलवानिया पहुँचने पर उस तारियों ने अपनी गाड़ी उस  
समय तक वापिसी नहीं की, जब तक मुझे संध्याकाँ की ओर  
जाने वाले ट्रेक में बिठा नहीं दिया।

जब मैं संध्याकाँ पहुँचा तो कहीं-सम्मेलन प्रारम्भ हो चुका  
था। जहाँ हाकरसी कविता पढ़ रहे थे। उसकी कविता समाप्त  
हो जाने पर मैं संध्य पर उपस्थित लोग भाँति की बालकरी  
की भाँति को बताया कि मैं कौन परिचित हूँ। मैंने गुजर कर  
संध्याकाँ पहुँचा हूँ। कहीं-सम्मेलन का संध्याकाँ के विषय ही कर  
रहे थे। उन्होंने साइकल से प्योषित किया -

“ आप लोगों को यह जानकर हर्ष होगा कि सरलजी मंच पर उपासित होगए हैं । मैं उनसे अनुमति करता हूँ कि वे - कविता न पुनाकर वह कलानी पुनारुँ कि क्लिन परीक्षीयों में से गुजर कर वे सैन्यवा पहुँच सकें हैं । ”

मैंने बड़ी मन्त्रवैद्या भाषा में आप-कीती कह पुनारुँ । लोगों को बड़ा आनन्द आया । जब मैं आप-कीती पुनारुँ अपने स्थान पर बैठ गया तो श्री बालकवि बैरागी ने ताइके से प्रोषण की -

“ अभी तो सरलजी ने आप-कीती पुनारुँ है । इनसे कलितारुँ पुनारुँ तो अभी बानी है । कुछ समय पूर्व ही इनका भगताहिते , महाकाव्य प्रकाशित हुआ है । मैं आपको बताऊँ कि इनने पुल-त्रेप ताइज में इतने घृष्ट लिख डाले हैं कि हम लोग जीवन भर उनसे पोस्ट-कार्ड अपनी प्रेमिकाओं को नहीं लिख सकते । ”

उनसे इतक वचन को सुनकर समा-मण्डप में हँसी के लहकड़े गुँजने लगे । स्मिहिका लाभ उठाते हुए मैंने चुटकी ली -

“ मैं समझता हूँ कि आप लोगों में से कोई भी प्रेमी ऐसा सुख ली होगा, जो अपनी प्रेमिका को खुला पोस्टकार्ड लिखे । ”

भैरी हर चुटकी को सुनकर समा-मण्डप में हँसी को इतने जोर का बहका उठा कि बड़बड़े बाद शान्ति स्थापित हो सकी । जब लोगों ने जी भरकर हँस लिया तो बालकवि बैरागी ने ताइक पर प्रोषित किया -

“ आप लोगों ने देखा कि बीर रात को कवि कितना अच्छा हास्य उत्पन्न कर सकता है । मैं दादा सरलजी से अनुमति करता हूँ कि वे इस बीर में बीर रात की कविता न पुनाकर हास्य रात की कविता पुनारुँ क्योंकि वे हास्य रात भी कसेतारुँ भी लिखते हैं और वातावरण हास्य रात का बन गया है । ”

विवश होकर मुझे हास्य रात की कविता पुनानी पड़ी । मोहक शब्दों का वह और कहीं दूर शायी का बँडु भी बज रहा था । उसी की ओर लोगों का च्यान आकर्षित करते हुए मैंने एक चतुष्टयी को वाचना भाव्य-पाठ पारम्भ किया -

"असंकर बाद में क्या चिन्ता रह न पाएगा,  
न लड़की कापकी, लड़का हमारा रह न पाएगा।  
जिधर दोनो उधर दूल्हा, जिधर दोनो उधर दुल्हन -  
अरे, इस साम्य कोई भी कुँआरा रह न पाएगा।"

इस चतुष्टयी को सुनकर लोगों को सजा आगया। काका  
हाकाही ने भी जी जोल कर दाद दी। मैंने आज कहल प्रेम-  
क्रिया -

"सादियों के ऐसे ही सच में भी जो आगया कुँआरा रह जाये,  
यह भगवान से किह उरु लड़का-भगइता है, अनी गिले-चिलने  
की कविता में कापकी चुना रहा हूँ, (जिन्का शीर्षक है -  
मैं लौटा आमी कुँआरा हूँ।"

शीर्षक सुनकर ही लोगों को सजा आगया। कुछ लोगों ने  
पता देते अपने कुँआरे जिन्को को कोहलियाँ मार कर उनके साथ  
देइया दे दी। मैंने वह पूरी कविता पगते हुए छक्को दे की-प-  
चुना डाली। कविता इस प्रकार थी -  
मैं लौटा आमी कुँआरा हूँ

क्या सुनते हो भगवान कहीं  
मैं लौटा आमी कुँआरा हूँ।  
संगी-सानी फल-फूल रहे  
मैं ही निरमल का मारा हूँ।

ठेल गई उम्र इतनी मेरी, यह देर नहीं है तो क्या है ?  
शादी न एक भी हुई अरे, अंचेर नहीं है तो क्या है ?  
क्या बिगड़ेगा तेरा, मुझको शादी कोई दुलाहिन मिल जाए ?  
क्या बिगड़े तेरा, कमी-कमी यदि मेरे मनकी मिल जाए ?  
अब तो हर रूप मुझे पहचानता, हर चितवन मुझको ढगती है,  
हर भली शक्ल मुझको अपनी भावी पत्नी-सी लगती है।  
प्रतिदिन-प्रतिपल मुझको शादी की चिन्ता जाए जाती है,  
दुलाहिन तो दूर रही, शादी मुझसे शरमाए जाती है।

इस चिन्ता में ही सूख-सूख  
बनता जा रहा प्युहार हूँ।  
क्या सुनते हो भगवान कहीं

तुम तो गधूनीजी को लेकर करते होगे रोमांस कहीं,  
-शा बने कहेंया, राधा संग तुम करते होगे डांस कहीं।  
पर, जीत रही क्या डाचिल पर, इतना तुमको अंदाज नहीं,  
जो मैं परसों था, काल न रहा, जो काल था मैं वह आज नहीं।  
अन्याय तुम्हारा अब मुझसे, बिलकुल भी नहीं सहा जाता,  
रेह चुको कुँकारा इतने दिन, अब मुझसे नहीं रहा जाता।  
जागी चित्कर होगी तुम, जो काल तक न कालदार बने,  
क्या ब्रेड रहे हूँ सीधे स्वर, सारंगी और सितार बने।

यह मेरा ही दुभगिय  
अभी तक बना हुआ इकतारा हूँ।  
क्या सुनते हो भगवान कहीं  
मैं बैठा अभी कुँकारा हूँ।

वाइफ के बिना नहीं लाइफ, अनुभवी सभी यह कहते हैं,  
कोई दो, कोई तीन-तीन तक लिए साल में रहते हैं।  
भगवान बता तो दे, उनसे हूँ क्या रिश्तत में लेता हूँ?  
शादी पर शादी करने के उनको परसिट दे देता हूँ।  
आपराध किया है क्या मैंने, क्या तेरा कभी बिगाड़ा हूँ?  
जो मेरा घर ही ब्रह्मचर्य का अब तक बना आवाड़ा हूँ।  
मैं हूँ वह सुखी डाल, न जित पर कोई पंचली ललचाया,  
मच्छली न एक भी फाँसी, जाल में तो रुदैव ही फैलाया।

जिसको चारा न पेटा नहीं  
मैं प्यासा नहीं दिनारा हूँ।  
क्या सुनते हो भगवान कहीं  
मैं बैठा अभी कुँकारा हूँ।

घिर कर तो आई बहुत, किन्तु बरसी कोई भी पटा नहीं,  
क्वॉरेपन का बादल ऐसा छाया, जो अब तक हटा नहीं।  
आवश्यकता है गृहिणीकी, मे विरापन भी व्यपहार,  
पच्ची हैं-चलीं बहुत, अवसर इन्हें बूझ अगणित आए।  
हर बार नतीजा जिरांवा, हर इन्हें बूझ मैं फेल हुआ,  
बन गया तमाशा मैं जग को, किस्मत का ऐसा बिल हुआ।  
पुटमुट सन्यासी नहीं, ओर हूँ राखी नहीं मैंने दाढ़ी,

तुम तो नज़्मों की ओलकर कर रहे हो राधा की ओल,  
चा बने कहें या, राधा संग तुम कर रहे हो डोंग कहीं।  
पर, बीत रही क्या इतने दिनों पर, इतना तुमको अंदाज नहीं,  
जो मैं पराती था, कल न रहा, जो कल था मैं वह आज नहीं।  
अन्धाय तुम्हारा अब मुझसे, बिलकुल भी नहीं जुड़ा जाता,  
देह-पुष्पा कुँआरा इतने दिन, अब मुझसे नहीं रहा जाता।  
नामी चिन्कर हो गए तुम, जो कल तक तो कलदार बने,  
क्या बड़े बड़े हैं सीधे स्वर, सारंगी और सितार बने।

यह मेरा ही दुर्भाग्य

अभी तक बना हुआ इकतारा हूँ।

क्या सुनते हो भगवान कहीं

मैं बैठा अभी कुँआरा हूँ।

बाइल के बिना नहीं लाइल, अनुभवी तुम यह कहते हैं,  
कोई दो, कोई तीन-तीन तक लिए साथ में रहते हैं।  
भगवान बता तो दे, उससे तो क्या रिश्ता ले लेता हूँ?  
शायी पर शायी करने के उनको परमिट दे देता हूँ।  
आपराध किया है क्या मैंने, क्या तेरा काम बिगाड़ा है?  
जो मेरा घर ही बृहन्नर का अब तक बना आलड़ा है।  
मैं हूँ वह धूली डाल, नजिह पर कोई पंखी जल्लाया,  
मददली न एक भी जानी, जाल में तो रुदैव ही फैलाया।

जिसको चारा ने धुआ नहीं

मैं व्यास कही दिनारा हूँ।

क्या सुनते हो भगवान कहीं

मैं बैठा अभी कुँआरा हूँ।

घिर कर तो आई बहुत, चिन्तु बरसी कोई भी पटा नहीं,  
क्वॉरेपन का बादल ऐसा धराया, जो अब तक हटा नहीं।  
आवश्यकता है गृहिणीकी, ये विरापन भी व्यपहार,  
पच्चीहें-चलीं बहुत, अवसर इन्हें सब के अगणित आए।  
हर बार नतीजा जरिआ, हर इन्हें सब में फैल हुआ,  
बन गया तमाशा मैं जग को, किस्मत को ऐसा बेल हुआ।  
पुटपुट सन्यासी नहीं, ओर है राखी नहीं मैंने दादी,  
क्यों मुझको देरव बिचक जाती, मेरी होने वाली लादी।

तू दाव जितादे शादी का  
जितका तूदेव में हारा हूँ ।  
क्या सुनते हो भगवान कहीं  
में बैठा अभी कुँकारा हूँ

१५५

अब बन-ठन कर-चलता कोई मदमाता इल्लाता इल्ला,  
तो अपना दिल हो जाता है, जैसे कोई अल्लाता-दुल्ला ।  
अब चूम-चाब ले जाती है बारात किसीकी सजधज कर,  
मन करता, इल्ले को चक्का देकर आवे हूँ जोड़े पर ।  
कुलहिन जाती दिवनी हो मन करता, बारात सब उड़ जाए,  
कुलहिन की जेली, अपने प्यार के दरवाजे में मुड़ जाए ।  
सपनों में भी मुझको अपनी शादी होती दिवलाती है,  
परगला लो कुलहिन बढ़ती, बात नींद तभी खुग जाती है ।  
शादी की चिन्ता में पिन्चका  
में पंचर-ता गुब्बारा हूँ ।  
क्या सुनते हो भगवान कहीं  
में बैठा अभी कुँकारा हूँ ।

हे प्रभु! अब तो मेरी मुनने, कानों के बन्द दिखाड़ न कर,  
गठ-बल्लन जाली करवोंदे, अब चोरजल दिखाड़ न कर ।  
कुछ पर अपना प्यार है फिरभी लहलहा न लका में प्यारवाला,  
मेरी लिम्मात पर तो तूने, जड़ दिया उल्लिखत का ताला ।  
गोंद गंडे-ताकीज बहुत, की जलतर-मन्तर की माया,  
पर मेरे प्यार में का न लकी, लड़की क्या लड़की की दया ।  
अब यही एक कलियावा है, दिल में बस एक तमन्ना है,  
कोई बन्नी बन जाए तो, बैठा उच्चार यह बन्ना है ।

क्यों नहीं शर्माता सुनता तू ?  
क्यों समझ लिया नकारा हूँ ?  
क्या सुनते हो भगवान कहीं  
में बैठा अभी कुँकारा हूँ ।

वह शुभ दिन कब आएगा प्रभु, भारत सजेगी जब मेरी,  
 मैं दूला बन कुश होऊँगा, कब कृपा-दृष्टि होगी तेरी ?  
 लम्बे-लम्बे कर गए वर्ष, कब दिन भी मुश्किल से कटते,  
 भक गया जिन्दगी से मैं हूँ, शार्क-शार्क रहते-रहते ।  
 हे दीनबन्धु ! हे दयासिंधु ! मेरी जीवन-तरणी खे दे,  
 गोरी-काली दोटी-मोटी, ऐसी भी ले वैसी दे दे ।  
 मैं बड़े प्यार से रखूँगा, उसके मन को बहलाऊँगा,  
 सर-साजिश, चूतों पर पालिश करके गित विनय पुनछेंगा -

मैं जन्म-जन्म के लिए देवि ।

सैवक होगया तुम्हारा हूँ ।

क्या चुनते हो भगवान कहीं

मैं बैठा उभा कुँकारा हूँ ।

तुमने प्रह्लाद और ध्रुव को संकट में दिया सहारा है,  
 मेरी संकट में पड़ा हुआ पहलो तो भक्त दुखार है ।  
 तुम देते चरपर फड़-फड़, जिस पर प्रसन्न हो जाते हो,  
 क्यों नहीं एक मेरे प्यार में तुम अच्छे-सी टपकाते हो ?  
 तुम किसी-किसी को एम० एल० ए०, संसद, मंत्री-पद देते हो  
 पर मुझको पत्नी देने में क्यों हाथ खिंच तुम लेते हो ?  
 तो चुनलो तुम भी, मैं बनता कब आप्त को परकाजी हूँ,  
 मैं लिए कुँकारों की सेना, सत्याग्रह करने वाला हूँ ।

शादी करके ही मानूँगा

मैं भगा रहा यह प्यार हूँ ।

क्या चुनते हो भगवान कहीं

मैं बैठा उभा कुँकारा हूँ ।



शास्त्र तुम्हको डर होगा प्रभु, लज्जित अगर मेरी शायी,  
तो और उगति कर आनेगी मातृकी बढ़ती काजाली ।  
विश्वास दिलाता हूँ तुम्हको, बच्चा घर में तब आएगा,  
परिवार-निकेजन - आधिकारी का जब परमिट मिल जाएगा ।  
सुना घर गूँज उठे, कुलहिन दे दे पायल की रुनभुन-सी,  
रुनभुन-सी तेरे पास न ले, तो चल जाएगी कुनटुम-सी ।  
हर ऐरे-मैरे को तुने, सुन्दर पत्नी दे डाली है,  
तुम्हको दौली भी देने में, तू दिलाता कांशाली है ।

तू सब को देता काया, वस्त्र  
मैं तेरा नहीं दुलारा हूँ ?  
वदा चुनते हो भगवान कहीं  
मैं बैठा आमी कुंजारा हूँ ।

हे मेरी भावी शरणिये ! तुम होगी जाने किस घर में,  
आकर प्रस्थापित हो जाओ, प्रतिमा-सी मेरे अंतर में ।  
विश्वास दिलाता हूँ तुम्हको, मैं सेवक-धर्म निभाऊँगा,  
हैं जितने पत्नी-भक्त यहाँ, सब का नेता बन जाऊँगा ।  
दर्जनों लड़ियाँ नित नई, तुम पर न्यौंयावर कर दूँगा,  
बैठी-बैठी बातें रहना, रसगुल्लों से घर भर दूँगा ।  
तो आओ मेरे जीवन में, हे मेरे सपनों की रानी !  
भूगनयनी तुम्हको समझूँगा, चोहेतुम हो तिरपट-कानी ।

मत डरो, आदमी ही हूँ मैं  
मत समझो मैं अंगारा हूँ ।  
वदा चुनते हो भगवान कहीं  
मैं बैठा आमी कुंजारा हूँ ।

हास्य की प्रस्तुत रचना आपने पढ़ी। आपकी जगह होगा कि  
वास्तविक विषय होते हुए भी इसमें कमरबंद की अश्लीलता नहीं है।  
इसमें एक कुँआरे का सुख मनोविमान है जो इसी कारण यह रचना  
पिर-प्योन रहती है। मैं इसी प्रकार का हास्य लिखने का प्यारपाती  
रहा हूँ। हास्य की बात-चाल रही है तो एक जो सत्य कहना  
का उद्देश्य का एक कविता उद्घृत कर दें।  
दुनिया में बस तुम्हीं गये हो।

— दोस्तों नही, मैं किसी के शरीर पर प्रकाश के शब्दों का  
अपमान करने की भूल नहीं कर सकता। दुनिया में बस तुम्हीं गये हो।  
यह तो मेरी एक कविता का शीर्षक है, जिसे मुझे एक बार  
सिंहल में ज्ञान दिया था। पहला यह प्रकार है—

— मैं उन दिनों कवि-सम्मेलनों में हास्य-कविताएँ भी सुनाया  
करता था। स्व० पं० सायनलाल-सुतर्वेदीजी नगर बण्डा में कवि-सम्मेलन  
आयोजित था। जब कविता सुनाने का मेरा क्रम आया तो मास्के  
को हास्य पढ़े होकर मैंने कहा—

“कविता का शीर्षक है— ~~दुनिया में बस तुम्हीं गये हो~~”  
यह शीर्षक सुनकर सामने की पंक्ति में ~~मुझे~~ महानद के पहाड़े बैठे हुए  
एक सिन्हात सज्जन ने तपाक से बिड़े होकर विरोध प्रकट करते  
हुए कहा—

“आपने मेरी मजालों में मेरा अपमान किया है। आपने मेरी  
तरफ उँगली का इशारा करने लगा है— दुनिया में बस तुम्हीं गये हो।”  
मैंने विलम्बता से उत्तर दिया—

“प्रियान! किसी का अपमान करने का मेरा कोई शास्त्र नहीं  
था। यदि गंजली है मेरी उँगली आपकी ओर उठ गई हो तो शर्क  
लिए मैं आपके शरीर-शर्क हूँ।”

पुत्रिवादी सज्जन ने आगे धरमाया—

“देखिए, आपने एक कल्लेक्टर का अपमान किया है और उरी  
के नगर के हज्जों आगों के सामने। यह आपाधिकार है। केवल  
माझी माँगने से काम नहीं चलेगा।”

यह जानकर कि यह टिप्पणी तो इस नगर के कल्लेक्टर

निन्दना, मैं आता (नफरत) मैंने उनसे निवेदन किया -  
"आप कहते हैं कि केवल आपकी आँखों से काम नहीं चलेगा,  
तो निन्दना भी तुजको भी आप ही कीजिए।"

मेरा ध्यान धुन कर उन्होंने अपने पास बैठे सज्जन की ओर  
इंगित करते हुए कहा -

"जो सम्मान आपने मुझे दिया है, वही सम्मान आप मेरे पास  
बैठे डिप्टी-कमिश्नर महोदय को भी दीजिए, वही तो इनकी शिकायत  
होगी कि मुझे किसी काविल नहीं समझा गया।"

उसका यह ध्यान धुन कर समा में ठहरे हुए पड़े। कमिश्नर  
महोदय ने निन्दन का वातावरण तैयार कर दिया था जो अब वहाँ  
मेरी भी, लोगों का हँसाने की। जो कविता मैंने वहाँ पढ़ी थी,  
उसे यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ -

दुनिया में सब तुम्हीं गये हो

कैसे कितने लीचे-लच्चे हो तुम, जहाँ पड़े हो गए, पड़े हो।  
कोन गव्वा कहता है कोनो, दुनिया में सब तुम्हीं गये हो,  
काम परीश्रम का करने में, तुम सचमुच ही बहुत लचे हो।  
स्वामीभक्त हो तुम महान, तुम बहुत बड़े आराधारी हो,  
निर्निहार, निर्निहितदा तुम, स्मिसे-प्रसन्न बड़े भारी हो।  
हो अवतार-धरित्री तुम ही, जितना भावो, तुम लदे जाते,  
वही शिष्यायत-शिष्यैव करते, जान-बूझ भी नहीं हिमाते।

तुम सब की सब कुछ तुम लेते, नहीं किसी से तुम मागते हो।  
कितने लीचे-लच्चे हो तुम, जहाँ पड़े हो गए, पड़े हो।

सादा जीवन उच्च विचारों के सन्तुलन तुम ही धरीक हो,  
जैसे बने, रहे वैसे ही, तुम पत्थर पर सिंचे लोक हो।  
जैसे का पड़ती, अद्भुत सहस्र दिलला कर रहे तुम रहते हो,  
जब दोलो, गंभीर विचारों में ही तुम डूबे रहते हो।  
तुम एतकी हो, मिल सकता नहीं तुम्हारा कोई साथी,  
रंजना-लूना बिकर ही तुम की लेते हो छड़ा पानी।

आसानी हीरे हो, दुर्दिन वश किन्तु दूध में आज पड़े हो।

आप कहते हैं कि केवल आप ही आंगन में काम नहीं चलेगा,  
तो विकास की राजकीय भी आप ही कीजिए ।"

मेरा ध्यान पुनः कर उन्होंने अपने पास बैठे सज्जन की ओर  
इंगित करते हुए कहा -

"जो सम्मान आपने मुझे दिया है, वही सम्मान आप मेरे पास  
बैठे डिप्टी-कमिश्नर महोदय को भी दीजिए, नहीं तो इनको शिकायत  
होगी कि मुझे किसी काजिले वाली जगह मिला गया ।"

उसका यह ध्यान पुनः कर समा में कहने लगे पड़े । कमिश्नर  
महोदय ने निजोद का वातावरण तैयार कर दिया था जो अब वारी  
मेरी थी, लोगों को हँसाने की । जो कविता मैंने वहाँ पढ़ी थी,  
उसे यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ -

दुनिया में न तुम्हीं गये हो

कौन किताबें लीं-सच्चे हो तुम, जहाँ पड़े लोग, पड़े हो ।  
कौन गद्यावली है दोनो, दुनिया में वास्तविक गये हो,  
काम परिश्रम का करने में, तुम सचमुच ही बहुत लगे हो ।  
संगीत भक्त हो तुम महान, तुम बहुत बड़े शास्त्राचारी हो,  
निर्विकार, निर्मलित तुम, स्थिति-प्रज्ञा बड़े भारी हो ।  
हो अवतार चरित्र तुम ही, जितना लावे, तुम लद जाते,  
नहीं शिनायत-विश्वेकरते, ध्यान-पूँछ भी नहीं हिलाते ।  
तुम सब की सब कुछ पुनः लेते, नहीं किसी से तुम भगड़े हो ।  
किताबें लीं-सच्चे हो तुम, जहाँ पड़े लोग, पड़े हो ।

सादा जीवन उच्च विचारों के सचमुच तुम ही प्रतीक हो,  
जैसे वने, रहे वैसे ही, तुम पत्थर पर सिंचे लीक हो ।  
जो आपड़ी, अद्भुत साहस दिखाना कर रहे तुम रहते हो,  
जब दोनो, गंभीर विचारों में ही तुम डूबे रहते हो ।  
तुम संतोषी हो, मिल सकता नहीं दुस्ता कोई तानी,  
खोला-खोला बिकार ही तुम ही लेते हो छंटा पानी ।

आसानी हीरे हो, दुर्दिन वश किन्तु धूल में आप पड़े हो ।  
किताबें लीं-सच्चे हो तुम, जहाँ पड़े लोग, पड़े हो ।

कई भाग्यशाली ऐसे भी हैं, जहाँ तुम जीता पद पाते,  
 बगल कर रखकर कामी दुम्हारे, वे अपना सम्मान बढ़ाते।  
 संगीतदा कहते हैं जो, तुम भी हो क्या उगले कुच्छल ?  
 राग पुराना नहीं दुम्हारा, शत-प्रतिशत है मौलिक सरगम।  
 जब तुम गर्दभ-राग सुनाते, बड़े-बड़ों को चकाराते हो,  
 शौका नहीं तुमको फिल्मी का, सायद पक्का ही गाते हो।  
 जहाँ दुनिया में बड़े कहते, तुम उगले भी बहुत बड़े हो।  
 कितने सीधे-सच्चे हो तुम, जहाँ खड़े होगए, खड़े हो।

सावधान है दुनियावाले ! बुद्धि दुम्हारी चकाराएगी,  
 हैं कितने, उन सभी गायों पर जब मेरी भीति आएगी।  
 सब का वर्गीकरण करूँगा, होगा मौलिक विशद-विवेचन,  
 तब विश्व-विद्यालय मेरा ग्रन्थ व्यापारगा निर-दुलन।  
 प्यारे गायों प्रेरणा तुमने दी, मुझको यह चमक रहेगा,  
 मेरा और दुम्हारा, जगदी सचरों पर गुण-गान रहेगा।  
 तुम शायी सामान्य नहीं हो, इत-चरती पर रत्न नई हो।  
 कितने सीधे-सच्चे हो तुम, जहाँ खड़े होगए, खड़े हो।

'प्रवर' शब्द यह 'स्वर' में ही तो 'प्र' उपसर्ग जोड़ बन जाता,  
 प्रवर-बुद्धि स्वर-बुद्धि धृष्टक क्यों, यह अंतर मैं समझ न पाता।  
 मैं तो इतना बड़ू हूँ कि, तुम इन बातों से बहुत परे हो,  
 यह निष्कर्ष निकाला मैंने, प्रियपर तुम खर नहीं खड़े हो।  
 कबल समय, मैं गजबानको छोड़ तुम्हारा जान करूँगा,  
 पूँछ दुम्हारी पकड़, कठिन नेतरणी को मैं सहज तरूँगा।  
 हलके-फुलके दुश्मन होंगे, तुम हदैव भारी पलड़े हो।  
 कितने सीधे-सच्चे हो तुम, जहाँ खड़े होगए, खड़े हो।

नयेन-निमीलित, अर्ध-मूर्खी हो, जब तुम प्रेम-ताप करते हो,  
 लगता है ऊपर वाले का स्त्रियवर बहुत आदर करते हो।  
 संतों जैसा प्रीति, - दर्श तपस्वी-सम तुम में पाया जाता,  
 अन्तर्मुखी दार्शनिक जैसा-ध्यान लगाना तुमको आता।  
 अब तुम इतने बहु-गुण-भूषित, अब तुम सच्चिन्मय भुगकारी हो,  
 अब तुम औरों के सम्मान ही, यश-गौरव की आधीकारी हो।  
 होता है आश्चर्य मुझे फिर क्यों-कुनावतुम नहीं लड़े हो?  
 कितने ही धर्म-तन्त्रे हो तुम, जहाँ लड़े होगए, लड़े हो।

यही प्रार्थना करता हूँ मैं, तुम दिन-दूना आदर पाओ,  
 तिकड़म होगा अगर जा सकतै, समा-संसदों में भी जाओ।  
 गिराईये ही तुम पुज जाओगे, होगा शुभ-सम्मान तुम्हारा,  
 और सुकवियों के आधारों पर, होगा गौरव-गान तुम्हारा।  
 आभिलषण के लिए तुम्हारे, होंगे कई विशद आयोजन,  
 पत्र-पत्र हर-दुल पाओगे, होंगे तुम पर ग्रन्थ-समर्पण।  
 आधीकारी के हित आइ जाओ, क्यों-कब तक तुम नहीं आइ हो।  
 कितने ही धर्म-तन्त्रे हो तुम, जहाँ लड़े होगए, लड़े हो।

अब कोई कहता है; यह कितना भोला-कितना निश्चल है,  
 कितना ही धर्म-तन्त्रे है यह, सच्चिन्मय ही यह लपटों सरल है।  
 तब मैं यह सोचता हूँ, ये कि हैं पर्याय तुम्हारे,  
 तुममें-मुझमें क्या अंतर है? इहीलिए तुम मुझसे लपटें।  
 सहज भाव में कह सकत है, जो कुछ मेरे मन में काया,  
 तुम पर लिख कर कृपा नहीं कर, मैंने तो कहिये निभाया।  
 आज आदमी बिगड़ गया है, नहीं तनिक भी तुम बिगड़े हो।  
 कितने ही धर्म-तन्त्रे हो तुम, जहाँ लड़े होगए लड़े हो।

— ४ —

यह रचना भी जो मैंने उक्त कवि-सम्मेलन में पढ़ कर सुनाई।  
 मुझे आद है लोगों को हँसने के पर्याप्त अवसर तो मिले ही,  
 उन्हें अच्छे स्थलों पर दाद देने के भी पर्याप्त अवसर मिले।



काँची-सम्मेलन की समिति पर उन कल्लेक्टर महोदय ने  
कविता को कल्पने के गले पर सुबह की-पाय का निमंत्रण दे दिया।  
मुझे आद कागस, उन कल्लेक्टर महोदय को रात १२ी भाव को।

जब हम लोग आगामी सुबह कल्लेक्टर की भाव के गले पर  
पहुँचे तो गुरु शक्ति के काँची-सम्मेलन पर दीक्षा-दिपिका होती रही।  
मैंने उनसे पूछा -

“ गुरु शक्ति के गुरु वामी कविता को शीर्षक बताते हुए जो  
आपको आगामी सुबह, उम्मीद लिए मैं पुनः दीक्षा-प्राप्ति हूँ।”

उन्होंने मेरा हाथ दबाते हुए कहा -

“जहाँ-जहाँ, ऐसी कोई बात नहीं, मैंने तो इसकी काँची-कविता  
अनेक वातावरण निर्माण करने की इच्छा है ही विनोद की कविता  
उत्पन्न की थी। हम लोगों के जीवन में तो ऐसे भी अनेक  
आते हैं जब सचमुच ही गुरु शक्तियों को भी हम लोग  
हैं कर अनेक लेते हैं।”

इस संदर्भ में उन्होंने एक आप-कीही पत्रना कर फुराई। गुरु शक्ति

हम लोग एक गाँव-ने दोरे पर गए हुए थे। जंगल में मैं जहाँ-जहाँ  
तेरे हाथ एक डिप्ली-कल्लेक्टर, तहसीलदार और बी-डी-ओ की थी। वहीं  
दिना थे। जहाँ से जाने की वहाँ थी। चने के दलें देते कर उन्हें फुराने  
के लिए जी आसक्त गया। हम लोग जीप से नीचे उतर कर दोरे के  
पुस्तक लिखा कि कोई बिस्व का राजवाला है तो उसे पैसे के लिए या आर्थिक  
आक्रमण लेकर चने के कुच्छ भाड़ अखाड़े जाँय। हमें कोई राजवाला  
दिखाई नहीं दिया। हम लोगों ने कोई-कोई भाड़ उजाड़ने के चने  
फुराना आरम्भ कर दिया। इतने में ही हम लोगों ने देखा कि बिस्व की  
इसरी सेक पर एक भाड़ी में से बिस्व का राजवाला निश्चिन्त को  
गालियों की बौद्धिक धलड़ता हुआ हमारी ओर आया। हमने ही  
तहसीलदार सहित भी आपका को आँकी को गए और उसे निम्न  
- कि कल्लेक्टर जो डिप्ली-कल्लेक्टर (जिस को बी-डी-ओ (राज-कोर  
तहसीलदार) सहित दोरे पर आए हैं और हैं जो हम बिस्व  
- गालियों फुरा रहे हैं। वह राजवाला कल्लेक्टर सहित दोरे पर



महामाया महान को जाना भई साधने साधन की लक्ष्मी जोड़ने कहते  
महामाया

कुछ देर के बाद जाने से कुछ देर गलती हो गई थी मैं कुछ देर जा  
महामाया । मुझे पता नहीं था इतने बड़े बड़े भोगों में मैं  
आएँ । अब क्या लोग जितने भाव उपायों-मार्गों, अंतर्  
मीशिए, लेकिन आप ही मेरी यह प्रार्थना है कि आप इस भेद की  
व्यक्ति, अब मैं ही जिन्होंने भाव में अंतर्मीशिए ।

हम लोगों ने उपवास नष्ट किया कि इस भेद को खोजें नहीं  
आइए, तो जाना उत्तर यह —

इस भेद पर बैठकर मैं खेत की रावानी को जान करती हूँ यदि  
यह भेद उल्टे हुए पाए गए तो मेरा मानिक मुझे डाँटेगा और कहेंगे  
कि यहाँ तो भेद है कि जो रातों-रात कभी आवेगा ।

मैंने उस रावानी ने पूछा कि खेत की दूसरी भेद है - याने  
अब इस दोष को मेरा मानिक मुझे कुछ नहीं कहेंगे कि मेरे  
इस प्रश्न को जानें लया है उत्तर दिया —

कुछ देर, यदि खेत की दूसरी भेद है - याने अल्टे दोष को मेरा  
मानिक मुझे डाँटेगा तो मैं उनसे कह दूँगा कि रात को खेत  
पूकर काए लेंगे और उन्हें न जाने अल्टे लेंगे ।

खेत को रावानी हों लोगों को मुहल ही हों । जाना !  
और 'पूकर' की जानियाँ देखकर और हों लोगों को जान हों लोगों  
जानिकों और भेद नारा नहीं था ॥

तो प्रियजन, अब कोई सवारी ~~कुछ~~ अल्टे कुल नहीं, एक  
अपनी कहानी, कल्पित ही जानी की जो आपने पढ़ी और वह मोहा  
और मेरे कि मैंने कम लक्ष्य करिताई मोती की हैं । सत्य बात तो  
यह है कि लक्ष्य करिताई निजना और सुनना अल्टे कर मैंने जान  
आपने पैर पर कुल्हाड़ी मारी है कभी कि कवि-लक्ष्यजनों में लक्ष्य की  
कविताओं की ही कविता दयावाना - जाता है और निजनिज लक्ष्यप्रयोग भी  
उन्हीं की दिया जाता है । मैंने यह निष्कर्ष नहीं किया है कि  
अब मैं लक्ष्य करिताई ही सुनाऊँगा । सत्य बात तो यह है -

कि चौरा और बलिदान की बातें निज ही रहने को मारण  
लक्ष्य-लक्ष्य ही लक्ष्य ही

“फुल्लूर, आदि खेतकी दूसरी पैदाईसो चले आउते होवेकर पुरा  
जातोंका मुक्तो डोटगा सो मैं उससे कहूँगा कि रातको सोने  
पुकर जाए सोने की। उन्होने चले आउते हैं।

तो प्रीति, यह कोई आवली ~~नहीं~~ सुटकुटा नहीं, एक  
आली कदली, कल्ले-इसी आवली को जो आवली में ही को वर भी हा  
प्राप्त में कि मैंने कभी हाथ नवितारें मोलिली हैं। अन्य बात तो  
यह है कि हाथ नवितारें मिलान को सुनाता दूँ इकर मैं। क्या  
'व्यंग्य' है पर कुल्हाड़ी मारी है क्यों कि नवि-नमेलन में हाथ को  
कविता को ही आवली के दूनाया जाता है को। (नवि-नमेलन, भी  
उन्हीं को दिया जाता है। मैंने यह कि-नमेलन नहीं किया है कि  
मैंने मैं हाथ नवितारें नहीं सुनाऊंगा। अन्य बात तो यह है -  
कि वीरता को नवितारन की करते मिलते रहते तो नवितार  
हाथ-नमेलन को ओर में मेरा मन उच्चर गया है। यद्यपि  
'आली' में व्यंग्य नवितारें मिलता है को वे को वदत

तीर्थ । मैं वंश का हूँ भी सैवड़ी लिख जाती हूँ, लेकिन यों  
मैंने केवल एक उदाहरण ही प्रस्तुत करूँगा —  
५० ना रहेगा जोंग, ना बजेगी साँझी

उल्लू इसलिये कुरे नहीं कि वे मजदूर हो रहे हैं  
वै इसलिये कुरे हैं

तभी  
और लाद धोड़ जाते हैं

और  
उनकी बदती हुई कोरों और लाद

काशों को नीचे धराती हुई

आपसी की मोजिम पर

रुत रुत हवी हो जाती है

पैसा बालिकाओं के हाथ पर अनायास की कामर-बेलन ।

प्रगतिशीलता की हवा में पलकें हवा

अनायास के उल्लू अब उल्लू नहीं

वै उल्लू मजदूर हो गये हैं

मजदूरों की

— मैं अपने वंश को निराला की योजनाएं

वै पैरों में पैरों पराक्रम की

आपसी की कोरों पर लिखा करवताते हैं ।

मैं, सुरक्षा के साधन

मुझे वै अनायास कहेंगे

अब अनायास को मुँह में चीरने

वाणी की बौद्धर लोड़ते हैं

तो

गा हो उनकी सत्यवादी लिखा पर

सोने की कील जड़ की जाती है

गा

आपसी के — चमचे — चमचादड़

लेखकार कर करते हैं —

— चुप रहो !

बन्द करो अपनी अमान-दराजी

मेरे दोस्तों की इस सहायता से  
पुस्तकें बाँटने के लिये हैं -  
और हाँ

काम क्रम कर चुकता  
मुझको दो इस चमन की राखवाली  
जब आती नहीं -  
तब बस करेगी -

और राख पहलू के  
रखने का पसीने से सी-सी गड  
इस मेरे नैशर-वर्गी को कोई रेंद कर राख दे  
हम स्वयं ही इसे-चार भाँगे  
इसे बोरान कर देंगे  
क्योंकि  
न रहेगा बाँट न बजेगी बाँटुरी ।"

इस पुस्तक की व्यवस्था-रचना को मैंने बहुत ही रच्यगई

समझाने के लिये मैंने जो कारण दिये हैं वे सच भी नहीं हैं।  
हैं। विद्यार्थी-जीवन में जब मैंने काल-भोजन प्रारम्भ की किये  
थे, मेरी दो कविताओं ने बहुत धुम मचाई थी, लेकिन दुर्भाग्यवश  
वे दोनों रच्यगई हो चुके हैं। अतः निम्नीय विवरण इस पुस्तक है -

(1) एक कविता की प्रथम पंक्ति थी -

"मोहन कभी आज नहीं आता तुम पाठ पाठ को पढ़ा रहे हो?"  
इस कविता द्वारा मोहन कवि मोहनदास करमचन्द गाँधी हैं कहे गये  
था कि तुम अपने गुरु के पाठों के अन्तर्गत को कहेंगे तो पाठ पढ़ो -  
पढ़ा रहे हो, जब कि मैं आपका गुरु के मोहन ने अपने आपको माँडीव  
उठा कर उन्हें शत्रु (हो) के लिए उचित किया था। इस कविता को  
मोहनदास ने गाँधीजी से कहा था कि आपका गुरु का नाम मोहनदास  
करमचन्द (जवाहर) को प्रतिष्ठित करने के लिए है। गुरु के  
मातृसिद्धि-पुत्र-रचयिता की एक लक्ष्य (पुण्य) की उद्देश्य कर  
रहे हो, जिन्होंने अपना देश के गुरुओं को (हो) करने को कहा है।

(2) दूसरी कविता की प्रथम पंक्ति थी -

"बना वह चित्र आज तक नहीं"

इस कविता द्वारा एक चित्रकर्ता को प्रेरणा दी गई थी कि वह सात रंग

मुझे दात प्रेम-गीतों की भी

— ये भक्ति गीत भक्ति का है। इसकी भावना भक्ति है। हर प्रेम यह  
 भक्ति है। इसी से गीत भक्ति का है। यह भक्ति का है।  
 भक्ति गीत का भाव भक्ति का है। भक्ति गीत का भाव भक्ति का है।  
 भक्ति गीत का भाव भक्ति का है। भक्ति गीत का भाव भक्ति का है।

जगती जव-जीवन प्राप्त करता है, (सबसे बड़े शास्त्र) भद्र-भाता है (जगत्की भाव)  
की प्रभुता प्रकृता है (अर्थात् अर्थ) उन्नी की अन्त से है कि अग्नि,  
एतादृश और सदा की प्रभुता निवाह से श्वेत-राम-रतनार और  
चिर-मरत-मुक्त-मुक्त परत में भी दिया गया है । जिम्मे-मरत-  
मुक्त-मुक्त परत में अन्तर्गुणा का तो दर्शन भी लक्ष्मीय है ।  
हा दोहे की ऊपर की उतरने का प्रयास मैंने अपने गीत को  
इसरे पद में उसी प्रकार प्रम-निर्वाह और अन्तर्गुणा को हाँकी-  
साधन किया है । प्राप्ति-भावना को कावे लेने के नाते औलो की  
सार्थियों में प्राप्ति का समावेश भी किया है । जैसे प्रकृत है —

(17)  
तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन

तुम्हारे प्यारे प्यारे नयन, और नयनों में नयारे नयन ।  
तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन ।

भरान, जैसे ये स्नान विमान,  
नयन, जैसे अमोघ वरदान,  
मिला जादू का इहे प्रभाव, हुए नयन ने कजारे नयन ।  
तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन ।

खुनें तो दिया, बन्द हो रत,  
विरह में तपे, अरुण जन्मगत,  
शांति-विश्रान्ति-प्राप्ति की रूप, चवक-रयागल-रतनारे नयन ।  
तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन ।

मिले लीचा तो लीचा वार,  
चले तिरकर, तो लीखन वार,  
मुक्त तो गीली गीली वार, लड़े तीखे अग्नियारे नयन ।  
तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन ।

प्रीति तो इतनी बड़ी लहोर,  
 बौर इनाका देता भवभोर,  
 आमाने मर में इनाका शोर, तिलुंगर भी बेचारे नयन।  
 तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन।

तुम्हारे नयनों में आकाश,  
 चंद-सूरज का कुश प्रकाश,  
 किसी को आकाशों के दीप, किसी आँसू के तारे नयन।  
 तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन।

— + —

(२)

तुम्हारी कमल-लता-सी देह

तुम्हारी कमल-लता-सी देह की जीत वह पद की चढ़ी।  
 तुम्हारी वह पहली ही चरण, बहुत गहरी मानस पर पड़ी।

तुम्हें देना, देना अमृता,  
 की जैसे देना दिव्य उजास,  
 तुम्हें देना तो ऐसा मग्न।

प्यार का पद डागना इतिहास।

तुम्हारी प्रिय चरबि उर के मध्य, जिनसे जीती आकार पड़ी।  
 तुम्हारी कमल-लता सी देह, की जैसे वह पद की चढ़ी।

रूप, समोरुन का पथक,  
 रंग जो देवे, गहरी अथाय,  
 रूप, जैसे वह चढ़ता गथा-  
 रंग, जिहवा की उर उजास।

तुम्हारे इसी रूप की मोंत, बहुत गहरी अन्तर में गड़ी।  
 तुम्हारी कमल लता सी देह की जैसे वह पद की चढ़ी।

तुम्हारी हाथी - फुलान घाँघि, तुम्हारी गालना सुख-भुगत-बाड़ी।  
 तुम्हारी कजक-गाल-सी देह, कि जी में बह जावू नी ५२ डी।

तुम्हारी फुल्लो नो (चुम्बु) रंका लोह-लोहा बड़ी लो बड़ी ।  
 तुम्हारी ललन-लला-ली देहू कि जेने बहू जादू की बड़ी ।

नेहरू ग्राम पार. आशी और विद्रोहकार

मैं - तुम्हारी - न पता - आ जाते - लालकारा हैं । १९

कोर शी पुनः भगवति नमः—



सारासा ही रहे अन्धारा क्यों-कुलचाप सहते हवा ?  
हमारी भावनाएँ क्यों नहीं बारूद बनती हैं ?  
कालेजा लीर दे उनका, हमारा खून जो पीते  
हैं क्यों बीसगलारें आज हो! सिंह बनती हैं ?”

इसी प्रकार का जीवन मेरी प्रकृति में अनुकूल रहा है। ऐसे जीवन  
के लिए कोई भी सुलभ-युक्ताने के लिए मैं हमेशा तैयार रहूँ और  
इसमें मैंने युक्ताना भी है, लेकिन कोई-कुनैती मेरी कल्पनाओं की  
-कार को कुण्ठित नहीं कर पाती है। एक गहना दे रहा हूँ—

मेरी बहुत-कमिने रचना 'मान्यश्रीवर का प्रसाद' की मैं का  
'आज का वृत्त' मेरे लिए मुक्ति का कारण बनी, लेकिन लोगों के  
परामर्श पर मैंने उसे छुटाना नहीं छोड़ा। मेरे एक साहित्यिक  
मित्र एक मंत्री जी के मुँह पर हुए थे। उन्होंने मुझ से कहा—

“सिन्हा! आपका मेरी नौका सिन्हा है कि क्या इसे खाना को  
‘पुष्पांगी’ बन्द कर दें। यदि यह रचना बड़े कानों में पड़ी तो आप  
मुक्ति में पड़ सकते हैं।”

मेरा विनम्र उत्तर था—

“आपका इस नौका बंधन के लिए बहुत बहुत धन्यवाद। किसी  
कारण अब हमारी और लोगों की मैं आपका बताना चाहूँगा कि आपकी  
सिन्हा पर मैंने कितना आनंद किया है।”

अगली बार जब हम दोनों की भेंट हुई तो उसी नौका-सिन्हा को  
उत्तर में मैंने एक नई कविता उन्हें प्रसादी। वह कविता थी—

### कालम की कुनैती

बया कहा, बसों में मेरी अब, निजामी हवाएँ चमकती हैं,  
बया कहा, मेरुनी में मेरी अब नियतगारियों निजामी हैं ?  
बया कहा, किसी के भय में मैं पफना हूँ इसकी हलचल का ?  
बया कहा, बना हूँ मरघट में बनाव के जीवित अन्तस्तल का ?

बया कहा, चार कुण्ठित कर कर दें मैं नाजी की तलवारों की ?  
बया कहा, राधा की पत्नी हो हँवा हूँ ज्वाला अंगारों की ?  
बया कहा, अवाणी का पानों का गला थोड़ा हलका कर दें ?  
लौरीयाँ - बड़े, शक्ति चलाते मैं ताशी काम काही चार दें ?

कहा आपने आकाशों में, यह सच तब हो जाएगा,  
जब मेरे अंतर का सक्रिय विद्रोही काँवे भर जाएगा।  
आकाश का अंधाड़ व्यवस्था में विवश नहीं रह पाएगा,  
भीतक कह जाए मल, तब तो गंगा ही न काँवे भुना जाएगा।

यह जलम प्रतिहा चरती है, लक्ष्मण चन्द्रनरसिंही,  
यह जलम उठाती है गंगा अब भूषण की तरुणाई में।  
अन्याओं के लोड़ हज्जाये लेंगे शब्द तुझानों में,  
सिंहास पुराजित भर देगी यह जीवन के आरमानों में।

यह राज महल के सपनों के, भोंपड़े में लें आएगी  
यह जलम, पानी के गंगा भुना है कानून, पुलाएगी।  
रोके जो शाकी सेव। लेंगे, यह जलम उठी है - मल्लों के,  
शब्दों विद्रोही गाने काकुल, अन्यायी शोच भुनाएगी के।

तो तुम, न मैं गङ्गाता का उचलने चारों ओर कहतूँ,  
आपने चरती पर लीलाए तुम, न वज्र सत्य में कहतूँ।  
मैं काँवे हूँ, काँवे की भाषा नहीं, भुम में जीवत हूँ, गातूँ,  
अपनी वारक लिलाए तुम, मैं अंगारे का डकातूँ।

— X —

### लोक विवेकांजलि का

‘विवेकांजलि’ मेरे जीतों का संकलन है। यह संकलन में जीवन  
की हर स्थिति पर गीत लिखेंगे, लेकिन प्रधानता शर्म अदभाती के  
गीतों की है। इन गीतों के जीवन में एक विचित्र डेर का लहरा  
है। ‘विवेकांजलि’ के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, लेकिन किसी  
भी संस्करण की भूमिका में मैंने आपसना का अन्वेष नहीं किया है,  
जो पढ़ना यह संकलन के गीतों का लिखने के लिये प्रेरणा दती है।  
दुई अंश पढ़ना है सम्बन्धित कुछ व्याप्ति अभी है, शर्मिष्ठा उन्हीं  
के प्रलय आश्रु के कारण मैं आपसना का अन्वेष यहाँ कर रहा हूँ।  
मैं लिखने आता हूँ लिख रहा हूँ, लेकिन शब्द अर्थ यह नहीं कि  
मैं यह प्रकाश की बातों पर विश्वास करता हूँ।

यह पारना सन् १९८५ की रही होगी। एक कवि-सम्मेलन को लिए  
अभ्यन्तित होकर मैं मध्य प्रदेश को जाकर जिला के हरदोद स्थान पर  
गया हुआ था। मेरे साथ उच्चैन के कविवर प्रकाश उपाध्याय और गीतकार  
श्री मोहन जेनी भी थे। हरदोद की कवण-प्रेमी जनता ने बहुत  
तीन बजे तक कवि-सम्मेलन सुना। उसके पश्चात् हम लोग अपने  
घरने के स्थान पर आकर बैठे। मैं लगातार एक घण्टा ही  
तक पाठ ही अंग्रेजी के मुझको रोज आता, जैसे किसी ने मेरे  
घर पर टॉन्स का तीव्र प्रकाश डाला हो। उक्त प्रकाश से मुझे  
पेशानी जैसी महसूस हुई थी। उसी वकान में मैंने मैंने कवर  
बदल दी। उस समय कई-जगह अन्धकार था। ओंके पर  
प्रकाश अनुभव करने के पश्चात् मुझे किसी को घर सुनाई पड़ा-

“मुझे बहुत कुछ मिल डाला है। मैं चाहता हूँ कि अब तुम  
भी विवेकानन्द के विचारों पर भी कुछ लिखें।”

मुझे रोज आता, जैसे यह बात मेरे आसपास के ही किसी घरे में  
गयी थी। मैंने आसपास देखा तो पता चला कि प्रकाश भी तो रहा था  
और मोहन भी। मैंने दोनों के जगहों को जाकर और पूछा कि क्या  
तुम मेरे लिए किसी न मुझे धुकार कर कुछ कहो। उन  
दोनों ने ही इनकार कर दिया। अपनी अनुभूति बखला मैंने उन्हें  
कह सुनाई। दोनों ही बोले कि किसी दिव्य शक्ति ने आपका  
प्रेरण किया है, आप विवेकानन्द के विचारों पर अवश्य लिखिए।

बात अरि गई होगी। महाविद्यालय में मैं अपने छात्रों को  
अनेकानेक विषय पढ़ाया करता था। मज से तार्किक भी रहा हूँ। मैंने  
तोच की मज की दमित आयनाई ही खज बनकर उभरती हूँ। मैंने  
तोच की मैं लोग के लिए नायकों की बोज करता रहता हूँ  
और शक्ति कारण खोजने जेप में मेरा वही विचार उचित हुआ  
होगा। मैंने अपने मज से विवेकानन्द का जीवन दिया।

50 घण्टा के भी बीते हुए लगभग एक वर्ष हो गया। सन्  
१९८६ को वर्ष आगया। 50 वर्ष मुझे सेना-मुक्ति भी होगा था।  
अपने महाविद्यालयीन आवस-गृह में रात को मैं सोया हुआ था।  
वही लगभग सुकृत के चार बजे मुझे वही अनुभव हुआ।

जैसे हस्तुद में हुआ था। किसी ने उसे प्रकार काँले पर तिर  
प्रकाश डाला और फिर मुझसे कहा -

“ लोभमय एक वर्ष हो गया है, जब मैंने तुम्हें कहा था कि  
तुम स्वामी विवेकानन्द को विद्यालय पर कुछ लिखो। तुमने मेरे  
कामन पर कोई ध्यान नहीं दिया। वही बात मैं दूसरे घर  
में तुम्हें यह कहना चाहता हूँ कि स्वामी विवेकानन्द का जीवन  
बाल्य भावपूर्ण में बहुत ही भाँगा सीमा आएँगे, लेकिन उन पर  
गौरव मिलने का प्रेम मैं तुम्हें देना चाहता हूँ और एक बात यह  
भी बताना चाहता हूँ कि आप ही एक महाने के अन्दर तुमने  
कुछ लिखा लिया ताँ मिल लिया, अम्मा और कुछ नहीं। मेरा  
पात्रोने। ”

यह मे प्रेरण-मयन हुन का मैं उसे और और कुछ विद्या काने लगा।  
इस समय में दो बातें गई थीं - एक तो गौरव मिलने की और  
दूसरी बात एक महाने के अम्मा मिलने की। मैं कुछ हीने पर  
मैंने इस परना का उल्लेख अपने दोनों पुत्रों से किया जो उन  
दिनों कोमेज से पढ़ रहे थे। और एक पुत्र मुझसे भी आधिक-  
तार्किक है। उसने कहा कि इन बातों पर तो वे विवेकानन्द विद्यालय  
गली है। दूसरा पुत्र कुछ साहित्यिक प्रवृत्ति का है। उसने कहा  
कि आज साइस काने में क्या बुराई है।

जब 26 दिन में कोमेज गया तो सोचा कि कोमेज के पुस्तकालय  
में यदि स्वामी विवेकानन्द का कोई पुस्तक मिलेगा तो उसे पढ़ना  
प्राथम्य करूँ। वैसे वह अध्यापकों का महाविद्यालय होने के कारण  
उसने पुस्तकालय में किसी व्यापारिक पुस्तक के मिलने की मुझ-  
कोई आशा नहीं थी। जब मैंने ग्रन्थपाल महोदय से पूछा वह  
की तो उन्होंने बताया कि अपने पुस्तकालय में तो स्वामी  
विवेकानन्द का पूरा सैट मौजूद है - जहाँ उहाँ का मिलान हुआ  
है और उस सैट के अतिरिक्त आठ जोड़कों की भी पुस्तकें मौजूद  
हैं जो उन्होंने श्री गणकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द पर  
लिखी हैं। इस भर तुम्हारे आश्चर्य को दिकाना नहीं रहा।  
मैंने सोचा कि मेरा काम बनने वाला है। इस प्रकार के साहित्य

श्री भगवान् श्री पुस्तकें लिखना कर में करते पार जेना।  
 पार पहिले ही - पाप दोन के पहले में से उस धुंधला  
 श्री-पहली पुस्तक उदाई और अन्तरे पुस्तक पल्लवों भगा। मुझे  
 भगा कि पुस्तक पल्लवों है उसकी सारी सम्पत्ति मेरे पास में  
 लमा गई है। ६८-जेनेर के अन्तरे में से अपने सारे पुस्तक पल्लव  
 पाले श्री मुझसे भगा कि वह पूरी पुस्तक अन्तरे लगे गई है।  
 कोनेज से पदा कर अन्तरे पुस्तक आया है श्री, पाप धीमे में कोने  
 विभ्रम भगवद्गीता से चले भगा। लेकिन विभ्रम मेरे भाग में  
 नहीं था। मर में जगदीश की एक विचार में मन में कोने  
 और गीत की पुस्तक पाले मेरे दिमाग में आ गई। उस पाले में  
 जब गीत लिखने लगे तो पुस्तक गीत इस तरह लिख जगदीश,  
 और वह मुझे पल्लव में ही खद हो कर आने लिखना भी थोड़ा  
 रख ले। एक ही सौते में वह पुस्तक गीत लिखना लगेगा।  
 मेरे सोचा कि-पल्लव पुस्तक में लगेगा है। सोने का सम्पत्ति ले-  
 ले है इसी पुस्तक गीतों की तीन और पाले में मेरे मान में  
 उसी पल्लव उस दिन पुस्तक - पार गीत लिखने लगेगा।

हर दिन श्रीगुरु-पल्लव रख। मुझे कोने में पदने के  
 लिए पार पार पदना भी होता था। विवेकानन्द साहित्य में पदना पदना  
 था, लेकिन अन्तरे अन्तरे में पल्लव का होता थी कि पुस्तक पल्लव  
 ही पूरी सम्पत्ति दिमाग में अन्तरे में जाती थी। अपने सारे-मान  
 करते हुए एक महीने में अन्तरे एक ही पाले में गीत लिखने लगेगा। जब  
 एक महीने की अन्तरे सम्पत्ति लगे गई तो अन्तरे दिग बहुत  
 माया-पदने में भी मुझे एक भी गीत नहीं लिखना पड़ा।  
 गीत लिख-पुस्तक में पदना मुझे ऐसी अन्तरे हुई जहाँ मुझे  
 बहुत तेज बुद्धि पदना हो कर वह उतर गया है। मैं अपने को  
 इतना लिखना सम्पत्ति भगा, जहाँ हवा में उड़ सकता हूँ।

सारी विवेकानन्द पाले में गए इन गीतों को संकाय का  
 नाम में 'विवेकांजलि' राख। इन गीतों को लिखना मैं  
 उसी वर्ष अन्तरे सन १९४६-४७ की ३१ दिनांक को कोने में कोने

से मुक्त हो गया। सेवा-विहीन होने के पूर्व कॉलेज में मैंने एक व्याख्यान दिया था, जिसका विषय था - "ईश्वर क्या है।" लोगों को लगन है कि ऐसा सटीक भाषण हमें कभी सुनने को नहीं मिलेगा।

उन गीतों में पहले से मिले हुए पद्य और गीत जोड़ कर सन् १९५५ में 'विदेवा' नामी पुस्तकित कर दी। उनका प्रथम संस्करण बहुत रपिद प्रसारित हुआ। उसके द्वारा संस्करण में अनेक विशेष स्थितियों में मिले गए दोस्तों १३४ गीत ही संस्करण में गए थे। शेष गीतों को छटा दिया गया। मैं कह नहीं सकता कि ये गीत और वे लोग पढ़ें।

ਪ੍ਰੋ. ਚਰਿਤ. ਜੰ-ਵਾਲਾ : ਗਦਾ-ਪਤ

---

मुल रूप में मैं जानें हूँ - और अपने लोक में मुझीं से मैंने  
महानिधि जहाँको और प्रान्तेदारोंको भी ही जानेंना भी है । एक समय  
- पर मैंने लिखा भी है

“ प्रजापति के अने देवता, मेरे लिए आराधना,  
आप सबका मत, उनको वन्दना है साधन । ”

हा वन्दना मुझे मैं की हीद जगत में और - मनुष्यों को आराधना पर  
गहावाणी की रचना करके मुझे बहुत संतोष हुआ । लेकिन  
- मेरे लिए मेरे मित्रों एक बहुत बड़ा - परिवर्तनायक का आशीर्वाद  
को मुझको मनुष्य को । - और आज्ञा रखी है कि भारत की कोई  
हुई - आचार्य की प्रार्थना की दिशा में आई किसी एक धर्मात्मा ने -  
संस्कृत प्रयात्न किया है, तो वह है सुभाषचन्द्र बोस । आचार्य  
को हा दीवाने का कल्पम - चक्रावत का और मत हुआ और मैंने  
हा संस्कृत की प्रार्थना की दिशा में बोस कदम भी उठाया ।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस - और - और काफ़ी प्रसिद्धी  
संयोजित कर ली और अन्त आधुनिक भी किया । मेरे एक परम  
मित्र श्री श्री श्री ० अर्जुन के पास नेताजी से सम्बन्धित काफ़ी  
साहित्य था । मैंने उनका सबकुछ उपजाग किया । आनन्दम  
सहवास कि मैं उन सभी लिखों का सम्मान करने और नेताजी के  
कार्य - क्षेत्र रहे वी । बंगाल का मुझ से मैंने कर दिया और  
नेताजी को परिवार को लोगों को और उनके मित्रों से भी । और, पर  
इच्छा को कि मैं सुभाष - दाक्षिण - पूर्व - एशिया का भी सम्मान  
करूँ, जाऊँ - जहाँ नेताजी को चरण पड़े और देश को दीवानों का  
खून गिरा था । यह बहुत बड़ा काम था और मैंने मुझ को  
अन्तर्गत में ही निश्चय करने प्रार्थना के लिए तो यह सम्मान  
को तब तक इतने जोर का था ।

अपने परिचय - क्षेत्र के एक केन्द्रीय मंत्री महोदय को पत्र लिखा  
- कि हा दिशा में व केन्द्र । कुछ सहकार दिना है । मैं उनका बहुत  
हूँ कि उन्होंने मुझे आश्वासन देने के लिए मैं हा उतर दे  
दिगा -

“ मुझे हैद है कि हा दिशा में मैं आपकी कोई  
सहायता नहीं कर सकूँगा । ”



जैन्स ने ही एक द्वार मंत्री महोदय को पत्र लिखा। बड़ा प्यारा  
उत्तर आया उनको। उन्होंने लिखा था -

"मैं देखूंगा कि मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ।"  
जब प्रवेश में एक मंत्री महोदय को पत्र लिखा। उनको

उत्तर आया -

"मेरी समस्त अनुभवतमनाएँ आपके हाथ हैं।"  
आश्वासनों की श्रृंखला में तो काम-चाल नहीं। पता था  
की मैं अपना विचार त्यागने के लिए तैयार नहीं था। मन  
बहुत ही शांत था। साधन बिलकुल शून्य। दो महत्त्वपूर्ण  
प्रस्तावों पर देने के जवाब भी भर नहीं पाए थे। मैं हिम्मत  
धारने लगा। अपने लम्बे में हंसने लगे। जो चित्र को समझा  
मैं खड़ा हो गया। मुझे लगा, जैसे एक बार जबने हाथों में  
कहे गए शब्दों को उन्होंने मेरे सामने फुरा दिया -

"विद्रोही वह है जो सत्य में विश्वास रखता है और  
विश्वास रखता है कि अन्त में सत्य और न्याय की ही विजय  
मिलती है। जो असफलताओं से, शराबों के असफल से निराश  
हो जाता है, उसे अपने को विद्रोही कहने का कोई हक नहीं।  
विद्रोही का खाना है - आँखों में आशा के सपने, हाथों में  
मोड़ के फूल और दिल में आपसी का सपना।"

जब मैंने उनकी इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया तो  
दयाकर ने लक्ष्मी से उन्होंने फिर कहना प्रारम्भ किया -

"क्यों, जानिकारियों पर लिखने वाले की कलम रुकने का  
गर्ज ? हमारे लक्ष्य तो अभी रुकने नहीं हैं, दुस्मानी कलम क्यों रुक  
गई ? वरतन की इच्छा की इच्छा में ही रोने लगे, फिर  
आगे क्या होगा ? जब हमने हक मंगाने पर ही लिखने का  
कीड़ा उठाया है तो फिर निराश होने से कैसे काम-चलेगा ?  
सोचना शुरू। जो कीड़े, सही। लिखो।"

नेताजी की अनुपस्थिति ने मुझे अकम्बल दिया। फिर  
कलम उठा ली और कुछ शब्दों को चूने लगा। उन शब्दों  
में नेताजी का हीक-तीक चित्र उभरने लगा। विदेश-यात्रा

को संकल्प कर डाला । सेहत-मजदूरी में जुट गया नेताजी  
को लगातार डेढ़ हो गई-गई चित्र बनवा डाले चित्र उन्हे सारे  
विद्यालयों और महाविद्यालयों में नेताजीके चित्रों को कहानी  
— प्रस्तुत करने लगा । कार्यक्रम बहुत प्रभावशाली हो रहा था, वे  
बहुत कम मिलते थे । कार्यक्रम के प्रभाव की बात बताने  
विदेश जिसे में श्री विष्णु प्रताप सिंह कलकत्ता । गंजवाली  
के भेले के समय नेताजी-चित्रावली के प्रदर्शन के लिए कुम्हे  
आमंत्रित किया गया । मैंने कलकत्ता गुरु ने निवेदन किया —  
“ चित्रावली को पहला चित्र आप लींच दें । ”

उन्का उत्तर था —

“ कुल्लु-गंजी महोदय आते वाले हैं । कुम्हे उन्के  
स्वागत की तैयारियों का निरीक्षण करना है । पहला चित्र  
लींच कर चला जाऊँगा । आप बुरा मत मानिए । ”

उन्होंने पहला चित्र लींच दिया — श्री वी. चारु चित्र  
देव लोने के शादी है एक हूल् लींच कर आया हूल् पर,  
शेतिपु ही 36-आनेके शादी है बैठ गए । शेष चित्रों के लाभ  
मैंने कभी गढ़ाया । कभी पत्र में नेताजी की कहानी प्रकाश-  
कर दी । चित्रावली के धरुई में समाप्त हुई । सभी लोगों ने  
देवा की कलकत्ता गुरु ने आया हूल् पर बैठ ही वो धरुई  
निकाल दिए और श्री चित्रावली देवा डाली ।

मेरी चित्रावली के पश्चात उसी समा-मेलन में आयेन -  
भारतीय कुशागरा संपन्न हुआ । चित्रावली के प्रदर्शित वीरा  
में कलकत्ता के रात वातावरण बन गया था । ईश्वर की  
सेवा शास्त्री ने वहाँ कोई प्रभाव नहीं पाया । सभी  
और धरुई के आया ही कुशागरा लाभ हो गया ।  
आयेनेवा लोगों ने कुम्हे बहुत कोता, पत्रों में उन्का ही  
पुस्तक आया कुशागरा के पहले उन्होंने कुम्हे अपना  
— मेरी चित्रावली के लिए ।

ने लगभग दस लाख रुपये - कई-कई विभिन्न वस्तुओं को उतारने  
 विद्यालयों और महाविद्यालयों में नेताजी के स्मृति की कहानी  
 - प्रस्तुत करने लगा। कार्यक्रम बहुत प्रभावशाली हो रहा था, पैसा  
 बहुत कम मिलते थे। कार्यक्रम के प्रभाव की बात बताई-  
 विविध जिन्हें में ही निरूपण प्राप्त सिंह कलेंकर ने। गंज का साँदा  
 के सेने के समय नेताजी-चित्रावली के प्रदर्शन के लिए मुझे  
 आमंत्रित किया गया। मैंने कलेंकर साहब से निवेदन किया -  
 "चित्रावली को पहला चित्र आप लींच दें।"

उत्तर आ -

"मुझे मंत्री महोदय आने वाले हैं। मुझे उनके  
 स्वागत की 'हवाई' का निरीक्षण करना है। पहला चित्र  
 लींच कर चला जाऊँगा। आप कुरा मत मानिए।"

उन्होंने पहला चित्र लींच दिया और दो-चार चित्र  
 दोनो ने के श्रावण एक स्कूल लींच कर आया स्कूल पर,  
 शीघ्र ही उठ जाने के श्रावण बैठ गए। शेष चित्रों के साथ  
 मैंने सभी गद्य-कवि सभी पत्र में नेताजी की कहानी प्रकाश-  
 कर दी। चित्रावली के प्यारे में समाप्त हुई। सभी लोगों ने  
 दोला की कलेंकर साहब ने आया स्कूल पर बैठे ही दो प्यारे  
 गिलास दिए और चित्रावली दोला सभी।

मेरी चित्रावली के पश्चात् उसी समा-मक में आयोजित -  
 भारतीय कुशागरा संपन्न हुआ। चित्रावली के प्रदर्शन से वीरता  
 और बलिदान का ऐसा वातावरण बने गया था कि स्कूल की  
 सभी शास्त्री वहाँ वहाँ कोई प्रभाव नहीं जाता। सभी  
 और एक प्यारे के आया ही कुशागरा बरस हो गया।  
 आयोजक लोगों ने मुझे बहुत कोता, पत्रों में उनका ही  
 प्रसार था जो कुशागरा के पहले उन्होंने मुझे अपना  
 कार्यक्रम देने का आदेश दिया था।

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ कि २० कार्यक्रम में मैं अपने  
 कार्यक्रम के लिए सभी को बताने का मैं देखने

— जो लिए कुछ बन्ध नहीं था। ऊँकोवाकर में रहने वाले  
मनने बड़े भाई को मैंने पत्र लिखा —

“ नौताजी सुभाष पर तबम संतानम की लिए मैं विदेश-  
सेवा पर जाना चाहता हूँ। मेरे लिये दो जितने भी पैस  
और जितनी भी आवश्यक वस्तुएँ हैं, उनके बचकर मेरे पास  
रखा भेज दीजिए।”

उन्होंने मेरे लिखे का हल कुछ बन्ध कर मेरे पास  
रखा भेज दिया। विदेश-यात्रा के लिए गाड़ी लिए भी  
काग रही। निश्च-विश्वास में भी रह्यो, डॉक्टरों के लिए आवश्यक-  
पत्र देकर शुल्क जमा कर राका था, वह भी वापिस कोलिया  
कुछ कर्ज भी लिया। विदेश यात्रा के लिए पासपोर्ट भी  
बत गया। इतने कार्य में मेरे मित्र श्री सुभाषीभाल तिवारी ने  
मेरी बहुत सहायता की। वे उत समय उन्होंने मेरे बराबर ही  
के पद पर आसीन थे। विदेश-यात्रा पर जाने के केवल पन्द्रह  
दिन बीत रहे थे। इसी बीच एक मयंक दुर्घटना  
का शिकार हो गया। गंभीर-घात काई। वे होश की हालत  
में मित्रों ने अस्पताल में अतीं करा दिया। मुहाँ भी  
जा चुकी थी। बहुत दिन बाद मुहाँ भी हल काई। दूसरों  
ने कहा — विदेश यात्रा होवय, से पहले बाहर जाने के योग्य  
भी नहीं हूँ। बिही भी एक नहीं जुती। निश्चित तौनी —  
आने पर-पत्र पड़ो —

जन्म-पत्नी में कागोदानी का दोगवत

आपकी सुभाष-यात्रा का श्रीगणेश कागोदानी की यात्रा हो  
गिया। आगुमव प्राप्त करने की दृष्टि से कागोदानी से होई बलवतक  
की यात्रा 'अन्धमान' जलयाग में थी। चार दिन और चार रात की  
यात्रा थी। कागोदानी से दो मेरे एक मित्र श्री सुभाषीभाल कागोदानी  
जो मेरे शुल्क जन्म-यात्रा के लिए भुवि-वर्षे जुटा दी। उन्होंने



लॉवर-मास्टर जरा जग-मद-कर मेरे को बिगने में पहुँचे। मुझसे  
मिलकर उन्होंने बताया कि उन्होंने मेरे लिए 'आरक्षण' का आदेश  
करा दिया है। उन्होंने यह भी कहा कि 'उत्तर' के लोगों की मंडि छँट  
जाने लगे हैं मुझे लगे हैं। और अपनी जीप में लगे जाकर  
आरक्षण-गृह तक दौड़ आएंगे। मैं डेक पर बिठा होकर मंडि के  
बादलों को देख रहा हूँ।

मोड़ी के कार्य लॉवर-मास्टर ने स्वयं न पहुँच कर ऑफिसिएर-  
लॉवर-मास्टर को मुझे लेने के लिए भेजा। उन्होंने को बिगने के  
पास पहुँच कर पूछा कि 'मि० सरल' कौन हैं। आपका नाम क्या  
है। मैंने पूछा कि ऑफिसिएर लॉवर-मास्टर से पूछा -

“आप किसको तलाश रहे हैं?”

उत्तर था -

“मैं 'मि० सरल' को तलाश कर रहा हूँ, जिन्हें 'मि०' ले जाने के  
लिए लॉवर-मास्टर ने मुझे भेजा है। वो-वे जीप ली है। उन्हें जीप में  
लेकर विज्ञान गृह पहुँचाया है, जहाँ उनके लिए एक एक  
कमरे का आरक्षण करा जा रहा है।”

उपस्थानकों की जानकारी मानकर 'मि०' वहाँ भेजा गया।  
उन्होंने मुझे बोल दिया -

“मैं 'मि०' सरल हूँ।”

ऑफिसिएर-लॉवर-मास्टर उसको अपने पास लेकर चले गए। मैं  
प्रतिक्षित रह गया कि कोई मुझे लेने आएगा। जब पूरा सारा  
मिली हो गया तो मैं 'अजना' नामक लॉवर-मास्टर की-वे उतरा।  
जिस दिन अजना पहुँचा, उस दिन 'टेक्नीशियन' का मिलना  
आश्चर्य हो जाता है। बड़ी आश्चर्य से एक पुलित नामकी  
लड़की से एक टेक्नीशियन की ओर विज्ञान-गृह पहुँचा। वहाँ  
पहुँचकर उपस्थानकों से बोला -

“मैं 'मि०' सरल हूँ। 'मि०' सरल हूँ। मेरे लिए यहाँ 'मि०'  
लॉवर-मास्टर ने जिस कमरे का आरक्षण कराया है, वहाँ मुझे  
दे दीजिए।”

— 'मि०' सरल मुझसे बोलकर उपस्थानकों ने मुझे नीचे से उतर  
कर बोला था।

“'मि०' सरल तो अपने आरक्षित कमरे में ठहर चुके हैं,

उन्हें तो अभी-आगे बर्खास्त होना-माफ़ करनी जीज में पड़े  
कर गए हैं। अगर है कि आप कोई अच्छी आदमी हैं जो  
मैंने फिर भी आप-आप-आपके हमें-बर्खास्त देना-बर्खास्त हैं।  
आपको बर्खास्त हो-कि-हो-बर्खास्त बर्खास्त जड़ेगी।

आपको बर्खास्त हो-कि-हो-बर्खास्त बर्खास्त जड़ेगी।  
आपको बर्खास्त हो-कि-हो-बर्खास्त बर्खास्त जड़ेगी।  
आपको बर्खास्त हो-कि-हो-बर्खास्त बर्खास्त जड़ेगी।  
आपको बर्खास्त हो-कि-हो-बर्खास्त बर्खास्त जड़ेगी।

आप बर्खास्त-माफ़ करनी जीज में पड़े, मैं उन्हें बर्खास्त  
कर आपको बर्खास्त देता हूँ कि आपकी और बर्खास्त करनी हैं।

बर्खास्त-माफ़ करनी जीज में पड़े। मेरी उम्मीदें बर्खास्त हैं।  
मैंने उन्हें बर्खास्त कि आप हमें-बर्खास्त नहीं-बर्खास्त और आपकी  
आपकी बर्खास्त बर्खास्त कि आप कोई अच्छी आदमी मेरी आप-आप-  
आपके बर्खास्त-हो-मे-हो-बर्खास्त हैं। मेरी बर्खास्त बर्खास्त कर  
बर्खास्त-माफ़ करनी और बर्खास्त-माफ़ करनी, दोनों ही जीज में  
बर्खास्त-हो-बर्खास्त हैं। उन्होंने मुझे बर्खास्त कर बर्खास्त-आप-  
हैं कि आपकी और बर्खास्त हैं। मेरी बर्खास्त बर्खास्त  
आपके मे-आपकी मेरी आप हैं बर्खास्त, बर्खास्त बर्खास्त  
गया। मेरी बर्खास्त का बर्खास्त नहीं-रह, बर्खास्त-आपकी  
मैं-बर्खास्त हैं। बर्खास्त बर्खास्त और बर्खास्त-हो-बर्खास्त  
बर्खास्त ने हा-बर्खास्त-हो-कि-मैं-मैं-आपकी बर्खास्त बर्खास्त  
मैं उम्मीदें और बर्खास्त बर्खास्त बर्खास्त पर राह कर उन्हें बर्खास्त।  
बर्खास्त आपकी कि-बर्खास्त। मुझे बर्खास्त पर रहने आगम  
और मैंने बर्खास्त रहा कि बर्खास्त बर्खास्त बर्खास्त बर्खास्त  
आपकी बर्खास्त कि-बर्खास्त मेरी बर्खास्त मेरी बर्खास्त कि-  
मैं बर्खास्त हैं। बर्खास्त बर्खास्त बर्खास्त ने उनकी और  
आपकी-बर्खास्त की और मेरी बर्खास्त बर्खास्त की बर्खास्त बर्खास्त।  
बर्खास्त बर्खास्त मैंने बर्खास्त बर्खास्त कि-बर्खास्त बर्खास्त  
मैंने बर्खास्त मे-बर्खास्त बर्खास्त बर्खास्त बर्खास्त, बर्खास्त-  
उम्मीदें बर्खास्त आपकी।

असमान-मान में ईसाई भी जीव जाते उनके पास नेतृता  
मुमकिन है जो उनके मुख में नाराज खुद हुए भी। मान में एक  
उप-क्षेत्र-समूह को संभालने में दलील लिया, तो उनका  
नगरिक-प्रशासन नेताजी को सौंप दिया। नेताजी का मान के लिए  
नेता अंगुवन्ता पहले ही कर-मुक्त थे कि उन्हें जो भी जो भी  
भारतीय भू-भाग की जा-जायगा, उनका आ-जाय हिन्द-परिवार  
को प्रशासन होगा। नेताजी ने स्वयं अन्तर्गत-निर्देशवार  
कोष लागू करने का अन्तर्गत-प्रशासन-प्रणाली को को  
कार्य में लाया था जो वहाँ को गवर्नर नियुक्त किया था।  
उन्होंने इन दोनों क्षेत्रों को तब बदल कर शहीद-क्षेत्र  
को। स्वतन्त्र-क्षेत्र रावे थे।

मैंने भी दोनों क्षेत्रों की रचना की। मुझे यह देख कर  
बहुत अच्छा लगा कि नेताजी ने निर्देश पर इन दोनों क्षेत्रों  
को काम-काज की भाषा हिन्दी बानी थी। यद्यपि वहाँ भाषा को  
हर प्रांत को लगे रहते थे जो भाषा को व अपने-अपने प्रांत  
की भाषाएँ बोलते थे, पर काम के बाह्य को काम-काज में व  
परम हिन्दी में ही बात-चीत करते थे।

फोटो क्लेयर में मेरे निर्धारित तीन दिन बहुत अच्छी तरह  
गुजरें। यही वक्त मैंने काम-काज की काम-काजों में  
सुमते हुए बिताए, जिनमें लगे आकाश की वीराने क्रान्तिकारी  
भाग आजीवन-कारणों की रचना ~~सबसे~~ देकर रावे जाते थे।  
उप-क्षेत्र आ-पल के प्रचार जेता में हर्षे थे। उन्होंने  
मुझे हर कोठी दिवाई और बताया कि किताबों में वहाँ का  
क्रान्तिकारी रहा था। उन्होंने 123 नं० की वह कोठी भी मुझे  
विशेष रूप से दिवाई, जिनमें तीर बिनायक दामोदर सावरकर  
रहे थे। मैंने उन कोठी को एक चित्र भी लिया था।

मि० हर्षे ने वे कर्मशाखाएँ भी मुझे दिवाई, जिनमें  
आजीवन के दिनों में विवेक प्रकाश के काम लिए जाते थे।  
वह नौकर भी सुरक्षित रावा गया था, जिसे ~~चला~~ चले  
जिसमें वही वही तरह स्वयं मुत पर आजीवन के वही गरी



को तेज निकालते थे। उन्हें घातें पड़ती थीं। परन्तु तब भी वे काम  
कर देना पड़ता था। थोड़ी देर दिखाने पर हन्टर की मार  
-पड़ती थी। मैंने भी कुछ कोल्बु को बचा कर देना।  
-एक-एक कर लगाते पर ही मैं चारों-पक्षों से गिरा। जोपर  
हाथ ने बताया कि आप ने तो पानी कोल्बु को बचाया  
-एक-एक कर ही लगाया है, आपने काले लोग तो मरे हैं  
पर हुए कोल्बु को दिन भर लींचते रहते हैं।

वह मौसी-बार भी मुझे दिखाया गया, जहाँ अपना पानी को  
को मौसी की जाती थी। मौसी का पन्ना पहना हुआ  
था। मैंने उस पन्ने को अपने गले में डाल कर देवने को  
देखा प्रकट की। जल्द ही ० वर्षे मुझ पर कर कहने लगे -

“आप मौसी से इस पन्ने को अपने गले में डाल कर  
देना सकते हैं। आप जब से कह सकते हैं कि मेरे गले में भी  
मौसी का पन्ना आकर निक्का-उका है। एक घण्टी में  
इसी प्रकार देवने को बहाने गले में पन्ना डाल कर आत्म-हत्या  
कर ली थी। तब ही हमने इसकी गोंठ को लौका कर दिया है  
और अब यह गोंठ निसर्ग नहीं बचाती।”

हमारे देश के ज्ञानिनी ने अपनी जवानियाँ उन  
काल को हरियो में निकाल ली। कुछ ही वर्षों में गण और  
कुछ लोग वहाँ को रातगो के कारण पागल हो गए।  
क्यों हम देश को आधुनिक संदर्भ में उनकी सेवाओं को  
- प्रत्यक्ष कर लेंगे ?

### आन्डमान में एक हमले की विवरात

जब आन्डमान से प्रजात का समय आया तो वहाँ  
महंगा वर्षा होने लगी। सौतम इतना हो गया कि  
वायुमान की उन्नत प्रतिदिन स्पष्ट की जाती थी। उच्च से मुझे  
वायुमान का ही आगे बढ़ना था। वायुमान के चलने की  
इंजीनियर लोग भी उही विचारों में हैं। वहाँ वहाँ  
कई लोगों को वायुमान ही ही आने को भी। प्रतिदिन हम

जो लोग लंदन में आकर विमान-स्वल्प पहुँचते, वहाँ जमीन का नमूना  
कर लाजेंसी ली जाती, विमान का इंजीनियर वहाँ आता है जो  
की इंजिनरी देखता है और जोर देता कि मोरान उड़ान को उड़ान  
नहीं है और हम सब लोग अपना अपना काम लिए लौटें। हम  
और विमान-गृह में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार हम सभी लोग  
वहाँ एक हमले तक हिंसा से रहे। वर्षा इतने ज़ोर से होती थी  
कि बाजार में भी धूम-धिर नहीं सकते थे। ऐसा बुरा था  
कि सभी लोग हॉल में बैठकर गप-शप करते रहते थे। लोगों को  
मालूम हो गया था कि मैं कबि हूँ अतः मुझ से कविता  
पूछने की परमादेश की जाती थी। मैं शहीदों का जिक्र नहीं  
कविताएँ भी सुनाता था और उनके दुर्भाग्य संसार भी। शहीदों  
को अपने क्रान्तिकारियों से मिलाने में सुनने में लोगों को  
बहुत आनंद आता था। मैं सभी लोगों को बहोता बहोता गया।  
विमान का मुख्य-चालक और इंजीनियर एक ही व्यक्ति था। वह  
मुझ से बहुत आनंद प्रभावित हुआ और मोरान आनंद प्रभाव।  
एक हमले तक निरंतर विमान-गृह से विमान-स्वल्प तक  
जाते और लौटते रहे। एक दिन बाकी रात तो वहाँ पहुँचा, लेकिन  
मैं नहीं गया। मेरे दोस्तों के उड़ान के मैं देखाने हो गया  
था, हाँ बाजार उड़ान का आनंद कर रहा था। जब सभी रातों  
विमान-स्वल्प पहुँच गए तो उनकी लाजेंसी ली गई। मैं अन्तर्गत  
वहाँ और-लाजेंसी पाया गया। मुख्य-चालक ने जब मोरान का परिचय  
किया तो पाया कि मोरान उड़ान भाते को योग्य था। मोरान समझ  
होने पाया अपने उड़ान की उड़ान स्थापित करने की योजना कर  
दी। लोगों ने जब कारण पूछा तो उन्होंने कह दिया कि मोरान  
यहाँ तो लफ है, लेकिन आगे हवा का दबाव है और वायुमय  
अपने फ्लाइट का दुर्घटना का शिकार हो सकता है। वे सभी लोग  
लौट कर फिर विमान-गृह पहुँच गए। अन्तराष्ट्रिय बहो  
मुख्य-चालक मेरे कहने में पहुँचा और बोला -

“अपना आपकी अनुपस्थिति के कारण ही मुझे बहुत  
मोहने का बहाना लेकर उड़ान स्थापित करने की योजना की  
पड़ी। यदि हमारा विमान-चालक जाता तो आप कभी नहीं

जाने। अतः यह विनिर्दिष्ट देखा है जो कि कार्यालय में  
विनिर्दिष्ट लक्ष्य प्राप्त करता है।

समाज में ही उन विभाग-कार्यक्रमों ने जो निम्नलिखित उपचार किया  
किया जो कि इन कारणों से ही प्रभावित हो जाते हैं। मैंने जानबूझकर  
जब मैंने उनका नाम नहीं लिया। अतः यदि मैं किसी व्यक्ति को  
ने किन्हीं विभाग-कार्यक्रमों में भाग लेना है तो मैंने जो  
वर्क की करीब लगे उठा। विभाग में मैंने मुझे ली. फार्म. भी  
पुस्तकें मिली। - पत्र-पत्रों के प्रकाश के बाद भी विभाग-कार्यक्रमों  
मुझे - काफी मिलाने के लिए मैं जाती। विभाग-कार्यक्रमों विषय  
में मैंने मुझे जानकारी दी गई कि विभाग के इंडिस्ट्री अफेयर में  
मेरी कमिटी का निर्माण हो चुका है।

रंगून में समाचार पत्र

मेरी पुण्य-यात्रा के पड़ने के बाद, मलेशिया, सिंगापुर,  
थाईलैंड, हांगकॉंग, जापान और फारमोसा। वर्क की राजधानी रंगून  
पहुँचने पर मैंने जहाँ मैं अपने को लिए एक ठेकालेदारों को कहानी  
की। अतः मुझे प्यार -

"क्या आपने प्राप्त नगरों के अन्दर जाने के लिए रंगून के नगर  
उत्थापन, का अनुभव किया है?"

मैंने उत्तर दिया -

"मेरे पास बहुत नगर-प्रशासन का अनुभव है। मैंने जो  
अन्तर्राष्ट्रीय मार-मन्त्र अध्ययन है। वहाँ उनकी सरकार पर मैंने नगर-प्रवेश  
नहीं कर लिया है।"

अतः मैंने -

"हाँ, आपका नाम मैंने सरकार पर आप नगर प्रवेश नहीं कर सके।  
आप विभाग-कार्यक्रमों के इतिहास में नगर प्रशासन के कार्यलय को फोन  
करो। वहाँ से आपको निर्देश मिलेगा कि आपका क्या करना है।"

मैंने विभाग-कार्यक्रमों के इतिहास का उपयोग करके नगर प्रशासन  
के कार्यलय में निर्माण स्थापित किया। मेरी यात्रा का उद्देश्य पूरा करने  
पर इतिहास पर ही मैंने बताया कि मैं भारतीय अर्थ-कार्य  
पर अतः निर्माण है कि मेरी वर्क-यात्रा का उद्देश्य भी यही है।

दि मैं भारत के गलत प्रान्तिकारी पुमानन्द को ले लिये गये हैं  
प्रश्न तबप बटोर लिये। प्रश्न पर पुमानन्द का जवाब -

"आप विमानस्थल के प्रतीक्षा करने में प्रतीक्षा कीजिए। हम  
एक अपहरण आप में मिलाने वाले हुए पहुँच रहे हैं। वह आपको  
आवश्यक सि दैगा देगा।"

भोड़ी दीपश्याम ~~अपने~~ उनका एक अपहरण वहाँ पहुँच कर  
गाने गुम में प्रस्ताव प्रस्ताव करनी। मैं वही बात अपने मोहरी  
के मैं भारतीय प्रान्तिकारियों पर लिखता हूँ और नेताजी पुमानन्द को  
ले लिया। मैं तबप बटोरने गले आया हूँ। वह अपहरण  
बाद-बाद अपने गुप्त कोट की अहरी जेब में हाथ डाल कर कुछ  
जलजला था। मुझे एक हुआ दिखती। अपने अपनी जेब में पिसी ल  
तो नहीं। सब छोड़ा और मुझे अलग निश्चाना तो नहीं बलाया  
-पाहता। विमान में सजाकर ले गया मुझे कुछ सह्यात्रिपाने  
वताया था कि वहाँ के अन्दर कोई प्रान्तिकारी संस्था है और अपने  
वर्तमान पिता का तबता पकड़ देने की चुनौती दी हुई है। मैं  
विचार करने लगा कि कहीं यह जाती गुम पर यह शक तो  
नहीं कर रहा कि मैं वहाँ के प्रान्तिकारियों के साथ सम्बन्ध  
निर्धारित करने आया हूँ। और अपहरण ने गुम में यह तो प्रस्तावी  
कि मैं भारत के दिन-दिन प्रान्तिकारियों पर तुलना के लिए  
पुकारूँ, अपने एक विभिन्न प्रश्न गुम में किया -

"क्या आप भारत की किसी प्रान्तिकारी पार्टी के सदस्य हैं?"  
मोह उतरा -

"मैं तो एक शास्त्रीय प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रवक्ता हूँ।  
मैं किसी प्रान्तिकारी-पार्टी का सदस्य नहीं हो सकता हूँ। और  
जहाँ तक मैं जागता हूँ कि इस समय भारत में किसी-  
प्रान्तिकारी पार्टी का अस्तित्व नहीं है। वहाँ सत्ता के विपक्षी-  
दल अलग हैं, पर प्रान्तिकारी-दल नहीं।"

और अपहरण ने मेरा कंज का और पकड़ पकड़ा प्रस्ताव। अपना  
निर्णय सुनाते हुए अलग भेजा -

"हम आपको तबप बटोरने की ~~अपने~~ अनुमति तो दे रहे हैं, पर हमसे

हो जाते हैं।

- मैंने अपनी शर्तें पूर्यो तो आपने बताया -

"हमारी पहली शर्त तो यह है कि आप किसी ऐसी जगह पर प्रेम नहीं करेंगे। आपने लिए परिवार की जवाबदाारी अपने करेगी, लेकिन आपका पूर्ण प्रेम ही हमारे अनुशासन में रहना पड़ेगा।"

आप आपसे की यह शर्त सुनकर मुझे कुछ अचूक लगा तो वह समझा कि मैं हरकती मेहनत की तरह नगर-भ्रमण करूँगा। मैंने अपने अनुशासन में रहने की बात को ध्यान में रखा और इसी शर्त के विषय में पूछा तो आपने बताया -

"आप रंगून नगर में केवल एक स्थान चुन लीजिए, वहाँ वही स्थान आपका निवास होगा, दूसरा नहीं।"

यह शर्त मुझे कुछ विचित्र लगी थी। मैंने उसे बताया कि मैं वह भवन देखना चाहता हूँ जो कभी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का निजिस्ट्री-हेडक्वार्टर रहा था। आठवाँ तो एक प्रमाण भी है टेलिफोन भवन। बड़ी देर में ही मुझे वही जगह बता दी गई। मुझे आश्चर्य में डालने की कोशिश की गई। जब मैं उसमें पहुँचा तो मेरे सामने लकड़वाली बस्ती निकल निकल कर आई एक फुल्लि-इन्फोर्मेटर मशहूर का रिवाज लेकर मेरे सामने ही बैठा। मुझे उन लोगों का यह व्यवहार बड़ा विचित्र लगा, पर मैं वहाँ ही बसा जाता था। मुझे लेकर फुल्लि की लोरी चलती।

कुछ देर चलने के बाद एक बड़ी इमारत के सामने गाड़ी रुकी और मुझे बताया गया कि किसी लड़के यही सुभाषचन्द्र बोस का निजिस्ट्री हेडक्वार्टर था। मैं गाड़ी से नीचे उतरा और बड़ी लकड़वाली इमारत में अंदर जाते-जाते देखता रहा। मुझे अचूक अनुभव को अनुमान नहीं आता। उन इमारतों के दोबारे मेरे मन में ये विचार उभरते-थे कि नेताजी के आवा-गमन में यहाँ को किसी परिवार लोग रहें। यह विचार कि नेताजी के चरणों से निकलने वाले मिट्टी भारत में जाकर अपने सिन्धु की दिवाडेंगा, मैंने वहाँ ही

एक मुन्ही मरिंदी उठा ली। ज्यों ही मैंने मिन्ही उठाई, मैंने  
तेरा काम धुनिया इन्तफेकर र मेरी ओर लपका और उतने  
मुन्हां सिन्ही धोका देने की लिए कहा। मैंने वह मिन्ही नहीं  
ले ली। इतना वह इन्तफेकर तेवर बदल कर मुन्हां ले ली।

“मिन्ही केक कीजिए, आपने हमें कपन दिया है कि  
आप हमारे कामधायन में रहेंगे।”

मैंने अपने दुबारा कहने पर वह मिन्ही केक की ओर भेड़ी-नी  
रजा जो मेरे हाथ में लगी रह गई थी, उसे अपने हाथ में  
लगाकर इन्तफेकर की ओर मुवातेव हुआ और कहा -

“मिन्ही जैसी मामूली चीज भी आप मुन्हां ले जानेंगी  
अमुमति नहीं दे रहे, इसका क्या कारण है ?”

मेरे इस प्रश्न को सुन कर धुनिया-इन्तफेकर का चेहरा कुछ  
तमतमाया और अपने बड़ा हीका उत्तर मुन्हां दिया -

“मिन्ही को मामूली चीज आप हिन्दुस्तानी समझते होंगे,  
हम लोग नहीं। जब आप लोग आपने ही देश की मिन्ही को  
कट नहीं कर रहे, तो हमारे देश की मिन्ही को क्या कट  
करेंगे।”

यह सीला उत्तर सुन कर मेरे कानों को कड़ि मड़ गए।  
मूल मेरी ही थी जो मैंने मिन्ही को मामूली चीज कह  
दिया। अचानक मैं जानता था कि मिन्ही महत्वपूर्ण  
बात होती है, लेकिन मामूली शब्द का प्रयोग तो मैंने  
इसलिए किया था कि उसे प्राप्त करने के लिए कोई मूल्य  
पुछाया नहीं पड़ता।

मुन्हां उस स्थान में भौंटा कर गिमान-लपका पहुँचा  
दिया गया। मेरी कल्पना अतीत की ओर दौड़ने लगी कि  
किर पक्का मिन्ही की लाज रखने के लिए भारतीय क्रांतिकारी  
ने फाँसी को पन्दे-दूसरे की। तीनों पर गोमियाँ लाई।  
अगर शहीद अशफाक-उल्लाहों का वह और मुन्हां शायद कागसा  
जैसे फाँसी को पूरे अपने कहा था -

“कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो बस यह -  
रखते कोई जरा भी लाक-वहन कोकन में।”

जैसे राजनीति प्रभाव नें प्रणव-इंद्रजली

जब मैं दक्षिण-पूर्व-एशिया में देशों की यात्राया आ तो  
राजनीति का एक सप्ताह १३३ एफ ० एफ आयरर में एक खुला हुआ  
परिचय-पत्र ले जाता था। श्री आयरर ने राजनीति की प्रौढी में निरंतरता  
में हुनान की प्रसारण विभाग की मंत्री को। ने राजनीति की-  
वस्तु निरंतर थी। श्री आयरर (अब स्वर्गीय) उन दिनों लंदन  
में रहते थे, जब उन्होंने मुझे हुनान पत्र दिया। वह पत्र था -

२० नवम्बर १९५६

चरित्रों के

लंदन २०

२६-१०-६६

### हर किसी के लिए

~~उत्तम, मध्यमपदेश ने धार्मिक-शिक्षा प्राप्तिकाल के लिए -~~  
~~समय के अनुसार~~

उत्तम, मध्यमपदेश ने धार्मिक-शिक्षा प्राप्तिकाल के लिए  
श्री एफ ० एफ ० आयरर ने राजनीति प्रभाव-तन्त्रों और आचार्य-हित-  
कोष पर प्रकाश-लेखन के लिए तन्त्र-संस्करण हेतु विदेश-गता  
पर निरंतर रहे हैं। श्री आयरर ने बहुत ही प्रशंसा योग्य काम  
आपने हाथ में लिया है, इसलिए जिन्हें किसी के पास भी है  
तन्त्र हो, वे उन तन्त्रों को भी निरंतर देकर उन्हें अनुग्रहीत  
करें।

लंदन

(एफ ० एफ ० आयरर)

प्रमुख प्रकाश मंत्री

अन्वय-आचार्य हित-संस्कार

(१९६३-१९६५)

मैं विदेश में भी गया, श्री आयरर ने इतिहास को-  
दिया देने का मुझे बहुत महत्व दिया गया और तन्त्रों के  
संस्करण में मुझे हर प्रकार की सहायता प्रदान की गई।  
अंतर्गत वह एक अत्यन्त-आधुनिक और अत्यन्त सज्जन थे, और  
मैं उनके एक मंत्री द्वारा निर्माते गए पत्र को बहुत आभार

महत्वा सिद्धा, जितना किसी देश को आली भेदभाव को सिद्धता  
है। इस पत्र को प्रभाव की एक पट्टना नहीं उद्घाटित कर रहूँ -

जब मैं भारत में अपनी यात्रा के प्रारंभ में लॉन्गवॉश पहुंचा तो  
आने के लिए तैयारि दूरिष्ट लॉन्गवॉश के व्यवस्थापक को नमस्कार दिया।

उस पत्र को पढ़ कर वह बहुत प्रभावित हुआ और बोला -

"मैंने तैयारी के बहुत निकट ही दर्शन किए हैं और  
आपकी ओपनकी वाणी सुनने को मैं भाग्य को शुभ मानता हूँ। मैंने  
ही आपकी देश में सुभाष चंद्र बोस को जिन में एक प्रभाव नेता दिख  
है। यदि मैं आपकी कृपया से सेवा कर सका तो मैं स्वयं को  
बहुत भाग्यशाली समझूँगा।"

-मैंने लॉन्गवॉश के व्यवस्थापक से एक चीनी कुशाधीन की भोंग  
को और अपने एक कुशाधीन से लिया। कुशाधीन दिया। वह अपनी  
चीनी भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा जानता था। उस  
चीनी कुशाधीन से मैंने अंग्रेजी में बात-चीत की। मैंने उसके  
सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह चीनी भाषा के कुछ कविता  
से मेरी मुलाकात कराए। वह गया और जोड़ी देर पछ-पछ  
दो अलग-चीनी कविताओं को लेकर आया। बात-चीत के बाद मैं  
उस चीनी कविता से प्रभावित हुआ -

"वह कविता तुमसिद्धि समय का जब सन् १९४२ में भारत  
और चीन के बीच युद्ध छेड़ दिया। उस समय हमारे देश में आपकी  
देश को अक्रान्त माना था। हमारे देश के कविता में उस समय  
आपका देश को विरुद्ध बहुत ही कविताएँ मिली थीं और विशेष  
रूप से मैंने हिन्दी भाषा में चीन के विरुद्ध कई कविताएँ मिली  
थीं। यह आभासिक है कि आप लोगों ने जो हमारे देश को  
लेफ्ट के चीनी भाषा में कविताएँ मिली हैं। मैं नहीं समझता कि  
आप लोगों ने हमारे देश को अक्रान्त मान कर हमें कोत होना  
में समझता है कि हम लोग एक-दूसरे से कविताएँ सुनें। तब  
तब से मैं आप लोगों की कविताएँ सुनकर यह जानने का हवा  
है कि आप लोगों ने हमारे धर्म की तरफ से विशेष प्रकट  
किया है।"

मेरी बात सुन कर उन लोगों को चहरो पर कृतज्ञ मुद्रा



सेल गड । एयर स्वीकरेडि करके ज्ञान पर उभरने का तो नि-  
ला लोग तो अभी सोचिए हैं, तो हमारे विरुद्ध जाने में न शिष्टता  
की कविताएं मिलने लगीं। उन्हें प्रताप राणा कि वे विरुद्ध कविताएं  
नहीं लोकार्थ जाते हैं, तब किसी बगीचे में बैठकर कविताएं सुनने-  
सुनाने को कार्यक्रम होगा। वे लोग चले गए। मैं अपने कमरे  
में आकर कुछ पढ़ने लगा।

कुछ देर बाद वे लोग एक जीप में आए। इस बार उनकी  
संख्या घट-घ थी। आते ही उन लोगों ने होटल का मैनेजर से मेरे  
दारे में पूछा। होटल के मैनेजर ने तब आए हुए व्यक्तियों को  
देखा तो वह आश्चर्य में भर गई। मुझे बुलाते या  
उन लोगों को मेरे कमरे पर पहुँचाने के बजाय अपने बियर की  
कह दिया कि भारतीय कार्य महासंघ की कामी आमोबजार समिति  
निकल-आए हैं और तीन घण्टे पश्चात् लौटने को कह गए हैं। शी-  
तरत उठते उठते भौटा दिया। वे लोग मुनमुनते हुए चले गए।  
उनके आने के पश्चात् होटल का मैनेजर दबे पाँव मेरे कमरे में  
पहुँचा और बोला -

“नमो आपने कुछ लोगों को यहाँ मिलते हैं। लिए बुलाया था?”

“हाँ, मैंने कुछ-कीमी कवियों को बुलाया था।” मेरा उत्तर था। शी-

पर वह कहते लगे -

“जो लोग आपकी तलाश करते हुए यहाँ आए थे, वे पैसेवर मुठ्डे,  
अपहरणकारी और क्रांतिलोग थे। अगर आप उनके साथ कहीं बाहर  
चले जाते तो इस होटल में लौट कर नहीं आ सकते थे। आप  
भारत की वापिस आ ही नहीं सकते थे। हाँ, हाँ, हाँ। कि न  
लोग आपकी गार डालते या कुछ राजनीतिक अंशों की प्रति  
को लिए आपकी अपनी कैद में रखते। आप तो अपनी कार्य  
आए हैं, इसीलिए मैंने आपको प्रति अपना दर्ज पूरा कर दिया।  
आप तीन घण्टे के पहले मेरा लौट ली नहीं। हाँ, हाँ, हाँ।  
दीजिए।”

तो वे लोग भी जाने लगे। मैं तब तक सोच रहा था कि वे लोग भी क्यों

की कविताएँ लिखी लैंगी। उन्होंने प्रतीत रखा कि वे विशेष कवियों  
को लोकार्थ खाते हैं, तब किसी बगीचे में बैठकर कविताएँ सुनने -  
सुनाने का कार्यक्रम होगा। ये लोग चले गए। मैं अपने कमरे  
में आकर कुछ देर पढ़ने लगा।

कुछ देर बाद वे लोग एक जीप में आए। इस बार उनकी  
संख्या चार थी। आते ही उन लोगों ने होटल के मैनेजर से मेरे  
बारे में पूछा। होटल के मैनेजर ने तब आए हुए व्यक्तियों को  
देखा। वे तब का संकित और भयभीत हो उठा। मुझे बुलाने से  
उने लोगों को मेरे कमरे पर पहुँचाने को बजाय अपने साथ ही  
कह दिया कि भारतीय भाषी महाशय को अभी आलोचनात्मक  
निकल गए हैं और तीन घण्टे पश्चात् लौटने को कह गए हैं। इस  
तरह अपने उठे लौटा दिया। वे लोग मुनमुनाते हुए चले गए।  
उनके जाने के पश्चात् होटल का मैनेजर दबे पाँव मेरे कमरे में  
पहुँचा और बोला -

“मैं आपने कुछ लोगों को यहाँ मिलते-लेने लिए बुलाया था?”

“हाँ, मैंने कुछ चिनी कवियों को बुलाया था।” मैंने उत्तरा।

पर वह कहने लगा -

“जो लोग आपको तलाश करते हुए यहाँ आए थे, वे देखेंगे कि कुछ  
अपहरणकारों और दारिद्र्य लोग हैं। अगर आप उनके साथ नहीं जाते  
चले जाते तो इस होटल में बैठकर बही आसक्त रहेंगे। आप  
भारत की वापस आ ही नहीं सकते हैं। हो सकता है कि वे  
लोग आपको मार डालेंगे या कुछ राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति  
के लिए आपको अपनी कैद में रखेंगे। आप नेताजी के कार्य में  
आए हैं, इसीलिए मैंने आपको प्रति अपना कार्य पूरा कर दिया।  
आप तीन घण्टे के पहले मेरा लौटने की नहीं लौगेंगे भी नहीं  
देजिए।”

मैनेजर की बात सुनकर मैं लपक रहा था। अपने जीवन-रक्षा  
के लिए मैंने उसका आग्रह माना और कहा -

"जैसी कठिनाई महती है, आप जानके को हाता नगर के लिए  
मेरा बुकिंग कल के फोन में है। यदि आप किसी प्रकार प्रयत्न  
करने मुझे आज के रोज में भिजवा दें तो बड़ा रहमान होगा।"

मैनेजर ने फोन बोलबाला प्रारम्भ किया और बोले/दे/प्रश्न  
मुझे बुला कर कहें -

"मैंने आपने फोन में आपने लिए एक स्थान का आरक्षण  
करा दिया है। मैं आपने सहायक को टैक्सी में आपने लाय भेज  
रहा हूँ। आप टैक्सी में आवका पढ़ते हुए जाइए, जिनसे  
सड़क पर चलते बालों को आपका चेहरा दिखाई न दे। मेरा  
सिफारिश आपने फोन में बिना कर ही वापिस आएगा।"

अपनी धृष्ट के लिए - मैंने उनका बहुत आभार माना और  
इस परिणाम पर पहुँचा कि नेताजी सुभाष के प्रभाव ने ही  
मुझे बचा लिया। मैं इस लीज पर भी पहुँचा कि  
किसी के हाथ भी बात काते समय हो। मुँह पर नहीं  
होगा चाहिए और बहुत गंज-गंज कर ही वह वापिस  
करना चाहिए।

पारमोसा की यात्रा की-

संभलौं से को हाता पहुँचने के पश्चात् मैं आपाग की  
रख धाती टोकियो पहुँचा। आपने आपाग-प्रवास में मुझे  
नेताजी सुभाष से सख्त बन्धित करनी सिफारिश किया। उनसे  
दुर्लभ चित्र भी मुझे वहाँ मिले।

-मेरे पास पारमोसा जाने के लिए पासपोर्ट नहीं था। आपाग  
निरकार के दो दिवस विभाग में मैंने सहयोग के लिए प्रार्थना  
की। उन लोगों ने मेरा गुल पासपोर्ट आपने पास रख लिया  
और एक अफवाइ पासपोर्ट पारमोसा के लिए बना दिया।  
पारमोसा से लौटने पर मुझे अफवाइ पासपोर्ट वापिस  
करने अपना गुल पासपोर्ट प्राप्त करना था। इस प्रकार  
मैं पारमोसा की यात्रा संभव कर सका। वहाँ भी मुझे  
नेताजी के बहुत से चित्र मिले। नेताजी ने सख्त बन्ध से मेरी

अपना विपरीत को हमारे दिशा में खींचे - सुभाष 'आत्मत पुस्तक' में लिखते हैं / मेरे लिए सुभाष-यात्रा एक बहुत बड़ी तपस्व-यात्रा थी । मेरे जीने का पापक की हानि के नाम पर हमारे लिए अपने स्वर्ग को इतने देशों की वास्तुगत से यात्रा करना तो सचमुच ही बहुत लोभ की बात थी । अब मुझे नेताजी सुभाष का कलम उठाना पड़ेगा /

मेरी कलम और मेरे कदम

नेताजी सुभाष ही मेरा लगभग सन् १९४१ से ही रहा है। उस समय उन्होंने देश की आजादी की लोच में भारत छोड़ो का । जब वे कलकत्ता स्थित अपने घर से भाग्य हुए, तब मेरे बाल-मन ने ज अपने को ही-ही कायम रखा की थी । एक आश्चर्यपूर्ण भीषण कि नहीं 'उनकी लोच करके अंग्रेजों ने उनको सतम करके उन्हें विजयवादा आश्रय गेहरेड़ रखा है । उस समय हम लोग यह सोचने की नहीं निकले थे कि सुभाष बाबू इतने ऊँचे विजयवादी निकले थे । उनसे लगभग निरंतर बढ़ता ही गया । नेताजी-पक्ष पर पहिले मेरे कदम उठे और बाद में कलम । फिर कलम और कदम दोनों ने एक दूसरे का हाँक दिया । नेताजी का मेरी पहली कृति थी 'नेताजी के सपनों का भारत' ।

नेताजी के सपनों का भारत

मदमजी शं पुस्तक में मैंने यह बताने का प्रयत्न किया कि नेताजी के विचारों-भावों को कौन सा चित्र चित्रित था और उस चित्र में वे कौन कौन से रंग भरना चाहते थे । नेताजी सुभाष में यह विशिष्टता थी कि भारत को एक ही कानून के लिए शारीरिक, भाषाई और जातीय रूप से हमेशा सक्रिय रहे । देश की आजादी को आतुरता से और कुदृष्ट हो-वर्त ही नहीं रहे । भारती भारत के विषय में जो कुदृष्ट उन्होंने सोचा, ओवे हमेशा किसी न किसी प्रकार से करते रहे । डॉ. विद्या का जो कुदृष्ट उन्होंने कहा और जो कुदृष्ट उन्होंने संकलित किया, वह सब मैंने इस पुस्तक में दिया है । इस विषय में नेताजी ने एक बहुत ही गहरा-गर्मित भाषाण लोकहित-विश्व-विस्तार में दिया था । मैं भाग्य है आपने आपन-जमानों

एक भाषण सुनने मिल गया और उनके समावेश में नेताजी को -  
"सबको जो भाषण सुनने बहुत उपयोगी बन गई।

### नेताजी-सुभाष दर्शन

नेताजी-सुभाष पर गदगदी मेरी यहूदारी पुस्तक थी। वास्तव में यह नेताजी के तीन सौ चित्रों का एक पुस्तकालय था। इनके पहले छोटो देश में नेताजी के चित्रों का कोई अलगाव प्रकाशित नहीं हुआ था। मेरे मन में यही वास्तव थी कि देश को इतने महान नेता की इतनी उपेक्षा क्यों। इनके प्रकाशन के लिए भी मैंने प्रकाशकों से संपर्क स्थापित किया, क्योंकि यह आर्थिक व्यवधान कार्य था। हमी और से निराशा मिली। एक प्रकाशक ने तो यह लिखित भी भी-पुस्तक की -

"हमें खेद है कि नेताजी सुभाष पर कोई भी पुस्तक प्रकाशित करने में हमारी कोई दिलचस्पी नहीं है।"

जी जन्म गया इस उत्तर को <sup>पढ़</sup> कर। उत्तमना सरल-पीछार जो ही पड़ा और <sup>मुझ</sup> मुझने भी पड़ा। एक उदाहरण पर्याप्त होगा -

### नेताजी से दो-दो बातें

पुस्तकें तो छपवाली और काफी आर्थिक पैसा लगा कर, लेकिन पार बड़े तो बिकती नहीं। इस बार निलाला अपने ही प्रदेश के सुदूर अन्तर्गत में। पुस्तकों के भारी-भारी गढ़े लाद कर मैं बिनातफर आ पहुँचा। जब कुली पर सामान लदवाकर (स्टेशन से) बाहर आते लगा तो रेलवे के एक आधिकारी ने टोक दिया -

"सामान आधिकार है, क्या बुकिंग करा लिया है?"

नहीं, मैं मेरा उत्तर मिलने पर उत्तरे लगेज तुलबाने का आग्रह किया। कुली ने मुझसे चारिसे कहा कि बाबू साहबजी - जब मैं कुछ पैसा खर्च देते हैं सामान हाई में बिकर जाएगा, अन्यथा बहुत आर्थिक खर्च हो जाएगा। मेरी आत्मा ने दिव्य देना गवाश नहीं किया। सामान तोला गया और लगेज-कुलिया गया। जब लगेज का भुगतान हो-चुका तो मेरे पास ~~कोई~~

मैं तीन सप्ताह पन्द्रहवाँ दिन ~~हो~~ चौथे था। जब मैं लॉज में पहुँचा तो मेरे पास केवल पञ्जीत दाँत की पूँजी थी। लॉज के व्यवस्थापक ने आग्नि-राशी माँगी, लेकिन सम्मान से वह सम्मान गया। उस लॉज में केवल छह बने की व्यवस्था थी, भोजन और चाय की नहीं। रही-सही पूँजी मैंने चाय पीने में खर्च कर दी। वह सुझाव की संध्या थी। भोजन के लिए मैंने नहीं देा कोई चिन्ता महसूस नहीं की। मन को यह कह कर सम्मान लिया कि शाहीदों के नाम है एक समय का प्रतीक ही नहीं। मैं आश्चर्य था कि अगले दिन विद्यार्थियों में विद्यार्थी-गण पुस्तकें बँटि देंगे ही और मैंने अपने पाठ्यपत्र का भोजन कर लेंगे। अगला दिन अर्न्त शनिवार आगया। वारु वज्र जब पहले विद्यालय में पहुँचा तो मानस हुआ कि उस नगर में हमी शिक्षण-संस्थाएँ शनिवार को सुबह लगती हैं। जब विद्यालय बन्द मिले तो अपने लिए भोजनालय भी स्वाभाविक रूप से बन्द ही था। अपरिचित स्थान पर जिसने कहा कि उच्चार विद्या है। गालियों ही बातें को मिलती। नगर में अपने विभाग को कुछ परिचित मित्र भी थे, पर स्वार्थीता के गते उच्चार भौगने उनके पास नहीं गया। शनिवार को पूरा दिन भी कोरा ही निकल गया। संध्या समय दो-एक पुस्तक-विद्युताकारों को अपनी पुस्तकें दिखाई, पर वे उनके किसी काम की नहीं थी।

शनिवार आगया। सरकारी कर्मचारियों को यह दिन कोरा लगता है, पर मेरे लिए तो पहाड़ जैसा लगा। लॉज के बाहर नहीं निकला। रात आगई, पर नींद नहीं आई। जिसने तीन दिन से नहीं खाया है, उसे नींद कैसे आ सकती थी। यदि भोजन करने की सुविधाएँ प्राप्त होने पर भोजन न किया जाता तो उतनी पीड़ा नहीं होती। एक बार केवल यह परिदृश काने ने लिए कि अनशन में क्या अनुभव होता है, मैं आठारह दिन का

अनशन केवल जल पीकर कर-मुक्ताओं, लेकिन इस-  
कार में तीन दिन से भी दौलत पड़ गया था। पीड़ा का  
मुख्य कारण तो यह था कि भोजन करने की (ली) पर-  
नहीं थी। भूख नहीं काट रही थी, आमाशक का एहसास काट  
रहा था।

जब तीस गलीं आईं तो बालकों में नेताजी आग  
में ने उन्हें भी भरकर बांटें की। उनसे जेरी जो बांटें हुई,  
-यह मिल रहा हूँ -

नेताजी : कहां ब्रैसी गुजर रही है ?

मैं : मज्जी में हूँ नेताजी ! बालिकाएँ इस भूख की जो  
आपको दर्शन तो करा दिए।

नेताजी : भूख का पेट दर्द निहाल नहीं, रोटी से भरता है और  
अपनी रोटी को साफ तो खाने तुम्हीं ने बन्द किया  
है, जो मुझ से इश्क लगा बैठे। मैं अभी भी  
कहता हूँ कि तुम यह चक्कर खाओ और उन दरों पर  
चलो, जिस पर चल कर लोग रोजी-रोटी और  
नाम कामा रहे हैं।

मैं : मैं यहाँ आपसे सहमत नहीं हूँ। एक ज्ञान पर आप  
ही तो कहेंगे - आदमी केवल रोटी खाकर ही नहीं  
जीता, जीने के लिए उसे आदर्श और सिद्धान्त भी  
चाहिए।

नेताजी : मुझे पेट है कि एक प्राध्यापक छेते हुए भी तुम मेरे  
कमन का ठीक अर्थ नहीं लगा सकते। मेरे कमन का  
सही अर्थ यह है कि जीने के लिए आदर्श को केवल  
रोटी ही नहीं, रोटी के साथ-साथ आदर्श और सिद्धान्त  
भी आवश्यक हैं। और कि इसको आते-रितों में  
अपना साथ देने वालों से यह भी तो कहो था - इस  
समय में तुम्हें भूख, प्यास, विपत्ति, कष्टप्रद भूख  
और मौत के सिवाय और कुछ नहीं दे सकता।  
मैं तुम्हारे भी कहता हूँ कि मुझे अपना के पहल  
रुके भी नहीं।

कारण तो यह था कि भोजन करने की लिए पैसा नहीं था। भोजन नहीं खाते रही थी, आमाता का एहसास काट रहा था।

जब नींद नहीं आई तो बच्चों में नेताजी आगए। मैंने उनसे भी परकरवाते की। उनसे मेरी जो बातें हुईं, यह लिख रहा हूँ -

नेताजी : कहां बैसी गुजर रही है ?

मैं : मज्जे में हूँ नेताजी ! बालिहारी इस भूख की जो आपकी दर्शन तो करा दिए।

नेताजी : भूख को घेरे दर्शन है नहीं, रोटी से भरता है और अपनी रोटी को खाते तो स्वयं तुम्हीं ने बन्द किए हैं, जो भुख है इशका लगा बैठे। मैं उम्मीद भी कहता हूँ कि तुम यह चक्कर छोड़ो और उठ कर पर चलो, जिन पर चल कर लोग रोजी-रोटी और नाम कमा रहे हैं।

मैं : मैं यहाँ आपसे सहमत नहीं हूँ। एक ज्ञान पर आप ही ने तो कहा था - आदमी केवल रोटी खाकर ही जीता, जीने के लिए उसे आदर्श और सिद्धान्त भी चाहिए।

नेताजी : भुख खेद है कि एक प्राध्यापक होते हुए भी तुम मेरे कलन का ठीक उर्ध्व नहीं लगा सक। मेरे कलन का सही उर्ध्व यह है कि जीने के लिए आदमी को केवल रोटी ही नहीं, रोटी के साथ-साथ आदर्श और सिद्धान्त भी आवश्यक हैं। और फिर इसके अतिरिक्त मैंने अपना साथ देने वालों से यह भी तो कहा था - इस समय मैं तुम्हें भूख, प्यास, विपत्ति, कष्टप्रद भूच और मौत के सिवाय और कुछ नहीं दे सकता। मैं तुम्हारे भी कहता हूँ कि भुख अपना के पहलो तुम्हें भी सैन्य लेना चाहिए था कि आध्यात्मिक



रत्न से यं उपता तुम्हें भी मिल सकते हैं

मैं : नेताजी! न मुझे आप ही शिवायत है और न-  
देखा है, और फिर आप तो प्रतीक मानते हैं। देश के  
संदर्भ में मुझे जो कुछ कहना होता है, वह मैं कभी  
भगतसिंह, कभी चन्द्रशेखर आजाद, कभी सुभाषचन्द्र बोस  
और कभी किसी अन्य क्रान्तिकारी को साधन बनना  
कर कहता हूँ। जब भगतसिंह ने देश के काम में  
कानपुर में फेंकी लगा-लगा कर आवका के-के  
और, तो क्या फेंकी लगा कर फुलकों के-के से सेरी शान  
~~किसकेरी के-के~~ में बड़ा लग जाएगा? जब  
चन्द्रशेखर आजाद ने बम्बई में अपनी पीठ पर  
बैले लाद-लाद कर फेंके और तो क्या मैं अपनी ही  
फुलकों के बन्डल लेकर नहीं चला सकता? और  
जब आप स्वयं देश-विदेशों और वनों-पर्वतों में  
कई-कई दिनों तक भूत-प्राण भटकते रहे तो क्या  
आपका रहस्य शौक-परिया भी? जब आप अपने  
पक्ष से विचारित नहीं हुए तो किसी और को अपना  
शासन चलेइने का उपदेश क्यों दे रहे हैं?

नेताजी : मैं तुम्हें पक्ष से विचारित करने नहीं आया  
हूँ, मैं तो यह कहने आया हूँ कि -

इतिहास-इश्क है, सेता है क्या?

आगे-आगे दोपना, होता है क्या?

हम लोगों में ये बातें चल ही रही थीं कि तींद का  
भोका भोका आया और उल्टे कहा -

“मुजाकात का समय समाप्त हो गया है।”

- और नेताजी से मेरा दिव्दोह हो गया। उनके जाते ही-  
मेरे सामने रोटियाँ आ गईं - ढेर सारी रोटियाँ - थालों में लजी  
हुई रोटियाँ और वृक्षों से लटकती हुई रोटियाँ। उनके  
साथ मैं जी भरकर ओले-मिचौनी बेचता रहा - बसक

जब तब कि नीचे की - चाय वाली दुकान के दोबारे में दरवाजा  
गली' बटवाराय । मैं भड़पड़ा कर उठा तो अपने पूछा -

"बाबूजी, आपकी लिए चाय आऊँ ?"

"मैं - चाय नहीं पीता ।" मेरे मुँह से निकल गया ।

"आपने तीन दिन पहले तो हमारी दुकान पर चाय पी ली ।" उमने  
तर्क दिया । मैं उसे ब्रूफे समझाता कि मैंने तीन दिन से चाय  
नहीं पी ली । झुंघर कह कर उसे टाल दिया ।

सोमवार ने अपने आगमन की सुबह-सूचना मुझे दे दी थी ।  
किसी प्रकार दोपहर तक का समय निभाया गया । प्रार्थना  
खेले से पहले ही एक विद्यालय में पहुँच गया । प्राचार्यजी  
से मिल कर उन्हें अपनी पुस्तकें दिखाई । उन्होंने बहुत  
सज्जनता का परिचय दिया । बोले -

"एक अपने पुस्तकालय के लिए भी आपकी पुस्तकों का एक  
सैट खरीदेंगे का ? मुझे विश्वास है कि हमारे विद्यार्थी और  
अध्यापक गण भी आपकी पुस्तकें अवश्य खरीदेंगे । हमारा  
आप है प्रार्थना है कि आप हमारे बच्चों को अपनी राष्ट्रीय  
कविताएँ सुना दें, जिससे राष्ट्रीयता में झुंघर होकर उनमें पैदा  
हो ।"

यह प्रस्ताव मेरी कठिन परीक्षा के रूप में उपस्थित हुआ ।  
बड़ी कठिन परीक्षा थी । प्राचार्यजी को क्या मामूली गत तीन  
दिनों से मुझे अन्तर्गत दर्शन नहीं हुए । मैं अपनी स्थिति  
बता कर उनकी सहानुभूति का आभार नहीं होना चाहता  
था । उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । उन्होंने प्रार्थना-सभा  
के पञ्चांग शुरू में प्रत्येक परीक्षा के बच्चों को दिखा दिया । मुझे  
बिना गाइक के सहारे खुले मैदान में बहुत ऊँचे स्वर से  
कविता-पाठ करना पड़ा, जिससे दूर सीधे बैठे हुए बच्चों  
को भी सुनाई दे सके । इस परीक्षा में मैं बहुत ही खरा  
उत्तर । शहीदों पर ज़िल्ली गई कविताएँ सुनते से सभी  
को बहुत आनन्द आया । एक बार रक्त लगे जाने पर  
आगे पीछे नहीं धाँड़ते । मुझे काफी आनन्द कविताएँ

मुन्नाली पड़ी। मेरे कविता-पाठकी एक विशेषता होश रहती है -  
 उनके शरीर की बच्चों के विद्यालयों में भी मुझे अनुशासनहीनता  
 या कभी सामना नहीं करना पड़ा। यही बात कवि-सम्मेलनों  
 में भी हुई है। मुझे स्मरण नहीं कि कविता-पाठ करते  
 समय कभी मुझे हट किया गया हो। बाद में तो मैंने  
 कवि-सम्मेलनों में जाना ही छोड़ दिया और आगे बढ़ी -  
 आलोचना या भाषण देना प्रारम्भ कर दिया। तीन-तीन  
 घण्टा-चार घण्टे तक ओजस्वी स्वर में चार-प्रकार भाषण  
 देते हुए न कभी मैं थका हूँ और न कभी मेरे श्रोता गण।  
 एक आत्मप्रेम का उल्लेख कर रहा हूँ -

मध्य प्रदेश के बतूल नगर में मेरे भाषण का आयोजन किया गया। मुझे पहले जिनसे <sup>(अब लगी है)</sup> आहिल भारतीय नेता श्री राजनारायण को भाषण हुआ। आकर्षण के केन्द्र के ली में) लगभग डेढ़ घण्टे तक वे बोले। उनसे पश्चात् मेरा नाम पुकारा गया। मैं भयभीत था कि इतने बड़े नेता के पश्चात् मुझे क्या सुनेगा। मुझे विषय दिया गया था - "भारतियों-स्वाधीनता संग्राम में शक्ति कारियों की भूमिका" भाषण ~~का~~ हॉल में आयोजित था। मैंने बोलना प्रारम्भ किया। अभी मुझे बोलते हुए १५ मिनट ही बीते थे कि हॉल की बिजली चली गई। माइक भी बंद हो गया। मैं ऊँचे स्वर में लोगों से पूछा -

“यदि आप लोग पान्थ हों तो बिजली आने तक मैं  
अँधरे में ही बोलता जाऊँ ?”

लोगों ने अपनी सहमति प्रकर की और मैंने भाषण देना जारी  
रखा। मैंने पाँच राजनारायण और कच्छपत महोदय से काफ़ी  
समय बिताया (ब्यापक प्रसन्नता) (समा-पन)। क्रांतिकारियों के दलितानों  
के उदाहरण और अपनी कमितानों के उदाहरणों को समावेश करने  
में विषय का विवेचन करता रहा। पूरे एक घण्टे तक मैं  
अपने से बोलता रहा। इन्कीय न तो बिजली काई, न कोई  
माल्टेन या मोमकानियाँ लाया। वह जानते हैं, लेकिन वे

को कभी सामना नहीं करना पड़ा। यही बात अति-सज्जनो  
में भी हुई है। मुझे स्मरण नहीं कि कविता-पाठ करते  
समय कभी मुझे हट किया गया है। बाद में तो मैंने  
कवि-सम्मेलनों में जाना ही छोड़ दिया और आर्तिकारी -  
आन्दोलन पर भाषण देना प्रारम्भ कर दिया। तीन-तीन  
घण्टा-घण्टा पण्डे तक ओजस्वी स्वर में चारा-प्रवाह भाषण  
देते हुए न कभी मैं थका हूँ और न कभी मेरे श्रोता गण।  
एक आनुभव का उल्लेख कर रहा हूँ -

मध्यप्रदेश के बैतूल नगर में मेरे भाषण का आयोजन  
किया गया। मुझे पहले जितने जेसू आर्चबिशप भारतीय नेता  
श्री राजनारायण <sup>(अब लगी है)</sup> का भाषण हुआ। आकर्षण के केन्द्र वे ही थे।  
लगभग डेढ़ घण्टे तक वे बोले। उनके पश्चात् मेरा नाम बुलाया  
गया। मैं भयभीत था कि इतने बड़े नेता के पश्चात् मुझे  
कौन सुनेगा। मुझे विषय दिया गया था - "भारतियों-स्वधीनता-  
संग्राम में आर्तिकारियों की भूमिका" भाषण एक ~~हॉल~~ हॉल में  
आयोजित था। मैंने कोसना प्रारम्भ किया। अभी मुझे  
बोलते हुए १५ मिनिट ही बीते थे कि हॉल की बिजली  
चली गई। माइक भी बंद हो गया। मैं अँधेरे स्वर में  
लोगों से पूछा -

"यदि आप लोग पतन्य करें तो बिजली आने तक मैं  
अँधेरे में ही बोलता जाऊँ?"

लोगों ने अपनी सहमति प्रकट की और मैंने भाषण देना जारी  
रखा। मंच पर श्री राजनारायण और ऊपर से महोदय से काफ़ी  
समय बिचासच भरा हुआ जमा-भवन। आर्तिकारियों के कल्लिदाओं  
के उदाहरण और अपनी कविताओं के उदाहरणों का समावेश करने  
में विषय का विवेचन करता रहा। पूरे एक घण्टे तक मैं  
अँधेरे में बोलता रहा। इच्छीय न तो बिजली आई, न कोई  
माल्टेन या मोमबत्तियाँ लाया। एक घण्टे तक बोलने के  
पश्चात् बिजली आई। बिजली आने के पश्चात् भी मुझे

एक घण्टे तक और दो लोग पड़ा। कारीब्रम की समाप्ति पर  
मैंने लोगों से पूछा -

“क्या बात है कि अंदर से भी हॉल में है एक भी व्यक्ति  
नहीं? हुआ और मेरे माधन देवी-य आप लोगों से है किसी  
ने भी न तो बिजली बंद करने को प्रयत्न किया और न  
एक मोमबत्ती भी जला कर रही?”

इस प्रश्न को जो उत्तर मिला, वह था -

“हम लोगों से है कोई भी आपके माधन के एक शब्द  
को भी छुने बिना दौड़ना नहीं चाहते हैं। आपके उदाहरण  
और आपकी उदाहरण विशेष रूप से हमें बौद्ध रूप में ॥”

मैंने सोचा, यह विशेषता मेरी अपनी नहीं, उन  
आतिथियों की है, जिनके चरित्र भाग छुटना पसन्द  
करते हैं। क्या भी अच्छा है यदि शरीरों की आतिथियों  
की जीवन-गाथाओं को आपका प्रसार किया जा सके, जहाँ  
लोगों को अच्छे बनने की प्रेरणा मिले। लेकिन दुर्भाग्य  
तो यह है कि उन लोगों को न तो पाठ्य-पुस्तकों में  
स्थान मिला रहा है और न साहित्य में। भले उन पर  
लिखते नहीं हैं और प्रकाशक उन पर लिखा व्यापते नहीं हैं।

विषयान्तर हो गया है। शिक्षा-याचना के समय में प्रकरण को  
पूरा कर दूँ, जब मिलासपुर में एक विद्यालय में तीन दिन तक  
पूरा रहने के पश्चात् भी मुझे कविता-पत्र करना पड़ा।  
कविता-पत्र अल्पान्त प्रभाव शाली रहे और मैं जितनी फुलें हैं  
उस विद्यालय में ले गया था, वे सभी बिक गईं। उस समय मेरे  
पास जो पैसे आए, उन्हें पत्र में सौच रहा था कि मैं  
फोर्ड, टारा या बिड़ला से कम नहीं हूँ।

अपने पाठकों से मैं क्षमा चाहता हूँ कि मैंने अपनी बातों  
में उनका काफी समय ले लिया है। मैं उन्हें विश्वास दिलाता  
हूँ कि ऐसा मैंने प्रयोजन नहीं किया। न तो आत्म-विकास  
ही मेरा उद्देश्य है और न सहायता या सहानुभूति का अर्जन।

लोगों की नज़रों में दयनीय हो जाने की आपेक्षा मुख्य बहुर  
होती है। इस समय तो मेरा उद्देश्य यही है कि लोग यह जान  
सकें कि राष्ट्रीय-सेवा के लिए कितना मूल्य चुकाना पड़ता है।  
श्रमा-साधना के साथ नैतिक पड़ा समय और लूंगा।

आत्मा बन्ध ली, कालेवर बन्ध दिए

लोगों का यह अनुमान होगा कि जब प्राचीनकारियों पर  
मेरे महानाट्य, लण्डन-नाट्य और ~~दार्जिली~~ पुस्तकों बाजार में हैं  
तो मेरे पास काफी पैसा होगा। उनका यह सोचना स्वाभाविक ही  
है और उम्मा यह चिन्तन सत्य भी होता, यदि मेरे ह्यान  
पर किसी व्यवसायी ने यह काम अपने हाथ में लिया होता।  
अब मैं प्रतिवर्ष कुछ नई कृतियाँ हिन्दी-साहित्य में दे रहा हूँ, तो  
इसका मतलब यह है कि मैं अभी तक लेखक बना हुआ  
हूँ। मैं तो अपने पाठकों से यही अनुग्रह करूँगा कि  
वे मुझे मदद-दुआ देते रहें कि मैं जीवन भर निर्धन बना  
रहूँ। यदि मैं जीवन भर निर्धन बना रहा तो मैं जीवन भर  
लेखक बना रहूँगा। इसके विपरीत, यदि पुस्तकों के माध्यम से  
मेरे पास पैसा एकत्र होने लगेगा, तो मैं लेखक न रह करे  
पुस्तक-विक्रेता या प्रकाशक बन जाऊँगा।

मैं उन प्रकाशकों का आभारी हूँ, जिनोंने राष्ट्रीय विषयों  
पर लिखी गई मेरी पुस्तकें प्रकाशित करने से स्पष्ट रूप से  
और बेरुकी से मना कर दिया। मैं उन पुस्तक-विक्रेताओं का  
भी आभारी हूँ, जिनोंने पुस्तकों के रूप में मेरी गाढ़े धूतकी  
कमाई के लगभग बीस हजार रुपए हजम करने मुझे गार्क  
लेखक बना रहने के लिए विवश कर दिया है। सभी  
पुस्तकें बेच कर एक भी पैसा न देने, दर्जनों पत्रों में भी  
एक का भी उत्तर न देने और मुझे चैक भेज देने के  
उत्तर हथकण्डों को मैं प्रणाम करता हूँ।

इन लोगों की विशेष कृपा का फल मुझे एक

दीपावली-पर्व पर-चलने को मिला। बहुत १९७४ की दीपावली  
भी। शहीदों को आतिथियों के पा मिलने के शौक ने  
हमें इस स्थिति तक पहुँचा दिया कि दीपावली-पर्व पर हम  
लोग दिए तो क्या, बूझा जानने की-स्थिति में भी  
नहीं थे। बैठ कर हम लोगों ने विचार किया कि क्या  
किया जाय। उधार माँगने के पक्ष में तो हम लोगों में  
कोई भी नहीं था, क्योंकि पारिवारिक स्वामीगन ने उधार का  
अर्थ भील ही बताया है। बिल्ते-बिकते पार में ऐसी कोई  
वस्तु नहीं बची थी, जो काग-चला सका। मेरी गजर  
उन दर्जनों आभिनन्दन-पत्रों पर गई जो यहाँ-वहाँ लोगों  
ने इत्तालिह दिए थे कि मैं उनकी हाई में मैं कुछ  
अच्छ काम कर रहा हूँ। वही उन्हें बेचने के पक्ष में  
नहीं थे क्योंकि वे आभिनन्दन-पत्र लोगों के स्नेह और  
प्रियता के प्रतीक थे। बहुत तर्क-वितर्क करने के पश्चात्  
यह निर्णय मंते ही दिया कि आभिनन्दन-पत्रों को  
अदर के लिये या वर्षे हुए कागज निकाल लिये जाय  
और फ्रेम और कांच बेच दिए जाय और जब स्थिति  
हीक है तो उन आभिनन्दन-पत्रों को दुबारा मढ़वा लिया  
जाय। ऐसा ही किया गया। हम लोगों ने आभिनन्दन-पत्रों  
की आत्मा क्या भी और कालेवर बेच दिए। दिवानी  
पर बूझा भीजल सका और दिए भी।

मैं यह फिस्फट कर हूँ कि ये सब बातें मिलने के  
पीछे मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि लोग मेरे प्रति सहानुभूति  
प्रदर्शित करें या मेरी कामों के सहायता करें। मैं समझता  
हूँ कि वे लोग निश्चित रूप से दूरदर्शी हैं, जिनमें हमारे  
महत्वपूर्ण विषयों पर अपनी भावना नहीं व्यक्त की।

## साढ़े पाँच हजार <sup>रुपय</sup> की चपट

नेताजी सुभाष-चन्द्र बोस पर अभी तक कुछ सिक्का भर  
 में आठ पुस्तकें लिख चुका हूँ, इनमें से मुझे स्वयं को सरे  
 पाठकों को 'नेताजी-सुभाष-दर्शन' सर्वाधिक पसन्द है। इसका  
 उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ कि 'नेताजी-सुभाष-दर्शन'  
 नेताजी के कैमरा-चित्रों का एक विशाल संग्रह है। मैगजीन  
 आकार की यह संपूर्ण पुस्तक आर्ट-पेपर पर छपी है। प्रत्येक  
 चित्र के नीचे, उसके परिचय के साथ-साथ नेताजी का  
 जीवन-दर्शन भी संक्षेप में है। आठ पुस्तक की एक प्रति का मूल्य  
 एक सौ पच्चीस रुपय है। इनके प्रकाशित होने पर विचार  
 आया कि इनके व्यापक प्रचार के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं  
 में इनकी समीक्षा करवाना चाहिए। मैंने यह भावना ही  
 मुझे हुई थी। पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा के लिए नेताजी-सुभाष-दर्शन  
 की प्रतियाँ भेज दीं। समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ  
 भेजी जाती हैं। बीच पत्रिकाओं के लिए मुझे पुस्तक की  
 चालीस प्रतियाँ भेजनी पड़ीं। एक सौ पच्चीस रुपय के लिये  
 ते चालीस प्रतियों का मूल्य पाँच हजार २० रुपये। पाँच सौ  
 रुपय डाक-व्यय के लग गए। आशा की कि भावना ही  
 मुझे हुई थी। पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा करने के कारण  
 सारे देश में पुस्तक की चूग मच जायेगी, लेकिन सर्वाधिक  
 आश्चर्य की बात आपको बता दूँ कि किसी एक भी पत्रिका में  
 पुस्तक की समीक्षा नहीं करी। पुस्तक की दो अलग-अलग  
 प्रतियाँ संपादकों के सिजी पुस्तकालयों की शान्ति बन गईं।  
 कभी-कभी कोई संपादक उन पुस्तकों में से नेताजी को कोई  
 कुछ भी चित्र अपना संस्करण छाप देता है अपने नाम  
 से छाप देता है।



में आठ पुस्तकें लिख चुका हूँ, इनमें से मुझे ख़ुश है। इनके  
पाठकों को 'नेताजी-सुभाष-दर्शन' (नवम्बर 1947) इत्यादि  
उत्पीड़न में पड़ने कर चुका हूँ कि 'नेताजी-सुभाष-दर्शन'  
नेताजी के कैमरा-चित्रों का एक विशाल संग्रह है। मैगज़ीन  
आकार की यह संपूर्ण पुस्तक आई-सेपर पर छपी है। प्रत्येक  
चित्र के नीचे, उसके परिचय के साथ-साथ नेताजी का  
जीवन-दर्शन भी संक्षिप्त है। आठ पुस्तक की एक प्रति का मुद्रण  
हल्क सा पच्चीस रुपए है। इनके प्रकाशकों सेने पर विचार  
आया कि इनके व्यापक प्रचार के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं  
में इनकी समीक्षा करवाना चाहिए। मैंने यह आग्रह भी  
कुछी हुई बीस पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा के लिए नेताजी-सुभाष-दर्शन  
की प्रतियाँ भेज दीं। समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ  
भेजी जाती हैं। बीस पत्रिकाओं के लिए मुझे पुस्तक की  
चालीस प्रतियाँ भेजनी पड़ीं। हल्क सा पच्चीस रुपए के लिये  
हैं चालीस प्रतियों का शुल्क साँच हजार रु० हो गया। पाँचवाँ  
रुपए डाक-व्यय के भरा गए। आशा थी कि आग्रह भी  
कुछी हुई बीस पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा छपने के कारण  
हारे देश में पुस्तक की धूम मच जाएगी, लेकिन स्वतंत्र  
आश्रय की बात आपको बताऊँ कि किसी एक भी पत्रिका में  
पुस्तक की समीक्षा नहीं छपी। पुस्तक की दो अलग-अलग  
प्रतियाँ संपादकों के किसी पुस्तकालयों की शान्ति बन गई।  
कभी-कभी कोई संपादक उन पुस्तकों में से नेताजी को कोई  
कुछ लिख अथवा संस्मरण छाप देते हैं अपने नाम  
से छाप देता है।

तीन खंडों में नेताजी की जीवनी

मैंने साधनापूर्ण जीवन के द्वारा मैंने नेताजी सुभाष

मुभाष की शोधपूर्ण जीवनी लिखी जाती है। उसे दत्तपत्र के <sup>अनुसार</sup> प्रकाशक न मिलने के कारण, मुझे खर्च ही उसके प्रकाशन में उठाना पड़ा। अर्न्त भाव के कारण उस संपूर्ण जीवनी को मैं तीन बर्षों में ~~दो~~ दिमागोत्तेजक प्रकाशित कर सका।

नेताजी की जीवनी के पहले भाग को नाम दिया गया 'राष्ट्रपति मुभाष-चन्द्र बोस'। कुछ लोग इस भाग को दोष कर चुके हैं। उन्होंने यह आपत्ति उठाई कि मुभाष बाबू अपने जीवन में राष्ट्रपति तो नहीं बने ही नहीं थे। इस आपत्ति का उत्तर यह है कि उन दिनों कांग्रेस के अध्यक्षों को ही राष्ट्रपति कहा जाता था। डॉ० महापीसीरामैया ने अपने कांग्रेस के इतिहास में इस तथ्य का उल्लेख किया है। मुभाष बाबू को वार कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे।

'राष्ट्रपति मुभाष-चन्द्र बोस' पुस्तक में मुभाष बाबू के जन्म लेकर उनके भारत छोड़ो तन्त्र का दृढ़ान्त आंदोलन है। पाठकों की प्रतिक्रिया है कि पुस्तक बहुत ही रोचक है और उसमें काटा और उपमा का आनन्द मिलता है।

नेताजी की जीवनी के दूसरे भाग को नाम दिया गया है - 'नेताजी मुभाष जर्मनी में'। इस पुस्तक में वे सभी विवरण मिलते हैं कि किस प्रकार नेताजी अज्जगाने-तान लेते हुए जर्मनी पहुँचे और वहाँ हिन्द स्वतंत्रता सेनानियों के सहयोग से किस प्रकार आजाद-हिन्द-सेना का गठन किया और किस कारण उन्होंने वे जर्मनी छोड़कर दक्षिण-पूर्व-एशिया पहुँचे। पुस्तक के सभी विवरण सभी देशात्मक, प्रादेशिक और शोधपूर्ण हैं।

मुभाष-जीवनी के तीसरे भाग का नामकरण 'नेताजी मुभाष और आजाद-हिन्द-सेना' किया गया है। इस पुस्तक में सभी विवरण दुर्लभ शोध पर आधारित हैं। इसमें

मे' उलझना पड़ा। अन्तर्-पानेन कारण उस (संपूर्णजीवित) को मे' हीन वण्डों मे' ~~प्र~~ दिमागित नके प्रकाशित कर सता।

नेताजीजीजीवनी के पहले भाग को नाम दिया गया 'राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस'। कुछ लोग इन नाम को दोष कर चके हैं। उन्होंने यह आपत्ति उठाई कि सुभाषबाबू अपने जीवन मे' राष्ट्रपति तो बनने वाले नहीं थे। इस आपत्ति का उत्तर यह है कि उन दिनों कांग्रेस के अध्यक्षों को ही राष्ट्रपति कहा जाता था। डॉ० पद्मावतीसरामैया ने अपने कांग्रेस के इतिहास में इस तथ्य का उल्लेख किया है। सुभाषबाबू को कार कांग्रेस के अध्यक्ष बनने थे।

'राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस' पुस्तक में सुभाषबाबू के जन्म से लेकर उनके भारत छोड़ो तक का वृत्तान्त आंकित है। पाठकों की प्रतिक्रिया है कि पुस्तक बहुत ही रोचक है और उस में लक्ष्य और उपन्यास का आनन्द मिलता है।

नेताजीजीजीवनी के दूसरे भाग को नाम दिया गया है - 'नेताजी सुभाष जर्मनी मे'।' इस पुस्तक में वे सभी विवरण मिलते हैं कि किस प्रकार नेताजी अण्णमानेताग लेते हुए जर्मनी पहुँचे और वहाँ हिटलर हिटलर के सहयोग से किस प्रकार आजाद-हिन्द-फौज का गठन किया और किस कारण ~~इससे~~ वे जर्मनी छोड़कर दक्षिण-पूर्व-एशिया पहुँचे। पुस्तक के सभी विवरण सभी आत्मक, प्रासंगिक और शोधपूर्ण हैं।

सुभाषजीजी के तीसरे भाग को नामकरण 'नेताजी सुभाष और आजाद-हिन्द-संगठन' दिया गया है। इस पुस्तक में सभी विवरण दुर्लभ शोध पर आधारित हैं। इसमें शामिल हैं आजाद-हिन्द-फौज का पुनर्गठन, आजाद-हिन्द सैन्य का तैयारीकरण, आजादहिन्द सरकार, महिला-रेजीमेन्ट

जाल-जाली का आच्छादित-वक का स्वापना। अज्ञान-  
हिन्द-मौज ने वहाँ-वहाँ रुक लिए, उसे सभी का-  
प्राणायाम वृत्तान्त इस पुस्तक में मिलता है। पुस्तक के-  
परिशिष्ट में नेताजी द्वारा अपने जीवन में दिए गए सभी  
भाषणों के शीर्षक मय तीनों को दिए गए हैं। नेताजी-  
के सैन्य-आदेश भी परिशिष्ट में सम्मिलित किए गए हैं।  
परिशिष्ट की एक दुर्लभ शोध है, लगभग दो हजार  
शहीदों की सूची।

### महाकाव्य 'सुभाषचन्द्र'

थरिय भगताहिं और चन्द्रशेखर काजाम पर महाकाव्य-  
भोजन के पश्चात् नेताजी सुभाषचन्द्र को सभी जैसी भोजनी-  
ने 'सुभाषचन्द्र' नाम के महाकाव्य की रचना की। कुच्छ  
समीक्षकों ने तो 'सुभाषचन्द्र' रचना को महाकाव्य के रूप  
में स्वीकार किया है, लेकिन कुच्छ ने इसे महाकाव्य  
नहीं माना है। 'सुभाषचन्द्र' कृति काकार में बहुत खोटी  
है और उसमें सिलसिलेवार जीवनी के आभाव में ही कुच्छ  
समीक्षकों ने उसे महाकाव्य स्वीकार नहीं किया है। इस  
पुस्तक में महाकाव्य के पुराने और नए लक्षणों का  
सम्मिश्रण है। यद्यपि उसमें चरित्रनायक की संपूर्ण जीवन-  
परतारें सम्मिलित हैं, लेकिन वे काल-क्रमानुसार नों दी  
जाकर विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत दी गई हैं। पाठकों  
को यह विचार बहुत ही अच्छा लगेगा है कि सुभाषचन्द्र  
कोर के जीवन में भारतवर्ष के विभिन्न महापुरुषों के-  
जीवन-प्रसंग आरोपित किए गए हैं। यह आशय  
सौचिंत्यता के रूप में न लेकर बहुत स्वाभाविक और  
सजीव हुआ है। जिन महापुरुषों के जीवन-प्रसंग सुभाषचन्द्र  
कोर के जीवन में आरोपित किए गए हैं, उन्हीं के नामों  
पर महाकाव्य के सर्गों का नामकरण किया गया है।

ये सर्ग हैं - १. श्रीराम सर्ग, २. श्रीकृष्ण सर्ग, ३. और अर्जुन  
 सर्ग, ४. महाकाव्य महावीर सर्ग, ५. तन्मात्र गौतमबुद्ध सर्ग,  
 ६. महाराजा प्रताप सर्ग, ७. धर्मपति शिवजी सर्ग, ८.  
 ८. श्रीगोविन्दार्जुन सर्ग और ९. सुभाष सर्ग।

मेरी कृति 'सुभाषचन्द्र' महाकाव्य है या नहीं, इस विषय  
 पर डॉ० शिवशंकर शर्मा की समीक्षा का एक अंश यहाँ उद्धृत  
 कर रहा हूँ -

“हिन्दी की सत्त्वयुद्ध कृति में, विशेषतः कामायनी ने  
 परंपराओं से मुक्ति पाने का मार्ग प्रशस्त किया है। 'सुभाषचन्द्र'  
 को साकेत, कामायनी और उर्वशी महाकाव्यों की -  
 पंक्ति में राव भर देवने से महाकाव्य की सत्त्वयुद्ध  
 विकास-यात्रा और 'सुभाषचन्द्र' के महाकाव्य कोचित्य  
 पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। साकेत की वस्तु, कामायनी  
 के पात्र और उर्वशी की ध्वन्य-शैली ने महाकाव्य  
 की सीमाओं का विस्तार किया है। यदि उक्त कृतियों  
 महाकाव्य प्रमाणित हुई हैं, तो 'सुभाषचन्द्र' पर  
 उदारता पूर्वक विचार करने के द्वार खुल नहीं होना  
 चाहिए। विशेषतः इस कृति को कामायनी के संदर्भ में  
 अधिक अच्छी तरह परखा जा सकता है। परंपराओं  
 से मुक्ति का प्रथम साहस कामायनी ने ही किया है।  
 मानवीय सूक्ष्म-वृत्तियों के आधार पर लोगों की  
 रचना कर 'मन' 'हृदय' और 'बुद्धि' जैसे  
 सूक्ष्म प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त की महाकाव्योचित  
 स्वरूप प्रदान कर देने का हिन्दी-काव्य-जगत ने एक  
 अग्निकरी कदम का। इन सूक्ष्म तत्वों से  
 प्रताप की मानव-जीवन के विकास को ताना-बाना  
 बहुत सफलतापूर्वक जुग निकल रहा है। ठीक यही।

कार्य कावि श्री सरल'ने 'सुभाषचन्द्र' में किया है।  
कागायनी में पौराणिक कथा है गंगा मात्र की-  
कथा ली गई है। 'सुभाषचन्द्र' में उनके जीवन के  
नतिपय अंशों का निमेष किया गया है। कागायनी  
में तीन प्रतीकात्मक पात्र हैं। 'सुभाषचन्द्र' में  
मुख्यतः एक ~~जीवन~~ जीवंत पात्र है। कागायनी में  
मुख्य मानवीय दृष्टियों के आधार पर लोगों का  
गाम्भारण है, 'सुभाषचन्द्र' में इतिहास की महान  
विपुलियों के नाम पर ~~वही नी वांछु को अपने~~  
~~चिन्तन ने आधार पर इतना व्यापक विवेक प्रदान~~  
~~कर देते~~ लोगों का नामकरण हुआ है। वही ही-नी  
वांछु को अपने चिन्तन ने आधार पर इतना व्यापक  
विवेक प्रदान कर देते का जो कार्य कागायनी में  
हुआ है, वही ही कार्य 'सुभाषचन्द्र' में केवल एक पात्र  
को लेकर महाकाव्योचित कथा का निर्माण करने में  
हुआ है। अपनी इस खल्लय दृष्टि के 'सुभाषचन्द्र'  
का महाकाव्य की खल्लय शक्ति पर विमल होना चाहिए।  
'सुभाषचन्द्र' की समीक्षा के इस अंश के उद्धरण के  
पश्चात् निम्न-प्रकाश ध्वन्य में लिखे गए इस महाकाव्य  
को श्रीराम वर्ग में भी इस उद्देश्य से यहाँ उद्धृत  
कर रहा हूँ कि पाठक स्वयं ही देख सकें कि चरित्रगत  
सुभाषचन्द्र को ही के जीवन में 'राज-चरित-मानस' के  
गणक श्रीराम की जीवन-लीलाओं का आरोपण  
विचिन्तन कर में नहीं किया गया है -

उद्वेलित सागर है उठे बड़वागने ज्यों  
राशमें चौर उठे वस्त्र जैसे तमिस्र का  
जन्मे ने भारत की भूमि में सुभाष तुम  
घोर अंधकार में अनन्त ज्योति-धुंज-से ।  
जन्म था तुम्हारा ?

का कहें कि कान्हो जन्मी थी  
जैसे साकार हो उठा हो शौर्य हिन्द का  
जन्मे तुम रोते -  
जैसे मिला नया जन्म हमें  
मौरव पराक्रम का अर्थ मिला देश को ।

मातृ-ममता ने  
पितृ-धर्म ने पुकारा तुम्हें  
कह कर 'सुभाष'  
शा सुललित प्रिय नाम है  
किन्तु हमें -  
देशवासियों के लिए मिले तुम  
शांति  
शील  
और लौन्दर्य-व्यज राम-से ।  
देवते ही देवते हमारे  
कर दिया तब ~~हमें~~  
धर्म जो कि जेता में लिए श्री राम ने  
तुम्हें विश्वास हमें  
राम मरे भी हुए थे कभी  
राम-रूप आए तुम इस युग के सामने ।

राम तो गए वो वन  
 मान पितु-आत्मा को  
 तुमने चर-धाम छोड़ा मौ के आख्यान पर  
 वन्दनीया मातृ-भूमि वन्दन के सहे नास  
 सुमना न हुआ सख्य  
 निकल गए तीर-से ।  
 राम जब चले तो सहृदयिणी भी साथ-वली  
 और दिया साथ मातृ लक्ष्मण-से नीर न-  
 तुम जो चले  
 तो चले तुम ही अकेले कर एक  
 वनों  
 पर्वतों को  
 और सागरों को लाँचते ।

चोदह वर्षों की अनादि लाँच  
 राम आए पर  
 आधी माते वन के प्रिय आयोदया के राज्य के  
 भागे इहलौकिक सुख  
 भागते नरेश हैं जो  
 प्राप्त हुए  
 महान  
 मोक्ष  
 चरण और सेवकादि ।  
 किन्तु तुम्हें प्राप्त हुआ केवल निर्वसन ही  
 चूल्ह भी तो मिली नहीं तुम्हें मातृभूमि की  
 बैठने के लिए मिट्टा कौनों का वासन ही-  
 तुम पर दिखाया स्नेह  
 भुन और व्यास न ।



तुम जे हमारे राम  
इस युग के राम तुम  
ताज नही

तुम्हें तो अभीष्ट था विराज्य ही  
खोजते ही रहे देशवासियों के लिए मुक्ति  
खोजते ही रहे तुम विशीर मातृ-भूमि का ।  
नामन - है तीन डग तुमने जो चारों वीर  
जाप लिए पहले में भारत - अफगान देश  
धरा धरा जो डग  
जाप डाला यूरोप को  
तीसरे में चौदें डाला पूर्व-एशिया का वक्ता ।

तुमने समस्त आत्मा-बल है जुलूस जैव  
आजादी दूंगा तुम्हें  
मुझको तुम खून दो  
भारत का खून लौल-लौल लहराने लगा  
खूनी दरिन्दों के साथ खून बिलने ।

तुम जे सुभाष-चन्द्र  
राम-चन्द्र इस युग के  
निष्कलंक और पूर्णचन्द्र देशभक्ति के  
देव - देव तुम्हें  
उठा चार जन-सागर में  
उन्मादी चार उठा भारत के रक्त में ।

तुमने उठाई भुजा  
गारा कुलन्द किया -  
दिग्गज चलो रे वीर !  
चलो राज दिग्गज को

सुनो वायु-मंडल की चड़कनों का घोष आज  
आज गर्म धून ने फुकारा गर्म धून की।  
भारत की कोटि कोटि बाँहे समुद्रक हैं  
बढ़ो !

दौड़ पड़ी !

उन बाँहों में समाओ रे !

मर्दन कर शत्रु-सैन्य

मातृभूमि मुक्त करो

दिल्ली पर विजयी तिरंगा फहराओ रे !

धून कर तुम्हारा आह्वान

वधू धून उठे

आन-आन वीरु हुंकार उठे एक साथ -

दिल्ली-चलेंगे हम !

दिल्ली-चलेंगे हम !

धून की उजागर करेंगे हम धून से ।

आज हमें नेता की

आन देश-भारत की

आन पर लेलेंगे

आन से लड़ेंगे हम

ऐसे लड़ेंगे

इतिहास भूल पाएंगी

शत्रुओं की धरती पर गर्व से-चढ़ेंगे हम ।

लक्ष-लक्ष कणों में गर्जना के घोष उठे

लक्ष-लक्ष हानों में बन्दूकें आग लीं

कोस पर लुहाने जितनी को लक्ष कदम बढ़े

धूम जैसे नेता के एक आह्वान पर

एक आह्वान धूम

लौ-लौ हनुमान उठे

लौ-लौ सुग्रीव-जामवंत लड़े लंगर

लौ-लौ हवीस आंगदादि सक्ताय उठे

मान और वानो की भाँसा उपारभी ।

तुम थे हमारे राम -  
 इस युग के राम तुम  
 तुमने सहस्रों कहिल्याएँ तार दीं  
 विभिन्न और आत्मभिन्न दिसा उन्हें  
 जो भी निरीह  
 भयभीता  
 आत्म-हीना-ही /  
 दूर मातृभूमि से  
 विदेशों के अन्धम में  
 युद्ध की विभीषिकाएँ जहाँ अपनपाती थीं  
 वहीं  
 निर्वसिता कहिल्याएँ भारत की  
 जीवन है कटी-कटी जीवन बिताती थीं ।

रहतीं जो जड़वत्  
 शिलावत्  
 आभि-घातो-ही  
 उन्हीं कुल-शीला कुल-वधुओं कि शोरियों में  
 आत्म-सम्मान -  
 आत्म-गौरव की चोटी जगा  
 तुमने उद्दण्ड राष्ट्र-भावनाएँ जूँके दीं ।  
 बंग के सपूत !  
 शाही-लायक - आराध्यक तुम  
 तुमने न-चरणों से दुष्टों मातृ-रूपकों  
 ओजसवी वाणी के पारत-संप्रेषण से  
 तुमने प्रतिष्ठीत की  
 उन्हीं राष्ट्र-चेतना ।

तुम थे हमारे राम  
 इस युग के राम तुम

शत्रु का विनाश - सर्वनाश का अभीष्ट तुम्हें  
 इसीलिए सुख-पूर्व  
 सिंधु - तीर बँह कर  
 शक्ति की उपासना की तुमने बहु-यत्न है ।  
 जुग कर आख्यान  
 आर्ति - वीणा की तान जुग  
 पाग उठीं तोई हुई भाँती की रानियाँ  
 लगीं सुख-भूमि में वे विकृत-ती को धन  
 मन्त्रान उठीं विनायक  
 प्रभु प्रलय - पालना - ही ।

लपटे जा उठीं  
 लहराने लगीं - चारों ओर  
 सुख के - धुँएँ हैं चरा - आसमान भर गए  
 गरज उठे भारत के वीर रण - लौकुरे  
 लगीं हुंकार में प्रचण्ड रण - चाण्डियों ।  
 कैला आनीला उदयान राष्ट्र - भवना का  
 कैला पुण्यवान आख्यान मातृ-भक्ति का  
 कैला भा खे धान वह आत्म - बलिदान का  
 कैसी वह पूजा  
 कैला अगुष्ठान शक्ति का ।

आगे की पीढ़ियाँ लिखेंगी इतिहास वह  
 आगे की पीढ़ियाँ पढ़ेंगी वे गाथाएँ  
 वक्षत पर समय के  
 जाते भारत के वीरों में  
 बलिदानी भाषा में  
 लिख डालीं पूज है ।

भारत को गाढ़ा  
 गर्म  
 आल लहू गिरा जायें  
 छोर-छोर से सब सब तिर-धाम होगा  
 माँ को सुपुत !  
 भ्राता-दूत !  
 ओ सुभाष-चन्द्र !  
 रक्त युग के लिए तुम अजेय राम होगे ।

### महाकाव्य 'जय-सुभाष'

एक ही परिहारा पर दो महाकाव्य लिखने की आवश्यकता  
 रक्त कारण महसूस हुई, क्योंकि बहुत से काव्य-रासियों के  
 रक्त आशय के पत्र गुप्त मिले कि उन्हें सिद्ध-तुलना  
 महाकाव्य 'सुभाष-चन्द्र' पढ़ कर तृप्ति नहीं हुई। तुलना-  
 चर्चा में रक्त की प्रेरणा करने वाले पाठकों की रक्त-विप्लव  
 शान्त करने के लिए ही गुप्त 'जय-सुभाष' महाकाव्य  
 की रचना करनी पड़ी।

'जय-सुभाष' महाकाव्य की रचना जर्मन गुप्तवादी शासित  
 दिग्गज ने लिखी है जो एक ऐतिहासिक होने के साथ-साथ  
 बहुत अच्छे शायर भी हैं। उन्होंने 'जय-सुभाष' महाकाव्य  
 को श्री नेताजी सुभाष की कीर्ति का बहुत अच्छा स्मारक  
 और आजाद-हिन्द-फौज का ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप  
 में माना है। उसके काव्य-पद्य का सुलभांश तो  
 रक्त-शायी पाठक ही कर सकेंगे।

### काव्य-जय सुभाष

'काव्य-जय सुभाष' एक विशाल गद्य-कृति है।

राजदिव्य रूप में यह पूर्व-प्रकाशित चार ग्रन्थ-कृतियों का एकिकृत  
संस्करण है। वे कृतियाँ हैं - १. राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू, २. नेताजी  
जवाहरलाल नेहरू, ३. नेताजी जवाहर और आचार्य-विन्ध्य-संग्रह,  
और ४. नेताजी के सपनों का भारत।

'जवाहरजी-जवाहर' पुस्तक शोधकर्तों को चाहिए वह बहुत उपयोगी  
है। इस पुस्तक को आचार्य बाला मर विभिन्न विषय-विद्यालयों  
के शोधकर्ता, शिक्षी, शोधार्थी, राजनीति-विज्ञान और -  
सैन्य-विज्ञान विषयों के अन्तर्गत शोध-कार्य कर रहे हैं।  
उनके पत्रों में ही मुझे इस तथ्य की जानकारी मिली है।

### प्रान्ति-व्यापार

'प्रान्ति-व्यापार' मेरी सर्वाधिक प्रमत्तता का शोधपूर्ण  
कृति है। प्रस्तुत पुस्तक की प्रामुखी का संस्करण करने में मुझे  
सिंहास वल्लो का समय लगा है और इसके जीवन में मैं इसे  
चर नार्थ। मेरे पास जितने साधनों के पत्र आए हैं, हमने इसे  
कृति को भारतीय प्रान्तिनारियों की रणनीति को जोड़ दिया है और  
पुकारा है। इस पुस्तक के तथ्य-संकलन, जीवन, प्रकाशन,  
प्रकाशन के लिए अर्थसंग्रह, प्रकाशन का विषय है। मैं  
मुझे इसकी आर्थिक दौड़-धूप की इतना आर्थिक प्रमत्त करना पड़ा  
कि मेरा घर और अफ़सस को सहन नहीं कर सका और मुझे विधि  
दृष्टिपात का दौरा पड़ गया। मुझे बहुत ही रोष है कि दृष्टिपात  
मुझे उस समय हुआ, जब कृति के प्रकाशित हो चुकी थी।  
जो दृष्टिपात मुझे हुआ होगा तो मैं कइ वल्लो को साधना  
मिलान ही जाती।

मेरी तीव्र दृष्टिपात को सहन करने की क्षमता का  
संस्करण की है। कइ वल्लो की - तथ्य की दौड़-धूप में मैंने  
सिंहास प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मेरी सिंहास एक सज्जन जी रही है जो सदि दिन मे  
सज्जन कर मेरा तो उसे अस्विकृत का भोजन मिल जायगा।  
मैं तो अस्विकृत प्रान्तिनारियों के पुस्तक के लिए कहो न कहो



अपना जो विषय भी प्रकृत शरीर को बताना पड़े विचार करने में तब  
 मुझे सोचना पड़ा कि जो विषय अपने को विचार में ले लेंगे  
 - सोचेंगे, वह काम पूरा कर देंगे। अब सबकुछ कुछ नहीं सोचना।  
 'अपनी कोशिशों की वजह से शरीर पर पड़ें हुए चीजों को छोड़ें' -  
 करना कर जानी। नो हें।

मेरी साहित्य-रचना - स्वप्न-यात्रा

श्री कृष्ण जी, - जो मेरे साथ हैं, वे भी अपने जीवन को अन्तर्गत  
 हुए अनुभवों को विविध रूप में देखेंगे। जो-जो भी वे सोचेंगे  
 साहित्य पर पड़ेंगे, वह भी मैं सोचूंगा। मैं सोचूंगा कि मैंने  
 शरीर को 'अपनी कोशिशों' पर जोर दिया है। मैंने सोचा है कि मैंने  
 मुझे देखा है, उन्होंने भी इस प्रकार-विधा में निरंतर लिखा है।  
 यह मैं भी मेरी-पदवी नहीं हूँ, साहित्यिक जोड़ा-जोड़ा हूँ।

पञ्चरंगी गजालें

श्री गजालें में मैंने तीन ही हैं जो उच्च गजालें अपनी रचना-  
 कलात्मकता में लिख डाली हैं, - जो अब प्रकाशित हो सकेंगी, मैं नहीं  
 कह सकता। इन गजालों को वे भाषा में मैंने लिख लिया है।  
 आपका प्रकाशित है, अतः मैं कहिए कि गजालों को मैंने रच रचा है।

१. श्री गजालें
२. स्वप्न-यात्रा गजालें
३. ~~मेरी कोशिशें~~ गजालें, यात्री गजालें
४. ~~मेरी कोशिशें~~ गजालें, कोश
५. साहित्य-गजालें।

एक गजालें का नाम है - 'पञ्चरंगी'।

पञ्चरंगी गजालों में ६२ रंगों का एक-एक नमूना यहाँ प्रकृत  
 किया जा रहा है: - (१)

जो कोशिशें मैंने की हैं, - जो कोशिशें, - जो कोशिशें।  
 जो कोशिशें, जो कोशिशें, जो कोशिशें।  
 जो कोशिशें, जो कोशिशें, जो कोशिशें।  
 जो कोशिशें, जो कोशिशें, जो कोशिशें।



जब तुम फिर उठोगे, तो तब ॥ ५॥ ॥ ३  
 बाँके बंधन, तो अपने दुःख-धन गए ।  
 तो जिन्दगी तो अपने, हमेशा ऐसे रहे  
 तब तो तब, तो दुःख-धन गए ।  
 गुनाहोरी मादरे-वतन को, यह तरुण-न  
 अपने राखो हार दगार-धन गए ।  
 दीवार रहे, दार तो दीवार, तो फिर  
 सोचिए, तो अपने को अगार-धन गए ।

शयः ननु । (३-७) गुनाहोरी : हरभूल चवना ।  
 दीवार रहे : अपने रहे । दार : लौही का लक्षण । दीवार : दशन ।

( ७ )

हम हरभूल रहे, अगार हम तो न रहे ।  
 ललमय हमने नही, अपने रहे नहीं ।  
 वाणी हमारा नाम है, ऐसा है बग़ावत  
 आँके में लहू उतरा है, आँखें मरे नहीं ।  
 अजुलमो-सिद्धि को देख, कलाय-कशी न को  
 आ रहे, तो अपने दुःख, हमने-धन नहीं ।  
 हम हरभूल रहे, अगार को-नते नहीं  
 जो हरभूल रहे, तो है हमारे मरे नहीं ।  
 अकलम को अल-धन में लेते हैं हमारे  
 अमखानों को लेते हमारे ललमय नहीं ।  
 जो तो अल-धन में, तो तो न रहे  
 रहते हैं हमको जिन्नी को आसरे नहीं ।

वाणी : विद्रोही । अलम-सिद्धि : अलम-धन ।  
 अलम-धन : अलम-धन । अलम-धन : अलम-धन ।  
 अलम-धन : अलम-धन । अलम-धन : अलम-धन ।

(३)

गर-बुद्धि कम है, तो-बुद्धि बढ़ा लो ।  
 जिसके-दुःख न हों, जिसका-धर्म न हो ।  
 गर-बुद्धि कम है, तो-बुद्धि बढ़ा लो ।  
 जिसके-दुःख न हों, जिसका-धर्म न हो ।  
 जिसके-दुःख न हों, जिसका-धर्म न हो ।  
 जिसके-दुःख न हों, जिसका-धर्म न हो ।  
 जिसके-दुःख न हों, जिसका-धर्म न हो ।  
 जिसके-दुःख न हों, जिसका-धर्म न हो ।  
 जिसके-दुःख न हों, जिसका-धर्म न हो ।  
 जिसके-दुःख न हों, जिसका-धर्म न हो ।

इदमन्तराः विचारः । तदन्तः दुःखेन । प्रियम् ।  
 इदमन्तराः विचारः । तदन्तः दुःखेन । प्रियम् ।

(४)

हिन्दोस्तो-हमारे हैं, आपका-धर्म है ।  
 इसमें-हिन्दोस्तो हैं, इसमें-धर्म है ।  
 तैसा-विचार-वैसा है, तैसा-धर्म-वैसा है ।  
 इसमें-हिन्दोस्तो हैं, इसमें-धर्म है ।  
 तैसा-विचार-वैसा है, तैसा-धर्म-वैसा है ।  
 इसमें-हिन्दोस्तो हैं, इसमें-धर्म है ।  
 तैसा-विचार-वैसा है, तैसा-धर्म-वैसा है ।  
 इसमें-हिन्दोस्तो हैं, इसमें-धर्म है ।  
 तैसा-विचार-वैसा है, तैसा-धर्म-वैसा है ।  
 इसमें-हिन्दोस्तो हैं, इसमें-धर्म है ।

दे दे है - तब तो मैं नहीं चौंका निम्न  
 भाँजिन जो हमारे हैं, वो कुनिसा का भाग है ।

मन्त्रः : नमः । अथ श्रुत्वा : सुखं भवति । सुखं : ज्ञानम् ।  
नमः : प्रणमः । अथ श्रुत्वा : ज्ञानम् ।

असहिन्द, प्र-तारा नहीं, हिं. दोस्तान है।

1. 12/18.4 2. 12/18.4 3. 12/18.4 4. 12/18.4

Verfasser: von 2100, 18.10.1911

— ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

जहाँ है वही वहाँ है वही है वही है

मार्गः-१, सीमांत रूढ़ि ज्ञान विभाग

जवाहीर नारायण सराव, सच कुटुंब ही रहेगा

असाहिद, ये अभी भी हैं, ये कानमान हैं।

अयहिन्य, नामयावी ह, ये हिन्दुनी फतह

असाहिन्द, हिन्द के लिए आदनों-आमान है।

राहे-तस्की का है राज्य जपना दो-पराहेन

[illegible]

अनुसन्धितः संपूर्णः । अज्ञानः ज्ञानः । अलोप्यः संशयः ।

अनंत-समय : 2000 को प्रतिदिन | गण-2 हज़ार |

1. התורה : התורה

11.2.1 (901:55) Humm H

लेखन-त प्रभावकर्मो- कर्मो अतो प्रत्येक दोषों को मिटाने जाता है-  
 कर्मो-कर्मो बहुत प्रत्येक पश्यते। लेखन तो विचार का बोध  
 होता है। कविता प्रभावकर्मो-कर्मो अतो प्रत्येक दोषों को मिटाने जाता है,  
 लेखन प्रभावकर्मो-कर्मो अतो प्रत्येक दोषों को मिटाने जाता है,  
 लेखन प्रभावकर्मो-कर्मो अतो प्रत्येक दोषों को मिटाने जाता है। कर्मो-कर्मो तो प्रभावकर्मो-





आपने साहित्य को पढ़ कर मैं यह सोचने को लिए मजबूर हुई हूँ  
कि देश को लिए मुझे भी कुछ करना चाहिए। मेरा खून लौ लाने  
लगाता है और कुछ कर मुझसे को जी चाहता है।

मेरी उम्र तीस वर्ष की है। मेरे पास इंजीनियर हूँ। मेरा एक ही  
बेटा है। मैं उसे आपके साहित्य से प्रेरणा देती रहूँगी।

आप मुझे अपनी बेटी के रूप में स्वीकार करें तो मैं अपने  
आप को दाखल हूँ।

---

बीसलपुर (बीलीभीत) उत्तरप्रदेश -

कु० रिम्मी

बाबाजी, मैंने अपना आरक्षी परीक्षा दी है। मुझे पढ़ने का बहुत  
शौक है। आपका मैं आपकी पुस्तक 'आगे बढ़ाएं' पढ़ रही हूँ।  
बाबाजी, आपने कितने बड़े भाग कर यह पुस्तक लिखी है। बाबाजी,  
यदि हमारे देश में चार-पचास लाख से अधिक लोग प्रकाश हो जायें तो देश-  
का कामजाण हो जाए। मैंने तो अपना जीवन देश को लिए समर्पित  
करने का संकल्प कर लिया है। आप अपनी पौत्री को हमेशा पत्र  
लिखते रहें।

---

वागबहाग (रायपुर) मध्य प्रदेश -

कु० गीता परमार

बाबाजी, पचास दिन चामतारी के काठिया-विद्यालय में मैंने पहली  
बार आपकी कविताएँ सुनी थीं, तभी मैं आपके प्रति प्रस्ताव मन  
गढ़ गया है। हम छात्रों ने अपना एक-एक बलक बनाया है और  
अब हम ऐसी-वैसी पुस्तकें तो पढ़ कर राष्ट्रीय-साहित्य ही पढ़ती हैं।

आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे अपनी पौत्री समझ कर  
निरंतर पत्र लिखते रहिए।

---

नई दिल्ली से

नरेन्द्र दयाल

—मैंने आपका महाकाव्य 'सरदार भगत सिंह' पढ़ा। इसे धीरे-धीरे  
पढ़ कर भी मेरा मन नहीं भरा है। ऐसी पुस्तक तो विश्व-विद्यालयीन  
पाठ्यक्रम में सामिलित होना चाहिए। पता नहीं हमारे पाठ्यक्रम-  
निर्माता कब अपने स्वार्थों से ऊपर उठ कर राष्ट्रीयता के धातु को हाथों

में देंगे।

गांधीनगर आश्रम, अताप्रदेव में  
शिवप्रकाश पन्नीगी

आपका महान धृतिव और हमारे देश के आन्दोलन का उपरिष्ठ स्मारक 'आर्मी-कन्फाई' देखने को मिला। इस निर-सरलीय कार्य में लिए न केवल हम बल्कि हमारी आनेवाली पीढ़ियाँ भी आपकी शुभशुभार रहेगीं। आप हीमाग्न्याली हैं कि आपने हाथों से ही महान कार्य सम्पन्न हुआ। इसमें आपकी आगवाय बिना गई। कोई बात नहीं। आपको ऐसी आगवाय मिल गई है, जिसकी तुलना में कोई भी दिङ्गल भिक्वरी नजर आते हैं। आपकी पास आन्दोलन प्रतिभुओं की आगवाय है, जिसे बढ़िया आगवाय अभी चरती न देखी भी नहीं हुई है। 'जीवन की ही चरणत'।

एक बार पुनः आपने इस महान धृतिव के प्रति-स्वगत होत हुए, आपका - शिवप्रकाश पन्नीगी

आर०के०पुरम नई दिल्ली में  
डॉ० जयन्ती प्रसाद मिश्र

'आर्मी-कन्फाई', कृति लिए वह आपने इतना बड़ा काम कर डाला है जो कई संस्थाएँ मिलकर नहीं कर सकतीं। बातों की बात तो यह है कि प्रज-दान तक की स्थिति में आकर आप अपना काम कर डालते हैं। पारिवारिक तन्त्र अथ हीमाग्नियों की चिन्ता न करके आप इतनी ऊँची दरवाँग लगा जाते हैं कि आपको यह भी चरण नहीं रहता कि आप गिरे में नहीं।

इलाहाबाद में-  
डॉ० कृष्णचन्द्र गोड

आर्मी-कन्फाई, लेना लेना श्रीकृष्ण सरल की कृति देखने को मिली। मैं लेना लेना चरणों में अपना महतका भुक्ता हूँ।

हजार हिजाबुद्दीन (नद्विन्नी) हैं  
महात्म्यान्वितों सम्मिलित हुए

आपने 'क्रान्तिकार' लिख कर हमारी सरी बिरादरी (निजामादी) को  
साथ बड़ा उपकार किया है। आपका अक्षयदाता सराहनीय है।  
यह सभाही कीर्ति है। वृत्त बनाए रखें।

अलीगढ़, उत्तर प्रदेश में  
नेताजी का मध्य द्वारा सम्मानित  
मोरे-हिन्द सरदार-जंग क्रियन मनमोहनलाल

आपने आपका हिन्दू जीवन और नेताजी पर लिख कर जो कुछ  
लिखा है, उसने हम सबको अग्रे कर दिया है, वरना यह शक्ति  
जानें 'वही परतों' में ही समा जाता। आपकी बहुत बड़ी देन  
है - हम सबके लिए और देश के लिए।

शिवपुरी, मध्य प्रदेश में  
नेताजी का मध्य द्वारा सम्मानित  
मनमोहन जी वरस विष्णु

सरलजी का जीवन ऐतिहासिक दस्तावेज है वरस नहीं है। यह  
नेताजी का मध्य और आपका-हिन्दू-जीवन को हमारी हज़ारों सिद्ध होगी।

गजिमाबाद, उत्तर प्रदेश में  
महात्म्यान्वितों  
दुर्गादेवी बोहरा (दुर्गा माता)

मेच-प्योत्री-वामी गई हैं। एक और न एक नेने से जोड़ा दिखाई देता  
है। उसी नेने से पुस्तक सटाकर पूरी पढ़ा ली है। सुभाषबाबू पर  
आपने जो कुछ लिखा है, वह नितान्त अनिवार्य है। मैं आप को  
देश के स्वतंत्रता संग्राम को निर्भीक समझती, शक्तिशाली और जाग्रतप्रवर्ती  
मानती हूँ।

जगदल-पहरी

सरलजी, आप अपनी इस युक्त कायम रखें और शक्तिशाली  
कायम लेते और देते रहें।



राब, हमीरपुर (उत्तरप्रदेश) हैं  
महान क्रांतिकारी  
स्व० पंडित परमानन्द

श्री सरलजी जीवित ग्राहीय हैं। उनकी साहित्य-काव्य-तपस्या-कौटि की साधना है।

भौली, उत्तरप्रदेश हैं  
महान क्रांतिकारी  
स्व० डॉ० भगवानदास झा हैं

सरलजी ने क्रांति-साहित्य को मैं उतना ही आदर करता हूँ, जितना रामायण और गीता को।

भौली, उत्तरप्रदेश हैं  
महान क्रांतिकारी  
सदाशिव राय मलकापुरकर

देश के संकट के समय सरल-साहित्य के वम बहुत काम आएंगे।

हरदोई, उत्तरप्रदेश हैं  
महान क्रांतिकारी  
अय्यदेव वापुर

सरलजी के चार महाकाव्य क्रांति के चार काम हैं। हम उनके आभारी हैं कि उन्होंने हमें यह तीर्थ-यात्रा सुलभ कराई है।

देहरादून, उत्तरप्रदेश हैं  
महान क्रांतिकारी  
वीरेन्द्रनाथ पाण्डेय

सरलजी ने देश की चरम की कर्ज उतारकर हमारी पीढ़ी पर कर्ज-चढ़ा दिया है।

भुलजेश्वर, उड़ीसा हैं  
परमार्थिक राजप्रपाल ग्राहीय  
विश्वभरनाथ पाण्डेय

‘क्रांति-कामाई’ वास्तविक महाग्रन्थ है। सरलजी की जितनी

प्रयत्न की जाय, कम है।

खट्वालों (जालेंदार) पंजाब में

ਅੰਤਿਮ ਅਗਵਾਨੀ ਦੀ ਆਖ

प्र० विद्यालयी

“सरदार भगत सिंह, काका-ग्रन्थ मेरे बेटे के अनुपम ही-  
हैं। इसकी छती प्राप्त कर मुझे भग्न रहते जैसे मेरा बेटा  
भगत सिंह मेरी गोद में आ बैठा है।”

कामम रखते हैं, कामम नहीं।

मैंने जब-जब और जहाँ-जहाँ काबल-पाह किया है या शहीदों  
और आतंकवादियों के सम्मरण सुनाए हैं तो लोगों ने यही दुआ दी  
है कि मैं दीर्घायु पाऊँ। ये दुआएँ सुनकर मैं उन लोगों ने  
कहता रहा हूँ कि आप लोग मुझको यह दुआ दीजिए कि मैं  
जितने दिन जीवित रहूँ, मेरी कलम देशभक्तों और कलियोगों  
पर चलती रहे। मुझे लगता है कि लोगों ने मेरे लिए यह  
दुआ भी दी है और यही कारण है कि कदम रुक जाने का  
मेरी कलम शहीदों और आतंकवादियों पर चल रही है।  
मैं सिध्द करने के लिए...

मैं पिछले पृष्ठों में लिख चुकी हूँ कि मैं तीव्र हृदयवादी हूँ।  
पोड़ित होकर शय्या-ग्रस्त हो गया। शय्या पर पड़े रहते कीर्तियाह  
मैं भी इन पंक्तिों के लिखते तक मैं अपनी दो कृतियों की  
माउडुमिपियाँ तैयार करके रात-भर हूँ। उनमें से एक तो यही  
होती है 'मेरी सम्पत्ति-मात्रा' और दूसरी है 'मिचरंगी राजाले'।  
इन दो कृतियों के आतीति यदि मैं कुछ का प्रम है कुछ अधिकार  
लिखे सका तो वं 'मेरी सम्पत्ति-मात्रा' के साथ जुड़ती जाएंगी,  
और यदि किसी एक विचार पर कोई स्वतंत्र होरी तैयार कर  
सका तो वह स्वतंत्र नाम पाएगी।  
अभी तक

हैं, जो मैं यहाँ दे रहा हूँ —

पहली महिला - २५ नवंबर १९८८ को अपने जीवन के पति  
वर्ष पूरे कर लेते थे अल्लाह से मिली गई है। यह आत्म-कथा-पत्र

कलित हो मेरे जीवन को यह सच्चा दर्शन है। —

## पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे

पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, अपने संपूर्ण जीवन के।  
पैंसठ वर्ष आत्म-दर्शन के, पैंसठ वर्ष राष्ट्र-चिन्तन के।

इन पैंसठ वर्षों में, अपने  
मन में केवल देश रहा है,  
देश नहीं भूगोल, देश  
जन-जीवन-धुत अग्रोष्ठ रहा है।

सदा-सर्वदा रहा उपेक्षित  
और आत्म-दर्शन में तन है,  
भुंगारिह जो रहा सदा ही  
वह मन-बुद्धि-आत्माधन है।

तन-मन-धन उपकारण रहे हैं, लोगों के निर्बाध हृदन के।  
पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, अपने संपूर्ण जीवन के।

कहते पूँट मिले पीने का  
तो मिठास भी बहुत मिली है,  
कभी-बहुप ने मुलसाया, तो  
कभी-कभी-बैदनी खिली है।

पर यह सच है, अपने मन के  
कुण्डलों ने कभी ल पौरा,  
रात न उतनी सुघन रही है  
जितना उजला रहा स्वदेश।

जन-गण-मन ही बिन्दु रहे हैं, कर्म, साधना और मनन के।  
पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, अपने संपूर्ण जीवन के।

किया देश के प्रति, अपने  
कर्तव्यों का निर्वहण लगाने,  
हर अँधेरे का पी, हर  
गहराई की ली जाह कलम ने।

रुकी नहीं यह, भुकी नहीं यह  
 पूरी ली हर-पल कलम ने,  
 किसी प्रलोभन या चमकी की  
 की न कभी पर्वत कलम ने।  
 अपने मन को लुभात पाए, मृग-मारीन्य किसी के-चन के।  
 पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, अपने संपूर्ण जीवन के।  
 है किन्ना संतोष, लक्ष्य  
 कर लिया प्राप्त, वह काज-बाह,  
 इस अविचलता, इस दृढ़ता-हित  
 मैंने खुद को बहुत सराहा।  
 ये देशानुराग के स्वर, यदि  
 आज नहीं तो कल गुँजेंगे,  
 ये वही-सदियों गुँजेंगे  
 ये प्रतिदिन-प्रतिपल गुँजेंगे।  
 इन्हीं स्वरों में लगे सुनंगे, स्वर कवि के-दिन की छाड़वान के।  
 पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, अपने संपूर्ण जीवन के।  
 तन, मन, धन, सब चारही का है  
 चारही की धुन में रहना है,  
 जीवन-मरण चर के हित है  
 इस उद्योड़-बुन में रहना है।  
 जन-जन का उत्थान, यही ले  
 सब की आँखों का है सपना;  
 मानवता का मान, यही तो  
 सब से बड़ा धर्म है अपना।  
 चारही की माटी-चन्दन है, गुण गाएँ हों इस चन्दन के।  
 पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, हमने संपूर्ण जीवन के।

## शहीद और जिन्दा मुर्दे

वह इन्कलाबियों का ही गर्म खून होगा  
जो भीय कटा, चरही का कर्ज उतारेगा।  
वह इन्कलाबियों का ही गर्म खून होगा  
जो बलिदानों का मावन-पंथ बूटारेगा।

आरोप तुम्हारा, अगर शहीदों पर लिख कर  
में कोरे-कोरे घृण बिगाड़ा करता हूँ,  
आरोप तुम्हारा, गड़े हुए मुर्दे हूँ जो  
मैं उन मुर्दों को दर्पण अलगा करता हूँ।  
तो सुनो, शहीदों को मुर्द कहनेवालों  
जो हैं शहीद, जिन्दा मुर्दों से बहतर हूँ,  
जो बिना किसी उद्देश्य, मैं शहीदों के जीवन  
जिन्दा रह कर न सख, मुर्दों से बदतर हूँ।  
हैं मुझको दृढ़ विश्वास, देशकी चपकी पर  
जब कभी दासता के बादल झंडाएंगे,  
तो नाम शहीदों के, उनके गुण-गौरव ही  
आँधी बन कर खूनी बदलियाँ उड़ाएंगे।

मन्देह नहीं, भेषण आसन संकातों में  
चरही के लोगों को जब दर्ज बूटारेगा -  
सौमन्य उल, भारत के अमर शहीदों की  
तब गर्म रक्त ही दुश्मन को ललकारेगा।

हो अमर शहीदों की शायों से उत्प्रेरित  
अनुपम जौहर यह देश दिहाता आया है,  
हो अमर शहीदों की शायों से उत्प्रेरित  
भारत दुश्मन को तब क दिहाता आया है।  
हैं अमर शहीदों की शायों में वह बिजली  
जो जुलूम-सितम को जला राख कर देती है,  
हैं अमर-शहीदों की शायों में वह बिजली  
जो मुर्दों में भी नव-जीवन भर देती है।

— वह याद शहीदों की, जो पोर निरुद्धा में  
 आशा के भिन्नभिन्न-भिन्नभिन्न दीप जलाती हैं,  
 वह याद शहीदों की होती आई है, जो  
 अन्यायों से भड़के निद्रोह जगाती हैं।

— यह समय बताएगा, जब कायरता-कलंक  
 या देशद्रोह — धरती का बुरा विचारेंगा —  
 तब अमर-शहीदों की यादों का ही प्रकाश  
 अँधियारे के संकट से हमें उबारेंगा।

जब देश टूटता होगा अपनी करनी से  
 टुकड़े-टुकड़े होने की आशंका होगी,  
 शवपी-दर्प से अपना मातक उठार ले  
 जब भ्रष्टाचारों की कोई संका होगी —  
 यह निश्चित है, हनुमानी-याद शहीदों की  
 भ्रष्टाचारों-संका में आग लगाएगी,  
 वह याद शहीदों की, इस पावन चरित्र पर  
 तोहफे और समता के कागज लगाएगी।  
 जो कौम पूजती आपने अगर शहीदों की  
 वह कौम, विश्व में अँधेरा झाड़ पाती है,  
 वह कौम, हमेशा ही चिन्तागी जाती, जो  
 अपने शहीद-कीरो की याद मुलाती है।

— शान्ति न मुद कहो शहीदों की भाई !  
 उनकी यादों के बल, जन-जन हुंकारेगा  
 गर-भिते बहन के लिए, उन्हीं की यादों का  
 गुण-गान हमारी चुँचुली कीर्ति निकारेगा।

## मुझको दिल की बीमारी है

बहुत से लोग मौत से नहीं, मौत ने डर से मर जाते हैं। किसी ने जबलूम हो जाय कि उसे तपेदिक की बीमारी हो गई है तो वह डर के मारे झुलने लगता। किसी को मालुम हो जाय कि उसे दिल का दौरा पड़ा है, तो वह इसी सुदने से चल बसता। दिल का दौरा मुझे भी पड़ा है और बहुत भयंकर, लेकिन वह मेरे आत्म-जन को नहीं डिगा सका। मैंने अथाह स्थिति को भी - हा-या-पद बनाया है और अपनी बीमारी से भी मज्जा का लिया है और वह भी पूरा करिग। निश्चय है। मैंने बहुत क्लेश है कि जिन्दगी को बार-बार गुजारने के लिए नहीं, हँस और हँसाने के लिए है। मैं अपनी बीमारी पर खुद भी - हँसूँ और खुद करिग पढ़ कर आयु आपको भी हँसने को जान। करिग प्राप्ति है -

## मुझको दिल की बीमारी है

मुझको दिल की बीमारी है।

मैं जीवन, प्रत्येक नागरिक इसी मर्ज का अधिकारी हूँ।

मुझको दिल की बीमारी है।

जाने कैसा दिल पाया है जो हरदम-चाड़ना करता है, जो पड़ोसी, लड़कियाँ, यह दिल भी पड़ोसी करता है, कुछ-कुछ-कुछ दिल जाए, -लेना नहीं इस दिल को काँट इसमें बफ-रह कर अरमानों का डोला अड़ना करता है। मैं दिल नहीं खत्म पाता हूँ,

कुछ ऐसी ही मन्तरी - है।

मुझको दिल की बीमारी है।

द्वेष्टा डाकड़ों को दिखानाया, पर ते जिकाले सभी अनाड़ी,  
लगे पड़ावने दिल की चक्कपुता, लगे दवाने अपनी जाड़ी,  
बिना दवा रहत मिल जाती, अपनी सुन्दर मालवा दिसानी -  
जब कोई हलवार रेशमी, सा फिर पहर-पहर करती साड़ी।  
कोई दिल में आ बैठे, तो -

यह भी सुहरना गुणकारी है।  
मुझको दिल की बीमारी है।

हैं दिल के व्यापक-जनेकों, दिल आता है दिल जाता है,  
दिल का जेब-देन होता है, दिल से यह दिल टकरता है,  
कोई दिल में ट्यार जागता, कोई दिल में दर्द बसाता -  
दिल जेकार-बल देता कोई, तो फिर यह दिल धड़कता है।  
दिल दिल जानें पर भी यह दिल

कोई नहीं छोड़ता दिलकारी है।  
मुझको दिल की बीमारी है।

जब दिल से दिल मिलता है तो दिल का धुल कुछ पट जाता है,  
दो दीवाने मिल बैठें तो, लकवा गफता कट जाता है,  
जब दिल होता दिल से राजी, कौन मुल्ला कौन बाजी ?  
बिना दलाल किए है, दिल से दिल को सौदा पट जाता है।  
ठगता और ठगाता रहता,

यह दिल रेत व्यापारी है।  
मुझको दिल की बीमारी है।

यह सड़ाहिन यह कटमीरन, यह अंतर आँतों का गाता,  
वही पछिनी-सी लगती है, जिस पर यह अपना दिल आता,  
कोई दिल सेका करता है, आँतों भी सेका करता है -  
पर जब दिल की-मोरी होती, रफ्त नहीं कोई। मैलवाता।  
बीमारी जब आ-डाला है

तो बीमारी ही ट्यारी है।  
मुझको दिल की बीमारी है।



जब दिल का दौरा पड़ता, तों दोड़-दोड़ शायो आती हैं,  
 - दोड़-दोड़ करता है दिल, पर सजा को पड़ी है पानी हैं,  
 बिना पेटिई (मर) अचूरा, जेवनको भुंगी अचूरा -  
 - दिल हलकी दिमा रहता, जब चपल जोर दिवलाती हैं।  
 - फिर भी तों ज्ञान आता दिल

हरदम ही हरकत जारी है।  
 मुझको दिल की बीमारी है।

हैं दिल के बीमार हमी, पर हाल जने जपना बतलाते,  
 मैं भोला हूँ, कह देता हूँ, और सभी हैं भेद बिपाते, न  
 लगा - लगा मामिलों के खेदे, दिन - दोप हरी तों मं - तवेरे -  
 जाहें - जाहें जम जाता है, सब अपना - अपना रंग जमाते।  
 पर लद-लान मुझे करते हैं -  
 गई हनी की आते जारी है।  
 मुझको दिल की बीमारी है।

मुझको - दैन मिलेगा तब, जब सबको सब मजबूत पड़े,  
 तड़प-तड़प जाहें गर-गर करे, धान-आज दिल को चिन्ता है,  
 तब मैं कुश होकर गाऊँगा, अपना दर्द भूल जाऊँगा -  
 येही जनाऊँगा मैं दिल में, मिल न तबें जन्मो मेला है।  
 दुःख में समझागी मिल जाएँ

नट जाता संकाह भारी है।  
 मुझको दिल की बीमारी है।

## कैसा जीवन दिया राम ने

कैसा जीवन दिया राम ने । हर दिन हांकट (बड़ा) हाकने ।  
कैसा जीवन दिया राम ने ।

पैर टकते तो सिर उछड़ा है  
सिर टकते तो पैर उछड़ते,  
कपड़े तो कपड़े हैं, रोंके  
जीवन के भी आज उछड़ते ।  
खुश, गरीबी, दुर्दिन, हमको देव कामेज लखी पासने ।  
कैसा जीवन दिया राम ने ।

यहाँ रा बलें न्यु में लगते  
दिन तो दिन, जीवन चलता है,  
-मर-मर-चूँ-चूँ कर-कर कर  
जीवन का घटना-चलता है ।  
आज का काम तमाम कर दिया, बिना काम के आज काम ने ।  
कैसा जीवन दिया राम ने ।

उनकी तो साँचां खी जे हैं  
यहाँ तेल के भी लाले हैं,  
तेल मिले कैसे, वे उसकी  
आपने कानों में डाले हैं ।  
आ दोलक के बजा रहे हैं, वही अपने हाड़-चाम ने ।  
कैसा जीवन दिया राम ने

कड़वा घूँट हमें जो जीवन  
वही बना उनके मिठास है,  
जिसके लिए तरसते हम, वह  
जीवन उनके आसपास है।

उनको हम में खीन मिखा है, सागर, मीना और जामने।  
कैसा जीवन दिया राम ने।

महल बड़ होगा, भोंपड़  
आब आँखों में लटकर रहे हैं,  
हम भी, वी भी दिशाहीन हैं  
अंधों' जैसे भटक रहे हैं।  
हम अंध हैं दीर्घ लोकर, उन्हें क्रिया है डीमटाम ने।  
कैसा जीवन दिया राम ने।

— + —

जैसा कि मैं कई बार लिख चुका हूँ कि  
मेरा मूल जर क्रान्तिकारी और विद्रोही  
रचनाओं का है। व्यंग्य-रचनाओं में भी  
आक्रोश ही भाँकता है। यह बात अलग  
है कि कुछ व्यंग्य-रचनाओं में हास्य  
अपने आप ही आ जाता है, लेकिन व्यंग्य-  
रचनाओं का मूल उद्देश्य बुराई पर नज़र  
लगाना और उसे ठीक करना होता है। यहाँ  
प्रस्तुत है इसी प्रकार की एक व्यंग्य-रचना:-

## चार वेद और एक डण्डा

- जिसकी लाठी आधी में  
महत्वावत बिलकुल सही है  
अधियों के आधुनिकों के बाद ही  
जिसी ने सहे बात नहीं है ।

- लाहे लाठी कहाँ चाहे डण्डा  
सही तो है हर प्रकार के शासन को एक मान हयवण्डा ।  
लोग डण्डे के लाल पर ही राजनीति की में हैं कहते हैं  
और जिस घर डण्डा नहीं  
वे लोग दूसरे कहते हैं ।

और डण्डे का लावा है काकी के गुणगुण हलसी को बाली नियो है  
डण्डा उचितें डण्डा ही रहा है  
वे ही लोग उनसे निर्गुण ब्रह्म का लिये है ।

उनकी वे धर्मियाँ -

- बिनु पद-चाले, मुने बिनु जाना  
पर बिन कम करे विदी जाना  
आसन सहित सकाल रा सोभी  
बिनु बाणी वक्ता, लड़ आंभी -

- डंडे का ही तो गुण जाती है  
निर्गुण ब्रह्म का नाम लकर  
वे डंडे का ही महत्व बतलाती हैं ।

आप पुछेंगे कि यह कैसे ?

तो मैं कहूँगा कि यह ऐसे -

बिना पैरों का होवे गुणो डंडा चलता है  
वह कभी अमरता है और कभी उधर जाता है ।

वह हमारी खोपड़ियों को टिपना कर  
कल्पक और भरतनाट्यम की मुद्राएं दिखाता है  
और जीवन के कई रहस्य  
बिना भी। लिए ही हमें सिखाता है।

मान न लेंते हुए भी डंडा सब कुछ सुनता है  
हमारी खोपड़ियों पर कानों का समीप लेंते हैं  
तभी तो अपने रास गानों के लिए  
वह हमारी खोपड़ियों की-सुनता है।  
हमारी खोपड़ियों पर पड़कर  
डंडा सुनता है हमारा रोदन और हमारा चीखार  
हमारी शान्ति। और हमारी गूह  
और हम जि हने लगे। जोर से होते हैं।  
डंडे के माग उठने ही दृष्ट लेंते हैं।

और लेंते

-गोपनीय चीजें के विगलम कर विदीमाना  
की जाही भी तो कही है-  
तो जनाव डंडे के परिपेक्ष में  
यह बात लंड्रेड पर सेट सही है।  
बिना लपेटे के लेंते हुए भी डंडा शासन करता है-  
वह समाज में प्रतिष्ठित अनुशासन करता है  
कानून की-चरानों के भरोसे तो  
डंडा ही तो भरोसा है  
हम कितने वीर साकाश हैं, यह डंडा ही तो कांता है।  
-गुरु शिष्य आचार्य के आचार्य के हर डंडे पर  
भारत माता की जय हो की-  
असली वीरता दोन कर जानता असली पीछे हो की की  
तो डंडे के करिश्मों के और भी कई उदाहरण हैं।

रुम डंडे बिना वालों के नहीं  
डंडा - वालों के बिना नहीं है /

तलवारें, बन्दूकें और तोपें  
ये सब डंडे की ही आती हैं  
डंडा सारांजक है  
- ये सब उसकी विभक्तियाँ हैं /  
जब डंडा आगता है  
उपद्रव दूर आगता है  
और जब डंडा सौदा है  
कोई वा कोई अंगण होता है /

आमन रहते हैं लेकर भी डंडा लम्बी जिला शक्ति है  
वह हमारे कौतूहल हमारे धर्म का सदा-नरता है /

डंडे से बड़ा बला कोई है ही नहीं  
उसो की आकाश धूम पड़ती है हर जगह  
वह हमारी नीमड़ियों पर पड़कर रहता है -

" और हड़तालें और प्रदर्शन क्रोध ?  
आभी तो सर ही फूटते हैं ऊब कृतों को और त अरोंग /  
क्यों वे ! गारेवाजी को शौक चरिया था  
क्या कुए - नावड़ियों धुन गए थे  
जो अरोंग यहाँ काया था ? "

तो प्रीमाण रहते हैं डंडे की भाषा  
और डंडे की भाषा सभी देशों में एक होती है -  
डंडे का चरित्र उन्हे और उसकी हरकत नेक होती है -  
डंडे का महत्व डंडे के महकमेवाले भी बताएंगे  
डंडे की उपयोगिता के आपको अच्छी तरह समझाएंगे /

अब ही आप मान जाए लोंगे कि

बिना वाली के डंडा भी अच्छा चलता है

और जो बलता है

उसका जौन हा काम नहीं हो सकता है ?

कम रत्न प्रश्न योगी लेने को  
 कमति आपने जीवन में मिलि प्रदत्त संपत्ति का  
 तो जाना  
 डंड से बड़ा मिलि प्रश्न आपकी नहीं पाइएगा,  
 डंड पर कुछ आर नहीं होजा  
 आप संप्रदाय का साइया ।

कम तो आप गान गाए हो गे कि  
 निर्गुण-धर्म के सभी गुण डंड में विद्यमान हैं,  
 चार-चारों ओर बाल-द्वय डंड के लिए समान हैं ।  
 सभी डंड बालों हमारे लिए प्रमाण हैं  
 'समस्त को नहीं' दोष गुंजाइ १२६ कम  
 डंड बालों में सभी अपराध दृश्य हैं  
 'मय बित होइ गे पीति' का सि दान हम भी जाने  
 ओर सुगीन के वाचन सहज की उक्ति शत श्रेष्ठाने  
 चार वेद-चारों पर उतरे  
 बिना उतरा इक डंडा,  
 'चारों' वेद नहीं कुछ करते  
 जो करता तो डंडा ।

## आपने - अपने शब्दकोश

उनके शब्द-कोश में

देश का अर्थ वा वह आकाश और वह चरा

जिसके परिवेश में रहा

मातृ-भूमि होने की परंपरा ।

उनके शब्द-कोश में

जीने का अर्थ था कि वे देश के लिए मरें

और उनके शब्द-कोश में

मरने का अर्थ था कि वे देश नव-जीवन-प्रदान करें ।

इनके शब्द-कोश में

देश का अर्थ है वह क्षेत्र

जिसमें वे चले

और अन्त उपभोग के अर्थ में चले करें ।

इनके शब्द-कोश में देश का अर्थ है वह क्षेत्र

जिसमें वे निचोड़ें

और जिसमें मोलना करके

अपनी सप्त पीढ़ियों के लिए जोड़ें ।

उनके शब्द-कोश में

देशवासियों का अर्थ था वे लोग

जो हम-वतन होने के नाते

उनके वहन-भाई थे

इसलिए वे अपने देशवासियों के शोदाई थे ।

इनके शब्द-कोश में

देशवासियों का अर्थ है वे लोग

जिसके कंधों पर बैठ कर वे राज-दरबार में जाएं

और अपनी गरज पूरी होने पर

उन्हें अपने आँगूठे दिखाएँ



उनके शब्द-कोश में  
 जीवन का अर्थ था देश की चरखे  
 समर्पण और बलिदान के लिए हर क्षण तत्पर ।  
 उनके शब्द-कोश में  
 जीवन का अर्थ था जीवन का दान  
 और अपनी हर साँस में देश का सशान ।

उनके शब्द-कोश में  
 जीवन का अर्थ है हर ऐश और हर आशम  
 और करने के लिए केवल एक ही काम  
 और वह यह कि वे  
 सिद्धान्तों को फाँसी पर लट्कारें  
 और क्रूर पाने के लिए  
 शीतान से भी हाथ सिंझाएँ ।

क्या कभी वह समझ आएगा ?  
 जब उनके और उनके शब्द-कोशों के अर्थ  
 एक ही होंगे  
 कदमी कदमी और करनी से नैक हो सकें  
 जो कंधों पर बैठने के बजाय  
 कंधों में कंधे में ला कर चले  
 देश के लिए घुले और देश के लिए धले ।

जब कभी ऐसा होगा  
 तो जन-जन का उत्कर्ष होगा  
 सभी यह देश  
 सच्चे अर्थों में भारतवर्ष होगा ।

लेवनी अदिराम चालू हूँ !

लेवनी अदिराम चालू हूँ ! आज ज्वाला ही उगल हूँ !

लेवनी अदिराम चालू हूँ !

भ्रष्ट हो हर आचरण जब ,

बढ़ रहे दामन-चरण जब ,

लाजसा मोड़ जग नया ?

वन गया जीवन मरण जब ?

है बदलना आज युग-नों, इसलिए तेवर बदल हूँ !

लेवनी अदिराम चालू हूँ !

देश है हूँ द्रोह जिनको ,

चार्य है हूँ मोह जिनको ,

स्वतंत्रता चरण दिए , पर

है अतीत की दाह जिनको

जाग बल मुँकारते जाँ, उन सभी-नों पल कुचल हूँ !

लेवनी अदिराम चालू हूँ !

हैं न रुकना काम तेरा ,

हैं न मुकना काम तेरा ,

जब तुझे देना बहुत मुश्किल

है न चुकना काम तेरा ।

शान्ति जब ही निष्प्रभावी, क्रान्ति बन कर ही गजल हूँ !

लेवनी अदिराम चालू हूँ !

चार्ज तेरा है न विमानों ,

चार्ज तेरा है न टिक्का ,

पान्थ कुण्डलें हृदय में

हैं नहीं तुझको सितमाना ।

पल रहे जितने अशुभ हैं, उन इरादों को मजल हूँ !

लेवनी अदिराम चालू हूँ !



To

पण्डित श्री कल्याणसुख

१८, दशहरा रोड, दान, (काशी नगर भा. वि. वि.)  
दुर्ग-दुर्गेश्वर

उपनिषद् अ. नं. - ४४६०१०





महाकावि गांधी जी भूमिका में  
 श्रीकृष्ण सरल  
 और  
 माता सुमेधा जी भूमिका में  
 प्रियंती जयश्री केतकर



जयि श्रीकृष्ण सरन  
 शहीद भगतसिंहजी माताजी  
 विद्यावतीजी के साथ पंजाब  
 के खरकर सेलां ग्राम में उन्हीं  
 के प्यर पर

श्री सरनगा

शहीद मंगलगीर्द हो जायें  
विद्यावती श्री के साथ



गहीदों के गायक : श्रीकृष्ण सरल  
गहीदों और त्रान्तिकारियों पर जिनकी  
पञ्चसप्त कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं ।





वीर राव के विद्रोही महाकवि श्री कृष्ण  
 सरल बूंदी (राजस्थान) के वीर राव के  
 विद्रोही महाकवि सुधामाल की प्रतिमा  
 को आलयापण करते हुए।  
 बूंदी की जनतान श्री सरल का अभिनन्दन  
 कर के महाकवियों का फिलान कराया।